ओशो की जीवन दृष्टि
भाग दो

ओशो के श्री चरणों में समर्पित

ओशो फ्रैगरैंस

श्री रजनीश ध्यान मंदिर
कुमाशपुर–दीपालपुर रोड
जिला: सोनीपत, हरियाणा 131021

contact@oshofragrance.org
www.oshofragrance.org

Rajneeshfragrance

+91-7988229565,+91-7988969660
+91-7015800931

टी. वी, चैनल पर
स्वामी शैलेंद्र सरस्वती द्वारा दिए
तीन इंटरव्यू का संकलन

अनुक्रम

31	सुदर्शन और शंख	5
32	निर्माण नहीं लीला	11
33	शून्य हो जाओ	17
34	आत्मा का पुनर्जन्म	23
35	भोग में योग	29
36	भीतरी रूपांतरण	35
37	कोई शैतान कोई भगवान	41
38	भक्ति में मस्ती	47
39	चिंतन और श्रद्धा	53
40	आस्तिकता अनिवार्य नहीं	59
41	विगत जन्म के कर्मफल	65

42	परंपराएं और ओशो	73
43	अल्लाह का जिक्र	76
44	सुरतिः अजपा जाप	85
45	नियम क्यों नहीं?	91
46	भजन फूल, सुरति इत्र	94
47	भोगवादी या त्यागवादी?	103
48	मैं कौन हूं?	109
49	बेचैनी से मुक्ति	115
50	स्वर्ग–नर्कः मनस्थितियां	121
51	ओशो व कृष्ण का संन्यास	127
52	साधना की जरूरत	133
53	पात्रता, प्रतीक्षा, मौन	139
54	जिंदगी में सार क्या है?	145
55	अनीश्वरवादी दर्शन	151
56	माया से मुक्ति की विधि	157
57	गीता में सब समाविष्ट है	163
58	ओम के सौ अर्थ	169
59	भक्ति–जिज्ञासा कैसे जन्मे	175
60	सब संतों के सारः ओशो	181

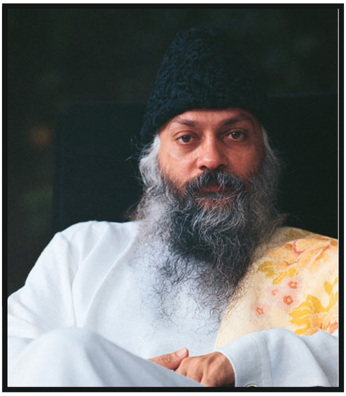

अध्याय–31

सुदर्शन और शंख

पहला प्रश्न पूछ रही हैं मां हर्षलता, सोनीपत हरियाणा से, भगवान श्री कृष्ण के पांच जन्य शंख एवं सुदर्शन चक्र के विषय में ओशो का नजरिया उजागर करने की कृपा करें?

ओशो ने अपनी किताब 'कृष्ण मेरी दृष्टि में' इन दोनों प्रतीकों के बारे में बड़ी खूबसूरत व्याख्या की है। वे कहते हैं कि महापुरुषों के संग जुड़े हुए सभी प्रतीक महत्वपूर्ण होते हैं। यह पांच जन्य शंख प्रतीक है पांच इंद्रियों का। हमारी पांच इंद्रियां हैं जिनसे जीवन का उद्घोष होता है। कृष्ण उद्घोष कर रहे हैं शंख के माध्यम से अर्थात वे अपने पांचों इंद्रियों सहित अपनी समग्रता में, टोटलिटी के साथ युद्ध में मौजूद हैं। इंद्रियां प्रतीक हैं संवेदनशीलता की। जितना ही आदमी अधिक चैतन्य होगा उतनी ही उसकी इंद्रियां ज्यादा संवेदनशील होंगी।

पांच जन्य शंख प्रतीक है इस बात का कि कृष्ण अपनी पूरी चैतन्यता के साथ, पूरी सेंस्टिविटी और कांससनेस के साथ रणभूमि में मौजूद हैं। जीवन एक संग्राम ही है, इस जीवन संग्राम में जो व्यक्ति जितना चैतन्य होगा उतना ही खूबसूरत ढंग से वह जिंदगी को जी पाएगा। कैवल्य उपनिषद में एक प्रार्थना से ऋषि शुरू करता है कि हे प्रभु, मेरी इंद्रियों को बलशाली और सशक्त बना। सुनने में अजीब सा लगेगा कि उपनिषद का ऋषि उपनिषद की शुरूआत कर रहा है इंद्रियों को बलशाली बनाने की प्रार्थना से।

सामान्यतः हम लोग सोचते हैं कि संन्यासी तो इंद्रियों के विपक्ष से होता है, वह तो भोग के खिलाफ होता है। कैवल्य उपनिषद का ऋषि कह रहा है कि हे प्रभु मेरी इंद्रियों को बलशाली

बना, मैं और जीवंत बनूं, और प्राणवान बनूं, मैं जीवन को पूरा भोग सकूं। न केवल स्थूल भोग बल्कि सूक्ष्म भोग भी। हमारी इंद्रियों के दो पहलू हैं– आंख बाहर भी देखती है और एक तीसरी आंख है वह भीतर भी देखती है। यह दो कान बाहर सुनते हैं, एक कान और है जिसे कहना चाहिए तृतीय कर्ण जो कि भीतर ओंकार की ध्वनि सुनता है। हर इंद्रिय के साथ एक आंतरिक इंद्रिय जुड़ी हुई है। पांच जन्य शंख प्रतीक है इस बात का की कृष्ण अपनी पूरी संवेदनशीलता के साथ, सारी इंद्रियों के साथ जीवन का उद्घोष कर रहे हैं।

एक और मजेदार बात ओशो ने कही, उस रणभूमि में केवल कृष्ण ही हैं जो नानकमीटेड हैं, जिन्होंने कोई आश्वासन नहीं दिया है, बाकी के सब लोग बड़े कमीटेड हैं, वे युद्ध लड़ने के लिए आए हैं। कृष्ण ने तो यह भी नहीं कहा कि मैं शस्त्र उठाऊंगा, कि मैं लडूंगा। बड़ी अद्भुत घटना है, जो व्यक्ति नानकमीटेड है, जो किसी आश्वासन से बंधा नहीं है केवल वही संपूर्णता के साथ, समग्रता के साथ हो सकता है। जो व्यक्ति कमीटेड है, जिसने अपने भविष्य को बांध लिया है, जिसने भविष्य के बारे में निर्णय कर लिया वह भीतर खंडित हो गया, अब वह समग्र और टोटल नहीं हो सकेगा। कृष्ण का जीवन क्षण–क्षण जीवन है। उन्हें खुद भी पता नहीं है कि कल वे क्या करेंगे, अगले पल क्या होगा। वह अगले पल ही तय होगा कि कल की परिस्थितियां कैसी होंगी, उसका रिस्पांस उनके भीतर की चैतन्यता से आएगा। उनकी सारी इंद्रियां अतिसंवेदनशील हैं, सुपरकांससनेस में हैं वे, वे परिस्थिति का रिस्पांड करेंगे, पहले से कोई कमिटमेंट नहीं है।

नानकमीटेड व्यक्ति ही टोटलिटी के साथ जीवन को जी सकता है। इसके जस्ट कंट्रास्ट में ओशो ने समझाया, राम का जीवन प्रिडेक्टिबल है, ज्योतिषी भविष्यवाणी कर सकते हैं कि राम किस परिस्थिति में कैसा व्यवहार करेंगे। कहा जाता है कि बाल्मीकि ने कथा पहले ही लिख दी थीं और राम बाद में हुए, यह मजाक है। यह मजाक इस बात का है कि राम का जीवन प्रिडेक्टिबल है, इसकी भविष्यवाणी हो सकती है। कृष्ण के संबंध में कोई भविष्यवाणी नहीं कर सकता है यहां तक कि कृष्ण भी नहीं बता सकते कि वे अगले पल क्या करेंगे। बिना किसी योजना के वे क्षण–क्षण जी रहे हैं।

ओशो की मुख्य देशना है एक–एक पल जियो, लिव मूमेंट टू मूमेंट, न भविष्य की चिंता, न अतीत का बोझ। राम का जीवन इसके ठीक विपरीत है, प्राण जाइ पर वचन न जाई, रघुकुल रीति सदा चली आई। जो वचन दे दिया, जो प्रण ले लिया उसको वे पूरा करेंगे चाहे आगे की परिस्थितियां बदल जाएं तो भी। इसलिए इस मजाक को समझना कि बाल्मीकि ने कथा पहले लिख दी थीं फिर राम का जीवन वैसा ही घटित हुआ।

अगली बात आपने पूछी है सुदर्शन चक्र के बारे में, यह सुदर्शन चक्र तो मौत का पैगाम है। इसको नाम दिया सुदर्शन, देखने में सुंदर, मृत्यु को इतना सुंदर कहना; कृष्ण के हाथ में जो भी होगा वह सब सुंदर हो जाएगा। कृष्ण के हाथों से अगर मौत भी हो जाएगी तो बड़ी प्यारी होकर आएगी। अच्छे आदमी के हाथ में सबकुछ अच्छा हो जाता है। डॉक्टर जो दवाइयां देता है जानते हो वह सब जहर हैं, जरा सी ज्यादा मात्रा में खा लो तो प्राण ले लेंगी लेकिन डॉक्टर के हाथ से वही दवाइयां अमृत बन जाती हैं। पोलियो के कीटाणु से ही पोलियो की वैक्सीन बनती है, वही

जहरीले विषाणु जिनसे पोलियो की बीमारी होती थी उन्हीं से टीका बन गया। मेरे चेहरे पर देखते हैं चेचक के दाग हैं, आज कल किसी के चेहरे पर चेचक के दाग दिखाई न देंगे, करीब-करीब पिछले तीस सालों से चेचक समाप्त हो गई सारी दुनिया में। पहले चेचक एक महामारी थी, एक साइंटिस्ट ने चेचक के कीटाणु का उपयोग करके ही चेचक का टीका बना दिया और सारी दुनिया से चेचक की महामारी को समाप्त कर दिया।

समझदार आदमी के हाथ में जहर भी अमृत हो जाता है। नासमझ के हाथ में अमृत भी जहर हो जाता है। अच्छी चीज भी खराब आदमी के हाथ में खराब हो जाती है। अब विज्ञान इतनी सुंदर चीज है, अच्छी चीज है लेकिन राजनीतिज्ञों के हाथ में पड़ गई, उन्होंने हिरोशिमा और नागशाकी में बम गिराकर पल भर में लाखों लोगों को नष्ट कर दिया। विज्ञान राजनीतिज्ञों के हाथ में पहुंचकर जीवन का संहार करने वाला बना जा रहा है। क्या अच्छा है, क्या बुरा है तय करना मुश्किल, किसके हाथ में है यह ज्यादा महत्वपूर्ण है। सुदर्शन चक्र कृष्ण के हाथों में बड़ा प्यारा है, खराब आदमी के हाथ में अच्छी चीज भी बुरी हो जाती है। हिटलर के हाथ में कमल भी दे दो तो वह भी कुरूप हो जाएगा।

मैंने सुना है भारत के दो राजनेता आपस में मिले, दोनों विपक्ष पार्टी के थे। एक का चुनाव चिन्ह कमल था और एक का चुनाव चिन्ह पंजा था। एक नेता ने दूसरे नेता को कमल का फूल भेंट में दिया कि लीजिए हमारी पार्टी की तरफ से आपको उपहार। उस दूसरे नेता ने एक चांटा उसको जड़ा। उसने कहा कि आपने मुझे क्यों मारा? उसने कहा कि यह हमारा चुनाव चिन्ह है। आपने अपना चुनाव चिन्ह दिया और हमने अपना चुनाव चिन्ह दिया। अच्छे आदमी के हाथ में सब चीजें अच्छी हो जाती हैं, बुरे आदमी के हाथ में सब चीजें बुरी हो जाती हैं।

दूसरा प्रश्न पूछने वाले हैं डॉक्टर देवेन्द्र तिवारी, सागर, मध्यप्रदेश से, कहते हैं कि मुझे पढ़ाई-लिखाई में रस नहीं था मगर पिताजी के आतंक से किसी प्रकार शिक्षा पूरी कर ली, माताजी की आज्ञा से विवाहित जीवन में प्रवेश किया किन्तु घर-गृहस्थी चलाते-चलाते थक चुका हूं। अब दो बेटे बड़े होने को आए हैं, जल्दी ही आत्मनिर्भर हो जाएंगे, बेटी की शादी की जिम्मेवारी भी निपटा दी, संसार से ऊब गया हूं, मेरा मन होता है कि सब छोड़-छाड़ के संन्यासी हो जाऊं। वैसे भी शास्त्रानुसार मेरी उम्र वानप्रस्थ की हो ही चुकी है, आवागमन से मुक्ति की तमन्ना है, बस आपका आशीष चाहता हूं।

वानप्रस्थ होने का भाव, सन्यस्थ होने का भाव बिल्कुल ठीक है। तुमने अपने जीवन की सारी जिम्मेवारियां निभा लीं, जीवन को संपूर्णता से जी लिया अब साधना की तरफ उन्मुख होओ। हां, पुराने जमाने में लोग वन को जाते थे इसलिए उसको वानप्रस्थ कहते थे, अब वन बचे कहां? सारी लकड़ियां तो कट गईं, वन विभाग वाले चोरी करके ले गए और अगर बहुत लोग पहुंच गए जंगल में तो वहां भी भीड़-भड़क्का हो जाएगा, एकांत न हो पाएगा। एकांतवास की साधना के लिए लोग जंगल जाते थे। तो अब वानप्रस्थ होने का तरीका एक ही है अपने भीतर की तरफ उन्मुख होओ, अंतरस्थ बनो। अब वानप्रस्थ नहीं, अंतरस्थ, अपने घर में ही रहकर साधना शुरू कर दो। निश्चितरूप से वानप्रस्थ होने का समय आ गया। अगर हर व्यक्ति अपना जीवन ठीक ढंग से जिए तो लगभग उनचास-पचास साल की उम्र होते-होते

उसके जीवन में एक रूपांतरण आएगा। जैसे चौदह साल की उम्र में एक सेक्सुअल मेच्योरिटी आती है, कामवासना परिपक्व होती है ठीक वैसे ही 42 साल की उम्र में एक स्प्रीचुअल मेच्योरिटी आनी शुरू होती है।

सात–सात साल की उम्र में एक–एक परिवर्तन जिंदगी में आता है। 42 से लेकर 49 तक पहुंचते–पहुंचते यह आध्यात्मिक शिखर पर पहुंच जाती है। तो पुराने जमाने में जो तय किया गया था कि पचास के आसपास लोग वानप्रस्थ हो जाएं तो बिल्कुल ठीक था। डॉक्टर तिवारी, तुम्हारी दृष्टि बिल्कुल ठीक है बस थोड़ा सा ख्याल रखना, मेरा वानप्रस्थ का और सन्यस्थ होने का अर्थ थोड़ा भिन्न है पुराने अर्थों से, अब अपने घर में ही रहकर साधना करनी है। हां, घर के मोह को त्याग देना, परिवार में ही रहना है लेकिन आसक्ति को गिरा देना। सामानों के बीच में, मकान के बीच में ही रहना है लेकिन अब उसके प्रति परिग्रह का, संग्रह का भाव तुम्हारा न हो। संन्यास के बारे में भगवान श्रीकृष्ण के बारे में समझाते हुए ओशो कहते हैं–

'हे सर्वश्रेष्ठ वह त्याग सात्विक, राजस्व और तमस ऐसे तीन प्रकार का कहा गया है। कृष्ण सांख्य के गणित को पूरा का पूरा स्वीकार करते हैं। और हर चीज तीन प्रकार की है तो त्याग भी तीन प्रकार का होगा, संन्यास भी तीन प्रकार का होगा। एक तो वह आदमी है जो त्याग करेगा लेकिन उसके कारण तामसी होंगे। अनेक लोग सिर्फ आलस्य के कारण त्यागी हो जाते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि त्यागी हो गए फिर समाज खिलाता–पिलाता, फिक्र लेता फिर खुद कुछ करना नहीं पड़ता। जिनको कुछ नहीं करना है, जिनका प्रमाद गहरा है वह त्याग कर लेते हैं।

भारत में सौ सन्यासियों में से निन्यान्वे तामसी मिलेंगे, बड़ी संख्या है उनकी। राजस्व व्यक्ति भी त्याग कर सकता है लेकिन उसके त्याग में हिंसा होगी, वह अपने को सताएगा, वह अपने पर मालकियत करने की कोशिश करेगा, वह अपने शरीर के साथ ही ऐसा व्यवहार करेगा जैसे शरीर कोई दूसरा है। वह खड़ा रहेगा जब शरीर को बैठना था, वह भूखा रहेगा जब शरीर को भूख लगी थी, जब प्यास लगी थी तब वह प्यास रहेगा, वह कांटों पर लेटेगा, वह सब तरह से शरीर को सताएगा और मजा वही ले रहा है जो वह दूसरे को सताने में लेता, यह त्याग भी कहां ले जाएगा? यह त्याग भी हिंसा है।

फिर एक सात्विक त्याग है संतुलन का, सत्व का, समता का, बोध का, सम्यत्व का कि तुम्हारी समझ बढ़ी, तुमने जीवन को जाना–पहचाना। न तो तुम अकर्मण्यता के कारण छोड़कर भागते हो, न तुम्हें भागने में मजा है क्योंकि भागना एक दौड़ है इसलिए भागते हो, तुम्हारा संन्यास तुम्हारे बोध की एक परिपक्व दशा है, तुम्हारी समझ का ही परिणाम है। तुमने देखा कि संसार में कुछ पकड़ने जैसा नहीं है क्योंकि सभी छूट जाएगा। जो छूट ही जाना है उसे पकड़ना क्या, जो छूट ही जाना है वह छूट ही गया है, तुमने दौड़कर भी देख लिया और पाया कि कोई मंजिल नहीं आती है, संसार कोल्हू के बैल की तरह है। दौड़ो कितना भी लेकिन पहुंचना नहीं होता, तुमने दौड़ भी छोड़ दी। अब तुम एक सम्यकत्व में थिर हो गए हो, तुम्हारे जीवन में एक अनतिशय का भाव पैदा हुआ है। न तो तुम इस तरफ डोलते हो न तो तुम उस तरफ डोलते हो, तुम मध्य में ठहर गए हो। घड़ी का पेण्डुलम जैसे रुक गया है, न बाएं जाता न दाएं जाता

क्योंकि कहीं जाने में कोई सार नहीं है, होने में सार है, जाने में सार नहीं है। दौड़ने में सार नहीं है, रुकने में सार है। कहीं पहुंचना नहीं है, जहां हो वहीं पूरी तरह हो जाना है, स्वयं में थिर होना है, ऐसा जो संन्यास है वह सात्विक है।'

अगला प्रश्न है स्वामी ज्ञान अर्जुन चितवन नेपाल से, पूछते हैं, गीतादर्शन में ओशो ने निराकार ध्यान विधि समझाई है जिसमें डूबकर मेरे जीवन में अद्भुत आनंद झरने लगा है, अहोभाव से भरा हूं, अब क्या कहूं?

ज्ञान अर्जुन, अब कुछ कहने की जरूरत नहीं। सत्यम शिवम सुंदरम तुम्हारे जीवन में घटित हो रहा है, यह निराकार ध्यान की विधि बहुत सरल, सुगम, सहज और शीघ्र परिणाम लाने वाली विधि है। मैं तो चाहूंगा कि प्रत्येक साधक को ओशो के द्वारा बताई गई यह निराकार विधि करनी ही चाहिए। सुंदर हो रहा है, और-और डूबते चलो। सुनो यह प्यारा गीत, इसमें तुम्हारा भाव, तुम्हारा अनुभव समाया हुआ है-

कुछ पल को अक्ल खो गई है हां खुद की शक्ल खो गई है,

वह जो निराकार की अनुभूति है जहां सारी आकृतियां खो जाती हैं, शरीर का भान भी खो जाता है।

हां, खुद की शक्ल खो गई है।
बंद है आंख मगर देखती है सो गया जिस्म जां जागती है।
रुक गई है सांस मेरी लेकिन बेखुदी में भी जैसे खुदी है,
कैसी हालत है कैसे बताऊं मिट गए गम खुशी ही खुशी है।
चांद गायब है और चांदनी है,

संत कबीर साहब ने इसी को कहा है बिना चांद की चांदनी, भीतर का आलोक।

चांद गायब है और चांदनी है चार सूं एक नई रोशनी है।
बोझ हल्का हुआ उम्र भर का जिंदगी खेल जैसी बनी है,
मुद्दतों से मुरझाए सजर में मानो फिर से बहार आ गई है,
जिंदगी की सूखी नदी में जैसे सावन की बाढ़ आ गई है।

ध्यान में कुछ ऐसा ही होता है जिंदगी की बाढ़ आ जाती है, अतिचैतन्यता घटित होती है। यह शेर मैं पढ़ रहा था तो मुझे याद आया, नेपाल में मैं एक बार किसी जगह गया हुआ था एक मित्र का आश्रम देखने के लिए, निकट में ही एक नदी बहती थी। वे कहने लगे कि चलिए आपको बहुत सुंदर नदी दिखाऊं। मैं वहां गया देखा तो कोई नदी थी ही नहीं, पानी था ही नहीं। मैंने कहा कि नदी है कहां? वे कहने लगे कि यही तो है नदी, मैंने कहा कि पानी तो है नहीं, वे कहने लगे कि बरसात में पानी आता है, चार-पांच महीने पानी रहता है, आठ महीने सूखी रहती है। वे कहने लगे कि छोटी सी नदी है इसका कोई नाम भी नहीं है आप कृपया इसका नाम रख दें। मैंने कहा कि ऐसा करो, इसका नाम निर्जला नदी रख लो। जल तो उसमें है ही नहीं। अधिकांश लोगों की जिंदगी ऐसी ही है, निर्जला नदी।

जब तुम ध्यान में डूबोगे, भीतर की उस निराकार ऊर्जा को पहचानोगे, बिना चांद की चांदनी में डूबोगे तब तुम्हारे जीवन की नदी में बाढ़ आ जाएगी। सुंदर हो रहा है अर्जुन, और-और डूबते चलो, मेरे आशीष तुम्हारे साथ हैं।

ओशो शैलेन्द्र

अध्याय–32

निर्माण नहीं लीला

आज का पहला प्रश्न पूछ रही हैं माधुरी शर्मा, दिल्ली से, कहती हैं, कोई कार्य या व्यापार लाभ हेतु किया जाता है, मुझे समझ में नहीं आता कि परमात्मा को सृष्टि के निर्माण से क्या फायदा हुआ?

यह सवाल जरूर किसी सिंधी या मारवाड़ी का होगा। जहां तक मैं समझता हूं यह माधुरी शर्मा शादी के पहले संघानी थीं, सिंधी थीं। पति का सरनेम शर्मा है इसलिए धोखा हो रहा है लेकिन सवाल ने तुम्हारी असलियत खोल दी। माधुरी, लाभ वहां होगा जहां कोई दूसरा हो, किसी का नुकसान पहुंचाकर ही लाभ हो सकता है, परमात्मा तो बेचारा अकेला ही है, वह व्यापार करेगा किससे। एक ओंकार सतनाम कहते हैं नानक। बस वह एक है तो दूसरा भी तो होना चाहिए जिसके साथ कुछ बिजनेस किया जा सके, कुछ शोषण किया जा सके, कुछ लाभ कमाया जा सके। नहीं, परमात्मा का कोई भी कार्य सृजन है, उसको कार्य भी न कहो, उसको व्यापार न कहो। वह क्रिएटीविटी है परमात्मा, उससे चीजें सृजित होती हैं, रचना होती है इसलिए अपनी सामान्य बाजारू बुद्धि को वहां लागू न करो। परमात्मा को कोई लाभ नहीं हुआ सृष्टि के निर्माण से, यह परमात्मा के लिए खेल है, लीला है।

हिन्दुओं की यह लीला की धारणा बड़ी अद्भुत है। ईसाइयों की धारणा सुनकर मामला गंभीर लगता है कि परमात्मा ने छः दिन में दुनिया बनाई, फिर बेचारा थक गया तो सातवें दिन उसने आराम किया इसलिए संडे को छुट्टी मनाते हैं ईसाई। परमात्मा तक ने आराम किया काम करते–करते, हिन्दुओं में छुट्टी जैसी कोई धारणा नहीं है। अंग्रेजों के आने के पहले भारत

में रविवार नहीं हुआ करता था। छुट्टी का कोई सवाल ही नहीं अगर खेल खेल रहे हो, लीला है, आनंद है तो इसमें छुट्टी की कहां जरूरत पड़ती है।

परमात्मा नटराज है, वह नाच रहा है, उसका नृत्य निरंतर चल रहा है। कण-कण में इलेक्ट्रांस नाच रहे हैं, चांद-सूरज धरती गगन में नाच रहे हैं, यह सारा अस्तित्व ही भगवत्ता से ओतप्रोत है। तो परमात्मा एक क्रिएटीविटी है, फायदा या लाभ का सवाल ही नहीं उठता। ऊर्जा अतिरेक है, ओव्हर फ्लोइंग एनर्जी। जैसे बच्चे खेलते, फुदकते, कूदते, नाचते, गाते, अब तुम पूछो कि इसका क्या फायदा होगा, किसलिए वहां तक दौड़ के गए और फिर लौट के आ गए। फायदा कुछ भी नहीं, ओव्हर फ्लोइंग एनर्जी है, ठीक इसी प्रकार परमात्मा भी है। लेकिन हमारी दो दृष्टियां संभव हैं, एक उपयोगितावादी दृष्टि और दूसरी आनंदवादी दृष्टि।

अधिकतम लोग उपयोगितावादी की दृष्टि से जीते हैं, जिंदगी में हर चीज की जरूरत ढूंढ़ते हैं। बाहर के संसार में तो ठीक चलेगा, कम से कम धर्म में और अध्यात्म में नानयूटीलिटीरियन, आनंदवादी बनो। जीवन को प्रेम से जीना सीखो, आनंदपूर्वक, सृजनात्मक ढंग से और तब तुम भी थोड़े-थोड़े परमात्मा जैसे हो जाओगे और उससे नाता जुड़ने लगेगा। इसलिए तो हम कृष्ण के जीवन को रासलीला कहते हैं, राम के जीवन को रामलीला कहते हैं। यह लीला है, एक खेल है, कोई गंभीर मामला नहीं है।

मैंने सुना है एक उच्च सरकारी अफसर ने घर आकर अपनी पत्नी से कहा कि ले भाग्यवान यह पच्चीस हजार रुपए सम्हाल, आज ईमानदारी अपनाने से मुझे काफी फायदा हुआ। बुजुर्गों ने ठीक ही कहा है कि हानेस्टी इज द बेस्ट पॉलिसी। पत्नी ने कहा कि लेकिन श्रीमान यह तो बताइए कि यह पच्चीस हजार रुपए आए कहां से? अधिकारी ने कहा कि अरे, एक कर्मचारी को मैंने रिश्वत लेते पकड़ लिया उसी ने दिए हैं मामला रफा-दफा करने के लिए। यह कह रहे हैं कि हानेस्टी इज द बेस्ट पालिसी, ईमानदारी से बहुत लाभ हुआ।

हर चीज में लाभ न ढूंढ़ो, परमात्मा से कोई लाभ नहीं है, सृजन से कोई लाभ नहीं है, खेल है, लीला है, आनंद है।

आज का दूसरा प्रश्न पूछ रहे हैं कैलाशनाथ अग्रवाल, उत्तराखण्ड से, कहते हैं कि सारी दुनिया में मान्यता प्राप्त धर्मों को छोड़कर किसी गुरु के शरण में जाने की जरूरत क्या है? जैसे हमारे पूर्वज वैज्ञानिकों ने प्रकृति के सत्य खोज लिए, वे बार-बार हमें खोजने नहीं पड़ते क्या वैसे ही अतीत के सद्गुरुओं द्वारा परमात्मा को जान लिया गया, अब हमें तलाशने की क्या आवश्यकता है?

कैलाशनाथ, तुम यह तो नहीं कहते कि हमारे पिताजी सांस लेते थे अब हमको सांस लेने की क्या जरूरत है, कि हमारी माताजी और नानी भोजन करती थीं अब हमको भोजन की क्या जरूरत है, कि लैला-मंजनू ने इश्क कर लिया, अब हमको क्यों इस उपद्रव में पड़ना। अरे हो गया, पूर्वजों ने कर लिया, जान लिया अब हमें क्या जरूरत। नहीं, भोजन तुम्हें स्वयं करना पड़ता है, पानी तुम्हें खुद पीना पड़ता है तब तुम्हारी प्यास बुझती है। प्रेम तुम्हें स्वयं करना पड़ता है तब प्रेम का अनुभव होता है।

विज्ञान जिन सत्यों की खोज करता है वे आब्जेक्टिव फैक्ट हैं, बाहर के सत्य विषयगत सामूहिक रूप से जाने जा सकते हैं और भीतर के जो अनुभव हैं वे बिल्कुल आत्मगत व व्यक्तिगत अनुभव हैं और जब तुम प्रेम को जानते हो तो बस तुम्हीं जानते हो। अगर तुम्हारे हृदय में करुणा है तो वह तुम्हारे हृदय की निजी करुणा है, उसका कोई सामूहिक निरीक्षण नहीं हो सकता, तुम्हारे हृदय के प्रेमपूर्ण हो जाने से सारे लोग प्रेमपूर्ण नहीं हो जाएंगे। अगर बुद्ध ने शांति को जाना तो उनके जानने से तुम्हें वसीयत में शांति नहीं मिलेगी। तुम डॉक्टर या इंजीनियर की संतान होने से अपने आप डॉक्टर या इंजीनियर नहीं हो जाते, तुम्हें खुद बनना पड़ता है। पूर्वजों के साथ जो हुआ वह तुम्हें वसीयत में नहीं मिल जाता। चलो बाहर की धन संपदा, मकान, जायदाद मिल जाएंगे लेकिन अंदर की संपदा न मिलेगी।

जब मीरा कहती है कि पायो जी मैंने रामरतन धन पायो तो यह नहीं सोचना कि अब हमको क्या जरूरत, मीरा ने तो पा लिया था। तो बाहर के विज्ञान के सत्य और आंतरिक अध्यात्म के सत्य में इस भेद को स्मरण रखना। सुनो ओशो का एक उद्धरण–

'एक बात सदा ध्यान में रखना, जो आमतौर से समझा जाता है वह आमतौर से गलत होता है। भीड़ के पास सत्य नहीं है, कभी नहीं रहा, सत्य सदा व्यक्तियों में घटता है और उनमें ही घटता है जो अपूर्व रूप से अपनी पात्रता निर्मित करते हैं। भीड़ तो कामचलाऊ बातों को मानकर चलती रहती है। इसलिए दुनिया में सभी भीड़ों के अलग–अलग नाम हैं। किसी भीड़ को हम कहते हैं हिन्दू, किसी भीड़ को हम कहते हैं मुसलमान, किसी भीड़ को हम कहते हैं ईसाई।

जीसस के पास सत्य था, ईसाई के पास नहीं, कृष्ण के पास सत्य था हिन्दू के पास नहीं। हिन्दू ने तो कृष्ण को मान लिया है, कृष्ण ने जो कहा उसे स्वीकार कर लिया है। हिन्दू ने स्वयं अनुभव नहीं किया, स्वयं अनुभव करे तो कृष्ण हो जाए। दूसरे का मान ले तो हिन्दू हो जाता है, मुसलमान हो जाता है, ईसाई हो जाता है, जैन हो जाता है, बौद्ध हो जाता है। और ध्यान रखना, जो स्वयं नहीं जाना है वह सत्य नहीं हो सकता। मेरा जाना हुआ मेरा है, सत्य तो प्राणों के गहराई में अनुभव हो तभी होता है। तुम्हारे लिए बात उधार होगी।'

जैसे किसी ने प्रेम किया और उसने तुमसे प्रेम की बातें कहीं। तुमने सुनी, समझी भी फिर भी क्या तुम प्रेम समझ जाओगे, प्रेम तो अनुभव है। तुम तोते की तरह दोहराने लगोगे उन बातों को, तोते बन जाओगे, पंडित बन जाओगे, सभी पंडित तोते होते हैं। थोड़ी बहुत तुम्हारे पास सूचनाओं की संपदा हो जाएगी, तुम्हारे अहंकार में थोड़ा आभूषण लग जाएंगे लेकिन तुम्हें प्रेम का अनुभव होगा? जल के संबंध में लाख पढ़ो, लाख सुनो लेकिन जब तक पियो न तब तक जल का गुण समझ में न आएगा। और ध्यान रखना, पीने पर भी तभी समझ में आएगा जब गहरी प्यास हो। अगर प्यास न हो और जबरदस्ती कोई तुम्हें जल पिला दे तो वह तृप्ति अनुभव नहीं होगी। क्योंकि तृप्ति के पहले प्यास चाहिए।

तृप्ति जल से नहीं होती ध्यान रखना, तृप्ति तो प्यास की त्वरा से होती है, जल तो माध्यम बनता है। लेकिन उसके पहले प्यास चाहिए, प्यासे न थे तो जल किस अनुभव में आए। हां, जल का शास्त्र अनुभव में आ सकता है, दुनिया में सत्य विरलों को उपलब्ध होता है

और ऐसा नहीं है कि सत्य ने कोई शर्त लगा रखी हो कि किसी विरले को ही उपलब्ध होऊंगा। सत्य सभी को उपलब्ध हो सकता है लेकिन विरले ही प्यासे होते हैं। तो आमतौर से जो माना जाता है उसको तो समझ ही लेना कि आमतौर से गलत ही होगा।

भीड़ क्या मानती है इसमें बहुत मत उलझ जाना, भीड़ को कुछ भी पता नहीं। भीड़ ने मानने की चिंता भी नहीं ली है, खोज भी नहीं की है। भीड़ ने तो औपचारिक रूप से मान लिया है। हिन्दू धर्म में पैदा हुए तो भीड़ हिन्दू हो गई, ईसाई घर में पैदा हुए तो भीड़ ईसाई हो गई। जिस भीड़ में तुमने अपने को पाया तुम वहीं हो गए। भीड़ मंदिर की तरफ जाती थी तो मंदिर चले गए, मस्जिद जाती थी तो मस्जिद चले गए, यह धार्मिक होने का उपाय नहीं है। धर्म को तो स्वेच्छा से चुनना होता था। जब तुम यहां बैठे हो तो यहां तुम किसी भीड़ के कारण नहीं आ गए हो।

अगला प्रश्न है, आपके जीवन का महान लक्ष्य क्या है, किस उद्देश्य से आप इस मिशन में अपनी जिंदगी समर्पित कर रहे हैं? पूछ रहे हैं डॉक्टर आर. के. बंसल, जमशेदपुर से।

फिर तुम गंभीर सवाल ले आए, फिर तुम पूछोगे कि इस मिशन का फायदा क्या है। कोई फायदा नहीं है, मजा है, मौज है, मस्ती है, आनंद आ रहा है। कुछ मेरे भीतर घटित हुआ है उसे कहने का सुख ले रहा हूं, कोई सुन ले तो उसकी मौज, न सुने उसकी मौज। कोई आग्रह नहीं है, एक विनम्र निवेदन है। ओशो को जानकर, ओशो को जीकर, ओशो को समझकर, ओशो को पीकर मेरे भीतर के प्राण तृप्त हुए हैं।

मेरे भीतर शांति का फूल खिला है और उससे प्रेम की, आनंद की सुगंध बाहर फैल रही है। तुम किसी फूल से नहीं पूछते कि तुम काहे के लिए खिले हो, खिलने से क्या फायदा है, बिना काम के क्यों खिले हो। तुम सूरज से नहीं पूछते कि क्यों रोज सुबह उग आते हो और पिछले दस अरब सालों से यह ड्यूटी कर रहे हो, कभी बीच में एकात दिन संडे को गूल भी हो जाया करे, अरे कैजुअल लीव, कभी तो छुट्टी मनाया करो, रोज–रोज चले आते हो, बस ऐसे ही इसको भी आनंद समझना। सुनो यह प्यारा गीत–

हम दीवानों की क्या हस्ती है, आज यहां कल वहां चले,
मस्ती का आलम साथ चला, हम धूल उड़ाते जहां चले।
आए बनकर उल्लास अभी, आंसू बनकर उड़ चले अभी,
सब कहते ही रह गए अरे, तुम कैसे आए कहां चले।
किस ओर चले यह मत पूछो, चलना है बस इसलिए चले,
जग को अपना कुछ दिए चले, जग से उसका कुछ लिए चले।
छगकर सुख दुख के घूंटों को, हम एक भाव से पिए चले,
हम भिखमंगों की दुनिया में, स्वच्छंद लुटाकर प्यार चले–2,
अभिमान रहित, अपमान रहित, जीभर कर खुलकर खेल चुके,
अभिशाप उठाकर होठों पर, वरदान रगों से छोड़ चले,
अब अपना और पराया क्या, आबाद रहें रुकने वाले,
हम स्वयं बंधे थे और स्वयं हम अपने बंधन तोड़ चले।
हम भला बुरा सब छोड़ चले, नतमस्तक हो निर्भार चले,

हंसते हंसाते आज यहां, प्राणों की बाजी हार चले।
हम दीवानों की क्या हस्ती है आज यहां कल वहां चले,
मस्ती का आलम साथ चला, हम धूल उड़ाते जहां चले।

कहीं जा नहीं रहे हैं, कहीं से आ नहीं रहे हैं बस एक खेल है, एक लीला है, कोई मिशन इसको न कहो, ऐसे शब्दों का उपयोग न करो कि उद्देश्य क्या है, लक्ष्य क्या है? यह सारा जीवन ही लक्ष्यहीन है। चांद किस लिए घूम रहा है और पृथ्वी क्यों सूरज के चक्कर लगा रही है और इस इलेक्ट्रान को क्या पड़ी है कि प्रोटान का चक्कर काटते हैं। फूल क्यों खिलते हैं और पक्षी क्यों चहचहाते हैं और झरने क्यों बहते हैं। क्यों बादल आते हैं और फिर बिजलियां चमकने लगती हैं और फिर वर्षा होने लगती है। सारा जीवन एक खेल है, उस खेल के साथ जिसने अपने को जोड़ा, फायदे की दृष्टि जिसने छोड़ी, जिसने अपना सिंधीपन, मारवाड़ीपन, जैनपन छोड़ दिया वह धार्मिक हुआ। लोग कहते हैं कि आप त्याग के पक्ष में हैं? जरूर पक्ष में हूं, यह फायदा वाली दृष्टि छोड़नी होगी। पश्चिम में यहूदी हैं, भारत में मारवाड़ी हैं, सिंधी हैं, जैन हैं उन्हीं के पर्यायवाची, उनसे और थोड़ा दो कदम आगे हैं यहूदी।

मैंने सुना है कि कोई पूछ रहा था ओशो से कि यहूदियों की लंबी नाक क्यों होती है? ओशो ने कहा क्योंकि हवा बिल्कुल मुफ्त है, जी भर के सांस लो, बड़ी नाक इसलिए होती है। अगर हवा में कोई टैक्स लग जाए तो वे सांस लेना कम कर दें, हो सकता है अधिकांश लोग छोड़ ही दें।

एक बार एक सज्जन मेरे पास आए थे, उनके बेटे उनको पकड़कर लाए थे और कहने लगे कि इनका इलाज करिए। वे कहने लगे कि मुझे कोई तकलीफ ही नहीं है। बेटे कहें कि इनको तकलीफ है और बाप कहें कि मेरे को कोई तकलीफ नहीं है। उनकी सारी जांच करवाई गई और पता चला कि उनको फेफड़े का कैंसर था। मैंने बाद में उनसे कहा कि आप बताते क्यों नहीं थे तकलीफ? वे कहने लगे क्या बताऊं, मारवाड़ी हूं, अब देखिए कैंसर का पता चल गया, यही मुझे लग रहा था कि फिर इलाज में बहुत पैसे खर्च करने पड़ेंगे। यह आदमी मर जाना पसंद करेगा बजाय ईलाज कराने के, पैसे खर्च नहीं होने चाहिए। नहीं, इस प्रकार के गंभीर शब्द मिशन और लक्ष्य, महान लक्ष्य, जिंदगी का समर्पण मेरे साथ लागू नहीं होते, बस एक मजा, मौज है। हम दीवानों की क्या हस्ती है, आज यहां कल वहां चले।

आशीष नागपुर से कहते हैं, मैं एक शिक्षित, स्वस्थ, शक्तिशाली युवक हूं। सरकारी सेवा में हूं, विशेष काम किए बिना वेतन प्राप्त करता हूं, घर–गृहस्थी मजे में चल रही है, पत्नी का नाम शांति है और उसने अपना नाम सार्थक कर दिखाया है। मेरा एक ही शौक है फिल्मी संगीत सुनना, कैसेट सुनकर मस्ती में झूमता रहता हूं, मैं अध्यात्म में क्यों जाऊं, भगवान से मैं अब और क्या मांगूं?

आशीष, मुझे तुम्हारे ही जैसे लोगों की जरूरत है। वे जो आवागमन से छुटकारे की पूछते हैं और जो पूछते हैं कि सृष्टि से लाभ क्या है उनकी जरूरत नहीं है, तुम आओ तुम्हारी ही जरूरत है। तुम ऊंची उड़ान ले सकोगे ध्यान और समाधि में। जिसके भीतर कोई मांग नहीं है, जो कह रहा है कि भगवान से मैं क्या मांगूंगा ऐसा व्यक्ति ही ओशो जिसे प्रार्थना कहते हैं

उसमें डूब पाएगा। ओशो अहोभाव को प्रार्थना कहते हैं। अक्सर धर्म में रुग्ण चित्त के, नकारात्मक दृष्टि के, दुखियारे, उदास, हारे, पराजित लोग उत्सुक होते हैं। जिंदगी ने जिनको तोड़फोड़ दिया, कुटे–पिटे, लुटे हुए लोग वे मंदिर आते हैं। और यह लोग कभी परमात्मा तक न पहुंच सकेंगे। परमानंद से इनका संबंध न जुड़ सकेगा, यह तो जीवन के छोटे–मोटे आनंद से भी न जुड़ पाए, इनके पास वह कला ही नहीं है। तुम्हारे जैसे लोग ही सच्चिदानंद को जान पाएंगे। तुम कहते हो फिल्मी संगीत सुनने का शौक है, बहुत अच्छा है। एक और महासंगीत है परमात्मा का, एक ओंकार सतनाम, क्या उसे नहीं सुनना? अति मधुर संगीत, बाहर के सब संगीत उसके सामने फीके पड़ जाएंगे।

मैं तुम्हारे फिल्मी संगीत के खिलाफ नहीं हूं, मैं तुम्हारे संगीत के शौक को और एक्सटेंड करना चाहता हूं, और फैलाना चाहता हूं। बाहर के सौंदर्य में तुमने रस लिया, भीतर भी एक सौंदर्य है क्या उसमें नहीं डूबना? जिन लोगों को संगीत का शौक है, जो लोग सृजनात्मक हैं, किसी प्रकार की कला से संबंधित हैं, जो प्रसन्न हैं, मस्त हैं, स्वस्थ हैं, सुखी हैं, समृद्ध हैं, सांसारिक जरूरतें शारीरिक और मानसिक जिनकी पूरी हो गई हैं, जो शांत हैं, शिकायत भाव से नहीं भरे हैं, कुछ मांग नहीं रहे हैं, मस्ती में जो झूम रहे हैं ऐसे अहोभाव से भरे समझदार लोग ही समाधि की गहराइयों में डूब सकते हैं। आशीष, तुम्हारा जीवन निश्चित ही एक आशीष बन सकता है। तुम्हारा स्वागत है, आओ ओशोधारा में, चलते हैं ऊंची उड़ान, चल हंसा ब देश। वे जो भारी और गंभीर लोग हैं उनके तो पंख ही कट गए, वे तो उड़ ही न पाएंगे। समझदार, शांत, समृद्ध, स्वस्थ, सुखी, प्रसन्नचित लोगों की जरूरत है धर्म में तब बड़ी ऊंचाइयां छुई जा सकती हैं।

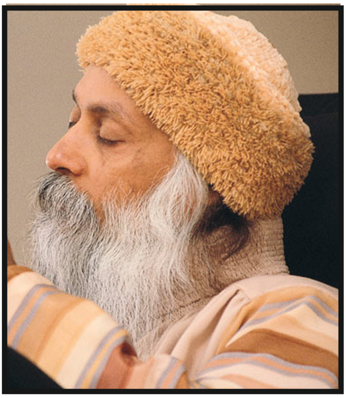

अध्याय–33

शून्य हो जाओ

आज का पहला प्रश्न पूछ रहे हैं पीताम्बर नेपाल से, कहते हैं मैंने ओशो की दो किताबें पढ़ी हैं 'शून्य की नाव' और 'सपना यह संसार', डर लगता है कि साधना करते–करते कहीं ऐसा न हो कि कुछ हाथ भी न आए ओर सपना भी खो जाए। ओशो जैसे संत विधायक शब्दों में क्यों नहीं बताते कि शाश्वत शांति, मुक्ति, परमपद और परमानंद की प्राप्ति होगी ताकि हम लोगों के मन में भी साधना करने का प्रलोभन हो?

पीताम्बर इसी डर से नहीं बताते कि फिर प्रलोभन जगाकर लोभी लोग चले आएंगे। और लोभ, कामना से भरे, महत्वकांक्षा से भरे लोग उस परमपद को न पा सकेंगे। जैसे तुम किसी चिकित्सक के पास जाते हो तो वह तुम्हारे बीमारियों की बात करता है, स्वास्थ्य की बात नहीं करता, दवाइयों की, ईलाज की बात करता है, ऑपरेशन की, सर्जरी की बात करता है, स्वास्थ्य की चर्चा नहीं करता। स्वास्थ्य की चर्चा करने का कोई अर्थ नहीं। एक आदमी अपेंडिक्स के दर्द से तड़फ रहा है और हम उसको समझाएं कि सुनो स्वास्थ्य क्या होता है? वह कहेगा भाड़ में जाए स्वास्थ्य, मैं मरा जा रहा हूं अपेंडिक्स से और आप स्वास्थ्य की बात कर रहे हो। नहीं, ईलाज की बात करनी होगी। ऐसे ही सद्गुरु भी एक चिकित्सक होता है, वह बाद की बात नहीं करता कि फिर क्या होगा, उससे प्रलोभन तो जागेगा लेकिन

फिर गलत प्रकार के लोग आकर्षित होंगे इसलिए शून्य की नाव, मिटाने की बात, शून्य हो जाओ, मिट जाओ, तुम्हारा अहंकार समाप्त हो।

अहंकार तुम्हारी बीमारी है, अहंकार का कैंसर तुमको है, अहंकार का ऑपरेशन करना है, बड़ी से बड़ी सर्जरी है तुम्हारी चेतना में से अहंकार को निकालना। निश्चितरूप से ऑपरेशन की ही बात होगी, कैंसर की चर्चा होगी, कैंसर को मिटाना है। बाद में स्वास्थ्य अपने आप आएगा, उसकी बात क्या करना। तुम सपने देख रहे हो महत्वकांक्षाओं के, कामनाओं के यह तुम्हारी रुग्णता है। तुम वर्तमान में नहीं हो। तुम कह रहे हो कि बात को क्यों नहीं बताते। जब सपने टूट जाएंगे तब क्या होगा? जब सपने टूट जाएंगे तब जो शेष बचेगा उसका नाम सत्य है, वह परमसत्य ही परमात्मा है। लेकिन उसकी बात करना खतरनाक है, सोए हुए आदमी से सत्य की बात करना का कोइ अर्थ नहीं। उसको तो सपने से झगझोरा जाए, उसे जगाया जाए, उसके मुंह में पानी छिड़का जाए यह उपयोगी होगा। एस धम्मो सनंतनो नामक प्रवचनमाला में भगवान बुद्ध की वाणी धम्मपद को समझाते हुए ओशो कहते हैं–

'एक बार तुम जागकर देख लोगे तो तुम हंसोगे कि क्या सपने देखते थे जबकि सत्य के खजाने उपलब्ध थे लेकिन बुद्ध उन खजानों के बारे में कुछ भी नहीं कहते। वे कहते हैं, डर है, खजाने की बात भी तुम सुन लेते हो सपने में तो तुम उसका भी सपना बना लेते हो और नींद को तुम अपनी गहरी कर लेते हो। इसलिए बुद्ध कहते हैं उस संबंध में कुछ भी न कहेंगे। इसलिए बुद्ध निगेटिव हैं, निषेधात्मक हैं, उनका धर्म नकार का है, वे उसकी बात ही नहीं करते क्योंकि उसकी बात हो जाएगी जो खूली आंख से दिखाई पड़ता है। वे मोक्ष की बात नहीं करते क्योंकि तुमसे क्या मोक्ष की बात करना तुम इतनी गहरी नींद में पड़े हो।

तुमने संसार की इतनी गहरी शराब पी ली है कि अब तुमसे क्या मोक्ष की बात करनी। शराब के नशे में तुम मोक्ष को सुनोगे भी तो भी कुछ और समझोगे, अनर्थ हो जाएगा। वे कहते हैं कि तुम इतना ही समझो कि नाली में पड़े हो, बेहोश पड़े हो, जागो। बुद्ध मेटाफिजिक्स की बात नहीं करते, वे सिर्फ बीमारी की बात करते हैं और निदान उनका दुरुस्त है। इस निदान पर सोचना, बुद्ध का धर्म भरोसे का धर्म नहीं है, गहन चिंतन–मनन, सोच–विचार और उसी चिंतन–मनन और सोचविचार से उठे हुए ध्यान का धर्म है। परमात्मा, आत्मा, मोक्ष यह शब्द बुद्ध के लिए पराए हैं, बुद्ध तो तुम्हारे मन का खंड–खंड करेंगे क्योंकि तुम्हारा मन ही एक मात्र सवाल है।

जो वेदों ने कहा है, कुरान ने कहा है, बाइबिल ने कहा है लेकिन बुद्ध उसको नहीं कहते इस बात को स्मरण रखना। जो पाना है वह पाकर ही जाना जाएगा, उसकी चर्चा व्यर्थ है और उसकी चर्चा खतरनाक है। बुद्ध ने सपने को कोई सहारा नहीं दिया, बुद्ध के तलवार तुम्हें काटेगी कि तुम ही बचो तुम्हारी शुद्धता में, तुम्हारी परिपूर्ण निर्दोषता में, तुम्हारे कुंवारेपन में, वही बच जाए जो काटा नहीं जा सकता। नैनं छिदंति शस्त्राणि, जिसे छीना नहीं जा सकता, जिसे जलाया नहीं जा सकता। बुद्ध छेदेंगे और जलाएंगे ताकि जो छेदा जा सकता है वह छिद जाए, जो जलाया जा सकता है वह जल जाए और फिर तुम बच जाओ तुम्हारी परिशुद्ध अवस्था में। वही वेदों का ब्रह्म है, महावीर का कैवल्य है, कपिल और कणाद का मोक्ष है, बुद्ध का वही निर्वाण है।'

पीताम्बर, जागो, उस जागरण का नाम ही ध्यान है। क्या मिलेगा यह मत पूछो, तुम्हारे सपने टूटेंगे इतना पक्का है। सत्य के बारे में कुछ नहीं बताया जा सकता, अभी तुम समझने की स्थिति में ही नहीं हो। तुम तो सपनों से जागो, नींद को तोड़ो फिर देखना क्या होता है। बहुत कुछ होगा वह चर्चा के बाहर है।

अगला प्रश्न है, आप अपने जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना किसे मानते हैं? विश्वविद्यालय में प्रथम आना, डॉक्टर बनना, देश–विदेश में भ्रमण करना, साहित्यकार बनना, संन्यास दीक्षा लेना, धर्म साधना में डूबना, परमात्मा का ज्ञान उपलब्ध करना या गुरु के रूप में विख्यात होना? पूछ रहे हैं पृथ्वी सिंह, अम्बाला, हरियाणा से।

पृथ्वी सिंह, जितनी बातें तुमने गिनाई हैं उनमें से एक भी नहीं। यह सब व्यर्थ की बातें हैं, उससे क्या फर्क पड़ता है डॉक्टर बने कि नहीं। इससे क्या फर्क पड़ता है कि इस देश में गए कि दूसरे देश में गए, सब जमीन एक सी है, सब जगह के लोग एक से हैं। जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है गुरु के संपर्क में आना, भीतर शिष्यत्व का भाव पैदा होना। वह महान क्रांतिकारी मोड़ है, उससे बड़ी और कोई क्रांति नहीं। बाकी सब तो अहंकार के जाल हैं, वे सब एक से हैं, उससे क्या फर्क पड़ता है। कोई अमीर बन गया, कोई प्रसिद्ध चिकित्सक बन गया, कोई फिल्मी कलाकार बन गया, कोई कवि साहित्यकार बन गया, किसी ने देश भ्रमण कर लिया तो उससे क्या होगा। वे तो माईग्रेटिंग बर्ड्स हैं जो कि सारी दुनिया में घूमते–फिरते हैं, इसमें कौन सी विशेषता है अगर कोई देश–विदेश घूम आया तो। यह सब व्यर्थ की बातें हैं, असली बात बस एक है जब गुरु के प्रति प्रेम उमड़ आया, झुकना और समर्पण घटित हो गया, शून्य हो गए, गुरु ने जगाया और हम आंख खोल दिए यहीं सबसे बड़ी घटना है। सुनो यह प्यारा गीत–

ओशो तुम मेरी आंखों की पुतली, तुम मेरे हिय का चिर कंपन,
मम चेतनता का तुम स्पंदन, तुम इन प्राणों में छिपे सघन।
तुम मम जीवन अमर साध मेरे जीवन के मूर्तरूप,
मम आराधना केन्द्र तुम्हीं, मेरे भावी जीवन स्वरूप।

शिष्य का भावी जीवन गुरु में झलकता है, जैसे किसी बीज को वृक्ष में दिखाई दे अपना भावी स्वरूप, कली को फूल में नजर आए कि मैं क्या हो सकती हूं ठीक ऐसा ही शिष्य के हृदय में घटित होता है।

तुम अपरिमेय, तुम अनुपमेय ओशो निशि के शशि भासमान,
हो तुम ऊषा की अरुण छटा मेरे विहान की मधुर तान,
शशि किरणों से तारागण से था शून्य गगन मेरा नितान्त,
कब सोचा था कि कभी होगा मेरे विछोह का भी निशांत।

कब परमात्मा से वियोग योग में परिवर्तित होगा कभी सोचा न था। यह निशांत, इस अंधेरी रात का अंत कब होगा। ईसाई फकीर कहते हैं– डार्क नाइट आफ द सोल, कभी सोचा भी न था कि इसका अंत आएगा। वह आया।

नभ में ऊषा मुस्काएगी छिटकेगा जीवन में विहान,
कब सोचा था मैं गाऊंगा, नवल मिलन के मधुर गान।

खिल उठा आज मेरा सतदल उन्मुक्त हुए मेरे अलिगण,
लहराया मधुर–मधुर परिमल, गुन–गुन, गुन–गुन गूंजा गुंजन।
भीतर ब्रह्म का नाद गूंजने लगा एक ओंकार सतनाम।

अद्भुत, अपरिमेय, अतुलनीय घटित होता है।

पद नग का कोमल किरण जाल छाया मेरे गगन आंगन में,
वे ललित–ललित लघु लाल–लाल पद चिन्ह अंके मन प्रांगण में,
क्या कहूं कि क्या मैं हुआ आज कृत कृत्य कहूं चिर धन्य कहूं,
ओशो जब आए मम हृदय राज तब निज को क्यों न अनन्य कहूं।

जब गुरु शिष्य के जीवन में प्रवेश करता है शिष्य अनन्य हो जाता है, एक हो जाता है, एकात्म हो जाता है और गुरु के साथ एक होकर परमात्मा के साथ भी अद्वैत घटित हो जाता है।

मेरे सुहाग का सूर्य उदित उठाई सिंदूर की यह लाली,
मेरे सनेह का शशि प्रमुदित मेरी निसि हो गई दीवाली,
मेरे चंदा, मेरे सूरज यों हीं चमका करना निस दिन,
मेरे रहस्य मेरे अचरज, जीवन होगा दूभर तुम बिन।

गुरु के बिना शिष्य का जीवन जीवन ही नहीं है, सबसे परम घटना गुरु का आना है।

क्या कहूं कि मैं क्या हुआ आज कृत कृत्य कहूं चिर धन्य कहूं,
ओशो जब आए मम हृदय राज, तब निज को क्यों न अनन्य कहूं।

क्यों गुरु की इतनी महत्ता, क्योंकि गुरु के बाद फिर परमात्मा ही है। गुरु द्वार है। पंजाब में मंदिर को गुरुद्वारा कहते हैं न, गुरु द्वार है। जीसस ने भी बाइबिल में कहा है आई एम द गेट, मैं एक द्वार हूं। ओशो ने अपनी किताब का शीर्षक चुना है आई एम द गेट, वास्तव में गुरु एक द्वार है जिससे परमात्मा में प्रवेश होता है।

अगला प्रश्न है महादेवी पटेल का जो कि अहमदाबाद गुजरात से हैं, कहती हैं मेरी मुख्य समस्या ईर्ष्या है। साइकोलाजी में एमए किया है, सब समझती हूं, अपने से गए–बीते व्यक्तियों की तुलना करके क्षणिक संतोष मिलता है मगर पुनः अवसर आने पर ईर्ष्या से अभिभूत होकर आग में जल–भुन जाती हूं इससे मेरा तो नुकसान होता ही है अन्य लोगों को भी कष्ट पहुंचता है।

महादेवी, तुमने मनोविज्ञान में पोस्ट ग्रेजुएशन तो कर लिया लेकिन मूल बात को न पकड़ पाई। असली बीमारी है तुलना, तुमने तुलना छोड़ी ही नहीं। अगर तुम अपने से आगे वालों से तुलना करोगी तो हीनता की ग्रंथि पैदा होगी, ईर्ष्या उत्पन्न होगी, जलन भीतर पैदा होगी। अपने से गए–बीते लोग, अपने से पिछड़े हुए लोगों से तुलना करोगी तो तुमको सुपीरियरटी कांपलेक्स पकड़ेगा, घमंडी हो जाओगी, दोनों ही रुग्ण अवस्थाएं हैं। न तो सुपीरियर हो, न तो इनफीरियर हो, हर व्यक्ति अद्वितीय और अनूठा है, अनुपमेय है। यहां दो लोग एक जैसे होते ही नहीं इसलिए तुलना का सवाल ही नहीं। जब तक तुम तुलना करोगी तब तक ईर्ष्या से मुक्त न हो सकोगी।

तुम मूल बीमारी को नहीं छोड़ रही हो। तुम कह रही हो कि मैं अपने से गए–बीते हुए लोगों से तुलना करती हूं तो क्षणिक संतोष मिलता है। निश्चितरूप से तुम अपने से कुरूप

किसी स्त्री को देखोगी तो तुम्हें लगेगा कि मैं ही ठीक, तुम अपने से किसी गरीब को देखोगी तो तुम्हें लगेगा कि अरे मैं ही अमीर, तुम अपने से ज्यादा बीमार किसी को देखकर प्रसन्न होओगी कि अरे इससे ज्यादा स्वस्थ तो मैं ही हूं। लेकिन दुनिया में तुमसे ज्यादा सुंदर लोग भी हैं, तुमसे ज्यादा अमीर भी हैं, तुमसे ज्यादा स्वस्थ और तुमसे ज्यादा प्रतिभाशाली भी हैं। तुमने सिर्फ एमए किया है, यहां तो पीएचडी और डीलिट वाले भी हैं। डबल एमए वाले भी हैं, फिर क्या करोगी, असली बीमारी की जड़ पकड़ो वह है तुलना। प्रत्येक व्यक्ति अद्वितीय है इस बात को स्वीकारो।

अगला प्रश्न है, पूछ रहे हैं स्वामी अंतस प्रसाद बंगलौर से, क्या इंटरनेट के माध्यम से ओशो प्रवचन निःशुल्क सुनने की तथा किताबें पढ़ने की व्यवस्था है?

निश्चत ही, आज के आधुनिक युग में इंटरनेट के जमाने में ओशो का साहित्य, उनके प्रवचन, उनके फोटोग्रापस, आडियो और वीडियो दोनों ही इंटरनेट पर उपलब्ध हैं। बहुत से मित्रों ने फ्री आफ चार्ज व्यवस्था भी की है नेट पर।

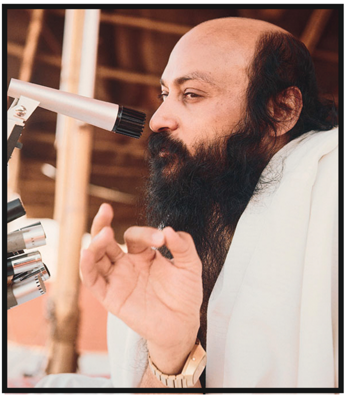

अध्याय–34

आत्मा का पुनर्जन्म

आज का पहला प्रश्न पूछा है गया बिहार से स्वामी उमाशंकर ने, क्या ओशो आत्मा के पुनर्जन्म के सिद्धांत को सही मानते हैं?

उमाशंकर, ओशो मानते नहीं, जानते हैं। मानना एक अंधविश्वास होता है, जानना एक स्वयं सिद्ध अनुभव होता है। दोनों में जमीन आसमान का फर्क है। एक अंधा आदमी प्रकाश को माने तो उसके जीवन में कोई परिवर्तन नहीं होगा, उसको टटोलकर ही चलना होगा, लकड़ी का सहारा लेना ही होगा, तब भी दीवालों से टकराएगा और गड्ढे में गिरेगा। वह प्रकाश को माने अथवा न माने इससे कोई अंतर नहीं पड़ता, उसकी जिंदगी वही की वही रहती है। असली सवाल है आंख खुलना, अंधापन दूर हो और हम प्रकाश को जानें। तो ओशो के संबंध में कृपया ऐसे सवाल न पूछें कि वे इस चीज को मानते हैं कि नहीं मानते हैं। वे कुछ भी नहीं मानते हैं, उनका जोर जानने पर है। न ही वे तुमसे अपेक्षा करते हैं कि तुम कुछ मानो।

वे कोई विश्वास पकड़ाना नहीं चाहते, बहुत हो गया विश्वास की लाठियां टेककर चलते–चलते, उससे हमारा अंधापन दूर नहीं होता और उससे हमारी जिंदगी के दुख और दीवालों से टकराना भी दूर नहीं होता। अब तो आंख का इलाज करो। बुद्ध कहा करते थे कि मैं एक चिकित्सक हूं मैं तुम्हारा उपचार कर सकता हूं। तुम्हारी आंख पर कोई जाली पड़ गई है, कि मोतिया बिन्दु हो गया है, उसको ठीक कर सकता हूं।

धर्म एक प्रकार की चिकित्सा है। मानने की कोई भी जरूरत नहीं, ओशो पुनर्जन्म के सिद्धांत को मानते नहीं लेकिन अपने स्वयं के अनुभव से जानते हैं। ओशो की एक प्रवचन

माला है, मैं कहता आंखन देखी, उस प्रवचन माला में वे बताते हैं स्वयं के पिछले जन्म के बारे में जो आज से करीब सात सौ साल पहले हुआ था। बुद्ध और महावीर ने जातिस्मरण के बहुत प्रयोग किए और अपने शिष्यों से करवाए। धीरे–धीरे वह प्रक्रिया विस्मृत हो गई, भूल गई। आज फिर से पश्चिम में वैज्ञानिक रूप से जातिस्मरण के प्रयोग पुनः शुरू हुए। पश्चिम के बड़े–बड़े मनोवैज्ञानिक, हिप्नोटिस्ट इस पर बहुत काम कर रहे हैं। लोगों को सम्मोहन में ले जाकर उनके विगत जन्म की याद उन्हें दिला रहे हैं। कालान्तर में वैज्ञानिकरूप से पुनर्जन्म सिद्ध हो जाएगा। लेकिन याद रखना, वह सिद्धांत के रूप में सिद्ध होगा, उससे तुम्हारे जीवन में कोई रूपांतरण नहीं होगा।

वैज्ञानिक कोई चींज कहने लगेंगे ऐसा है, तुम भी मानने लगोगे लेकिन असली बात है कि तुम स्वयं उसको जानो, तुम खुद पहचानो तब तुम्हारे जीवन में रूपांतरण होगा। उदाहरण के लिए समझो, मौत के प्रति हमारे मन में भय है, यह नहीं मिटेगा किसी सिद्धांत से, हजारों वैज्ञानिक अगर सिद्ध कर दें कि पुनर्जन्म होता है और आत्मा नहीं मरती इससे भी हमारा मृत्यु का भय नहीं मिटेगा। वह तो हम खुद ही जब जानेंगे तभी मिटेगा। इसलिए जानने पर जोर, निश्चितरूप से पुनर्जन्म होता है लेकिन मैं मानने के लिए नहीं कह रहा हूं। मैं आपको आमंत्रित करूंगा, आओ ओशोधारा की अमृत समाधि में। ओशो की एक किताब है मैं मृत्यु सिखाता हूं, उसमें ओशो ने जो प्रयोग सिखाए हैं अमृत समाधि में, ओशोधारा में हम वे प्रयोग आपको कराएंगे और तब आप स्वयं के आत्मस्वरूप को जानेंगे जो न मरता न जन्मता।

इस संबंध में एक बात और कहना चाहूंगा, हमारी भाषा में दो शब्द गलत हैं उन्हें बदल देना चाहिए, एक आत्महत्या, आत्मा की कोई हत्या नहीं हो सकती क्योंकि आत्मा अमर है और दूसरा आत्मा का जन्म, पुनर्जन्म। न आत्मा का जन्म होता न आत्मा की मृत्यु होती। यह ऐसा ही है जैसे आकाश, जो न कभी पैदा होता न मरता। हां, चांद, सूरज, पृथ्वी बनते हैं, मिटते हैं, सृष्टि होती है, प्रलय होती है, आकाश में बहुत कुछ जन्मता है, बहुत कुछ मरता है लेकिन आकाश स्वयं कभी न जन्मता न मरता, वह अजन्मा और अमृत है। ठीक ऐसे ही हमारी आत्मा है। अब आप पूछेंगे कि फिर किसका जन्म होता है? ओशो कहते हैं मन का जन्म होता है। मन यानि विचारों का, स्मृतियों का, संस्कारों का संग्रह। बुद्ध ने इसके लिए एक शब्द का इस्तेमाल किया है स्मृतिआलय, द स्टोर हाउस आफ द मेमोरी।. वे स्मृतियां पुनः जन्म लेती हैं और नए शरीर में, नए मस्तिष्क में फिट हो जाती हैं।

जैसे कंप्यूटर के हार्डडिस्क में हम कोई नया प्रोग्राम डाल दें और उस प्रोग्राम के अनुसार वह कंप्यूटर चलने लगेगा ठीक इसी प्रकार स्मृतियां साफ्टवेयर की तरह हैं, वह प्रोग्रामिंग हैं, वह हमारे संस्कार हैं। प्रोग्रामिंग के लिए जो सबसे अच्छा शब्द है वह है संस्कार, हमारी आदतों का संग्रह। यह शरीर, यह मस्तिष्क, यह जो ब्रेन है खोपड़ी के अंदर यह हार्डडिस्क का काम करेगा, यह हार्डवेयर है कंप्यूटर की, इसमें आकर वह संस्कार, स्मृति का जाल फिट हो जाएगा और यह उसके अनुसार फिर काम करने लगेगा। तो उस स्मृतिआलय का जन्म होता है, आत्मा का जन्म नहीं होता, न आत्मा की कोई मृत्यु होती।

मैंने सुना है सेठ चंदूलाल की मृत्यु हो गई। पंडित मटकानाथ ने आकर उनकी बीबी से कहा कि आज रात सपने में सेठ जी आए और उन्होंने मुझसे कहा कि जाओ मटकानाथ मेरी पत्नी के पास और उसे आदेश दो कि किसी पंडित को एक माह तक रोज स्वादिष्ट भोजन कराए तो मैं आ गया हूं, अब मुझे भोजन कराओ। चंदूलाल की विधवा पत्नी ने कहा आप झूठ बोल रहे हैं पंडित जी, मेरे पति आदेश दे ही नहीं सकते, अरे जीते-जी जिसने कभी आज्ञा नहीं दी वह मरने के बाद क्या आज्ञा देगा। खाक में मिल जाने के बाद वे मुझे क्या खाक हुक्म देंगे, जिंदा रहते हुए उनकी हिम्मत नहीं पड़ी हुक्म देने की।

आदमी का मन वहीं का वहीं रहता है जैसे संस्कार थे, जैसे विचार थे, जो जीने का ढंग था मृत्यु के बाद भी वहीं होगा। फिर नया जन्म ले लेगा यह व्यक्ति, फिर वैसा ही जिएगा। जो इस जन्म में जोरू का गुलाम है वह अगले जन्म में भी जोरू का गुलाम होगा, जो इस जन्म में पत्नी को आज्ञा न दे सका वह अगले जन्म में भी न दे पाएगा। वही संस्कार कांटीन्यू रहेंगे, निरंतरता बनी रहेगी, जो इस जन्म में साधक है वह अगले जन्म में फिर साधक हो जाएगा। फिर उसकी साधना आगे बढ़ने लगेगी। हम जिंदगी में जो भी कर रहे हैं यह संस्कार, यह विचार, यह स्मृतियां, यह प्रवृत्तियां हमारे साथ जाएंगी। और इसलिए हमारा एक जन्म एक जन्म ही नहीं है, अगले जन्म की कहानी भी हम इसमें लिख रहे हैं, हम इस जीवन में जो कर रहे हैं वही अगले जीवन में भी कहानी चलती रहेगी। एक एपीसोड खत्म होगा, दूसरा एपीसोड खत्म हो जाएगा, कहानी वही रहेगी। अगर तुम्हें कुछ परिवर्तन करना है अपने भावी जीवन में तो अभी और आज से ही शुरू कर दो।

अगला प्रश्न, सांसारिक आकर्षण छूटते नहीं, धर्म में उत्सुकता जागती नहीं, परमात्मा ने अधर्म में इतना रस क्यों डाला है? अगर रस ही डालना था तो उसमें दुख क्यों भर दिए? पूछा है हराधन पांडेय, धनबाद से।

हराधन पांडे, तुम्हारे कारण ही दुख भरे हैं। एक पैकेज डील है, अधर्म के साथ, पाप के साथ दुख हैं। आज कल बाजार में विज्ञापन चलता है न, बाय वन एण्ड गेट वन फ्री, ऐसे ही तुम पाप खरीदने जाओगे तो दुख उसके साथ पहुंच जाएंगे। आश्चर्य है कि फिर भी आदमी जागता नहीं। इतने दुख भोगता है, इतने कष्ट पाता है फिर भी वही गलत काम किए चला जाता है। कितनी बार तुमने क्रोध किया, पश्चाताप किया, कष्ट पाया फिर भी क्रोध करते चले जाते हो। कितनी घृणा में जिए, बैर भाव में जिए, भारी तकलीफें झेली लेकिन घृणाभाव को छोड़ते नहीं, घृणा का आकर्षण कम नहीं। परमात्मा ने चमत्कार नहीं किया, चमत्कार तो तुम कर रहे हो।

धर्म में है आनंद, प्रेम करो और प्रेम के साथ ही आनंद की वर्षा हो जाती है। करुणा से भरो, मैत्रीभाव, सदभाव से भरो, मंगलभाव से भरो और आशीष बरस जाते हैं। आश्चर्य, फिर भी तुम प्रेम को तूल नहीं देते, फिर भी तुम मंगलभावनाओं को अपने जीवन में जगह नहीं देते, एकदम चमत्कारी बाबा हो। पुण्य के साथ सुख है, पाप के साथ दुख है लेकिन आश्चर्य फिर भी हम दुख में आकर्षित होते हैं। एस धम्मो सनंतनो नामक प्रवचन माला में भगवान बुद्ध की वाणी को समझाते हुए परमगुरु ओशो ने कहा–

'विषयरस में सुख–दुख देखते हुए जो जीता है वह निरंतर दुख में गिरता है। इस बात को विस्तार में समझ लेना जरूरी है क्योंकि समस्त योग और समस्त अध्यात्म इसी बात की समझ में खड़ा होता है। विषय में रस मालूम होता है, रस विषय में है या मनुष्य की अपनी धारणा में। कभी कुत्ते को देखा, सूखी हड्डी को चूसता है और रस पाता है। सोचता है कि सूखी हड्डी से लहू निकल रहा है लेकिन लहू निकलता नहीं, सूखी हड्डी में कहां लहू। लेकिन जब सूखी हड्डी चबाता है तो उसके मुंह से ही लहू बहने लगता है। सूखी हड्डी गड़ती है, चोट करती है मुंह में तो लहू निकल आता है, उसी लहू को वह पीता है और सोचता है हड्डी से रस मिल रहा है। लेकिन अगर कुत्ते को समझाओ तो वह नहीं समझेगा, उसने कभी भीतर प्रवेश करके देखा नहीं कि सूखी हड्डी से कैसे रस निकलेगा। सूखी हड्डी रसहीन है और अगर रस निकल रहा है तो कहीं मुझसे ही निकलता होगा।

जीवन का जो रस है वह वस्तु और विषय में नहीं है, वह स्वयं तुममें है। और जब तक तुम उसे विषय में देखोगे तब तक गलत मार्ग में भटकते रहोगे क्योंकि तुम विषय का पीछा करोगे। जब तुम देखोगे कि वह रस मुझमें ही है, वह मैंने ही डाला है वस्तु में, वह मैंने ही प्रक्षेपित किया है, वह रस मैंने ही आरोपित किया है उसी दिन तुम्हारे जीवन में क्रांति शुरू हो जाएगी। तब रस को खोजना हो तो अपने भीतर गहरे जाओ। अब बाहर जाने की कोई जरूरत न रही। दुनिया में दो ही तरह की यात्राएं हैं। एक बाहर की यात्रा है अधिक लोग उसी यात्रा पर जाते हैं क्योंकि उनको दिखता है कि रस बाहर है, हड्डियों में रस मालूम होता है। फिर कुछ लोग जाग जाते हैं और उन्हें दिखाई पड़ता है कि बाहर तो रस नहीं है, रस मैं ही डालता हूं और मैं ही अपने को भरमा लेता हूं। रस मुझमें है तो फिर वे अंतर्यात्रा पर जाते हैं।'

कबीर साहब ने कहा है, कस्तूरी कुंडल बसे, मृग ढूंढ़े वन माहिं। आनंद का स्रोत हमारे भीतर है किन्तु हमें वह दिखाई बाहर पड़ता है यह हमारी भ्रांति है। कस्तूरी मृग को सुगंध आती है, उसी की नाभि से आ रही किन्तु वह समझता है कि वह कहीं बाहर है। भागता है, दौड़ता है वह सुगंध की खोज में दीवाना हो जाता है। पेड़–पौधों से टकराता है, लहू लुहान हो जाता है ठीक वैसी ही दुर्गति हमारी है। झील में चांद का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता लेकिन झील में है नहीं। अगर हम झील में कूद जाएंगे चांद को पकड़ने के लिए, वह प्रतिबिम्ब भी खो जाएगा। झील तरंगित हो जाएगी, चांद खो जाएगा। झील में प्रतिबिम्ब को देखकर समझो कि चांद ठीक विपरीत दिशा में है, ऊपर की तरफ नजर उठाओ।

ऐसे ही संसार के विषय हैं, उनमें जो आकर्षण जान पड़ते हैं वह हमारा ही डाला हुआ है, हमारे भीतर का स्वभाव ही संसार के दर्पण में प्रतिबिम्बित होकर दिखाई दे रहा। समझदार बनो, समझो कहां से आ रही है सुवास। यह कस्तूरी है कहां, विषय में नहीं तुममें, आब्जेक्ट में नहीं सब्जेक्ट में और तुमने जीवन का सबक सीख लिया और तब तुम अंतर्यात्रा पर निकल जाओगे।

अगला प्रश्न उदयपुर राजस्थान से संतोष शर्मा पूछते हैं, एक कहावत सुनी थी, जहां चाह वहां राह लेकिन मेरी जिंदगी में केवल चाह ही चाह है, कोई राह नहीं, कोई मंजिल नहीं। माता–पिता ने नाम रखा था संतोष

शर्मा, मुझे कहने में बहुत शर्म आती है कि मुझमें संतोष नाम की कोई चीज नहीं है। प्रभु मेरे लिए कोई संदेश दें।

संतोष शर्मा, संतोष तुम्हें इसलिए नहीं हो रहा है कि जो तुम्हारे भीतर छुपा है उसे तुम बाहर खोज रहे हो। कस्तूरी मृग पेड़–पौधों से टकरा रहा है। सबक सीखो, आनंद का स्रोत तुम्हारे भीतर है। वरना जिंदगी इसी प्रकार असंतोष से भरी रहेगी। किसी गीतकार ने लिखा है–

न जाने क्या गुनाह किए जा रहा हूं मैं,
गम और जहर के जाम पिए जा रहा हूं मैं।
आदमी की कहानी बस यही तो है।
न जाने क्या गुनाह किए जा रहा हूं मैं,
गम और जहर के जाम पिए जा रहा हूं मैं।
यह है कशिश हयात की या खौफ मौत का,
जीं बुझ चुका है फिर भी जिए जा रहा हूं मैं।
मस्ती नसीब होगी बड़ी मुद्दतों के बाद,
यह सोच खुद को धोखा दिए जा रहा हूं मैं।
आया था ले के हसरते दीदारे जमाले दोस्त,
दिल में उम्मींदें लिए जा रहा हूं बस।

क्या–क्या उम्मींदे और तमन्नाएं लेकर आए थे, कहीं कुछ मिलता नहीं। फिर भी हम सबक सीखते नहीं। फिर उन्हीं हसरतों और तमन्नाओं के साथ विदा हो जाते हैं, फिर पुनर्जन्म ले लेंगे, फिर आ जाएंगे, फिर वही व्यर्थ की खोज शुरू। जागो, चौंको, समझो कहां है स्रोत आनंद का, वह तुम स्वयं ही हो।

सोनीपत हरियाणा से मां देवलता पूछती हैं ओशो की दृष्टि में सफल कौन है?

संक्षिप्त में ही कहूंगा ओशो का एक वचन–'धन्य हैं वे जो स्वयं को खोजते, स्वयं को पाते और स्वयं हो जाते।' झील के प्रतिबिम्बों से जागो। कस्तूरी कुण्डल बसे, स्वयं की खोज में लगो, स्वयं को पाओ और स्वयं ही हो जाओ। यही एक मात्र सफलता है।

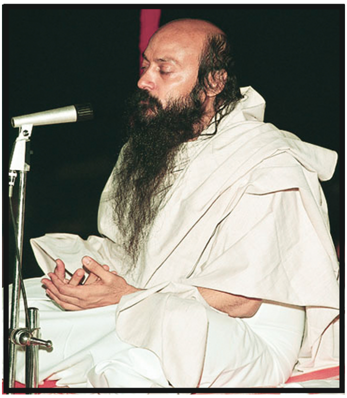

अध्याय–35

भोग में योग

संगमनेर महाराष्ट्र से स्वामी ध्यान विस्तार पूछते हैं, ओशो कहते हैं कि संसारी कर्मों के कीचड़ में ही संन्यास का कमल खिलता है, भोग में योग की धारणा यदि सत्य है तो ओशो के पूर्व किसी अन्य ज्ञानी ने ऐसी धारणा क्यों नहीं दी?

ध्यान विस्तार, सभी ज्ञानियों ने ऐसा ही कहा है लेकिन अज्ञानी समझ नहीं पाए। मिस अंडरस्टैंडिंग पैदा हो जाती है, अर्थ का अनर्थ हो जाता है। देखो राम के साथ सीता की मूर्ति, राम का नाम बाद में आता है और सीता का नाम पहले लोग ले लेते हैं, कहते हैं सीताराम, कहते हैं राधा–कृष्ण, कहते हैं उमाशंकर। शिव के साथ शक्ति जुड़ी हुई हैं, कृष्ण के साथ राधा जुड़ी हुई हैं, कौन छोड़कर भागा? कोई भी छोड़कर नहीं भागा, राजा जनक महल में रहे और वहीं जल में कमलवत हो गए। भगवान कृष्ण तो युद्ध के मैदान तक में खड़े रहे, जरूरत पड़ी तो लड़े भी। जीवन से इतना प्रेम है कि जीवन की रक्षा के लिए लड़ा भी जा सकता है।

सिक्ख गुरुओं का पूरा इतिहास उठाकर देखो, सभी गृहस्थ लोग थे, तलवार उठाने की जरूरत पड़ी तो तलवार भी उठाई। संन्यासी भी थे और सैनिक भी हुए, जीवन के उत्तरदायित्व से भागे कहीं नहीं। संत रैदास का उदाहरण लो कि संत कबीर का, दादू दयाल का कि चरणदास का, सहजो बाई का कि दया बाई का, किसी ने भी त्याग न किया, सभी लोग सांसारिक दायित्व को निभाते हुए, अपने उत्तरदायित्व को निभाते हुए सन्यस्थ हो गए।

उपनिषद काल के ऋषियों की कहानी पढ़ो। सबकी पत्नी हुआ करती थीं, सबके बच्चे हुए, बड़ा गुरुकुल हुआ करता था। कई गुरु तो इतने संपन्न थे कि सम्राट उनसे धन उधार

लिया करते थे, धन को छोड़कर ऋषि भागे नहीं थे। वैदिक ऋषियों की कहानी देखो, राजाओं की टक्कर में उनकी बराबरी थी। संन्यास की धारणा भगवान कृष्ण ने जो गीता में दी है ठीक वही धारणा ओशो ने दी है। आपको जानकर आश्चर्य होगा, जब ओशो कृष्ण मेरी दृष्टि नामक प्रवचनमाला पर व्याख्या दे रहे थे, उसी प्रवचनमाला के दौरान ओशो ने नवसंन्यास की धारणा दी और पहले सन्यासियों को दीक्षित किया। यह खूबसूरत घटना सन 1970 में हिमाचल प्रदेश के मनाली में घटित हुई। स्वाभाविक है, सहज ही है कृष्ण को समझाते हुए संन्यास की यह धारणा देना।

लोग स्वर्ग में कल्पवृक्ष की कल्पना करते हैं, अगर कृष्ण की, ओशो की, जनक की बात को समझोगे तो वह कल्पवृक्ष के ठीक विपरीत है। कल्पवृक्ष का अर्थ है कि हमको कर्म न करना पड़े, बस हम कामना करें और कामना पूरी हो जाए, फल सीधे मिल जाए बीच में कर्म की जरूरत न पड़े। और कृष्ण जैसे ज्ञानीजन हमें समझा रहे हैं कि कर्म में रस लो, कर्म का आनंद लो, कर्म छोड़कर भागना नहीं है, फलासक्ति त्यागना है। देखना कितनी बड़ी गलतफहमी, वह कह रहे हैं कर्म नहीं छोड़ना है, फलासक्ति छोड़ना है और हम समझते हैं कि फल पाने के लिए हमें कर्म छोड़ना होगा। फल की आसक्ति तो हमारी छूटती नहीं। वह जो संन्यासी हो गए हैं उनके मन में भी कामना है, किसी को मोक्ष पाना है, किसी को स्वर्ग पाना है, किसी को ईश्वर साक्षात्कार करना है तो कामना तो उनकी छूटी नहीं, फलासक्ति तो ज्यों का त्यों है और भी ज्यादा हो गई। पहले तो छोटी सी घर-गृहस्थी बसानी थी, तुमको तो स्वर्ग चाहिए, फलासक्ति और बड़ी हो गई। सुनो इस बारे में ओशो क्या कहते हैं-

'हे पुरुष श्रेष्ठ, वह संन्यास, वह त्याग तीन प्रकार का कहा गया है तथा यज्ञ, दान और तप रूप कर्म त्यागने के योग्य नहीं है, वे निःसंदेह ही करने चाहिए। उनका करना कर्तव्य है क्योंकि यज्ञ, तप और दान यह तीनों ही बुद्धिमान पुरुषों को पवित्र करने वाले हैं। इसलिए हे पार्थ, यह यज्ञ, तप और दान रूप कर्म तथा और भी संपूर्ण श्रेष्ठ कर्म आसक्ति और फलों को त्यागकर अवश्य करने चाहिए ऐसा मेरा निश्चय उत्तम मत है। कृष्ण कहते हैं यज्ञ, दान और तप इन्हें भी छोड़ने की कोई जरूरत नहीं।

कृष्ण एक संतुलन बैठा रहे हैं इस लोक में और परलोक में। कृष्ण इस संसार के विरोध में नहीं हैं और उस संसार के पक्ष में हैं। यह थोड़ी नाजुक बात है। क्योंकि साधारणतः जो लोग परलोक के पक्ष में हैं वे इस लोक के विपक्ष में होते हैं, जो लोग इस लोक के पक्ष में हैं वे परलोक के विपक्ष में होते हैं। तुम किसी की सेवा करो तो धन्यवाद भी मत मांगना अन्यथा सेवा व्यर्थ हो गई। तुम तपस्या करो तो परमात्मा की तरफ शिकायत से मत देखते रहना कि मैं इतनी तपस्या कर रहा हूं और अभी तक कुछ हुआ नहीं। तपस्या को तुम आनंद मानकर करना, तुम अगर दान दो तो देने में सुख लेना, देने के पार और देने के बाद तुम्हारी कोई आकांक्षा न हो इसलिए तो गुप्त दान को श्रेष्ठतम दान कहा गया है कि जिसे दिया है उसे धन्यवाद देने का भी मौका न मिले। उसे पता ही न चले कि किसने दिया है और देने वाले को इतनी भी आकांक्षा न हो कि जब राह पर जिसे उसने दिया है वह मिले तो नमस्कार करे, कि अखबार में खबर छपे, कि रेडियो पर घोषणा हो।

फल की आकांक्षा बताती है कि तुम्हारे जीवन में साधन और साध्य अलग–अलग हैं, साधन अभी और साध्य भविष्य में है और योग का सारसूत्र यही है कि साधन ही साध्य हो जाए। यह वर्तमान क्षण ही तुम्हारा सारा भविष्य हो जाए, आज में सब समा जाए, इस कृत्य में ही सारा समाविष्ट हो जाए, उसके पार कोई आकांक्षा न हो। जिस दिन साधन ही साध्य हो जाता है और जिस दिन कदम ही मंजिल हो जाती है, जिस दिन तुम जहां बैठे हो वहीं होना मोक्ष हो जाता है उसी दिन पा लिया। कृष्ण की पूरी प्रक्रिया कर्म त्याग की नहीं, फलाकांक्षा के त्याग की है। और फलाकांक्षा का त्याग वही कर सकता है जिसने बड़ी सात्विक प्रौढ़ता को पाया हो। फलाकांक्षा का त्याग तामसी नहीं कर सकता। क्योंकि तामसी तो कर्म का त्याग कर सकता है, फल का त्याग नहीं कर सकता है। तामसी की आकांक्षा क्या है, वह कहता है फल तो सब मिलने चाहिए कर्म कुछ भी न करना पड़े यह तामसी की आकांक्षा है। वह कहता है कि बैठे–बैठे मिल जाए तो हम राजी हैं।'

स्वामी ध्यान विस्तार, कल एक सवाल था न उदयपुर के संतोष शर्मा का, वे कह रहे थे कि कहावत सुनी है जहां चाह है वहां राह है किन्तु मेरे जीवन में चाह ही चाह है, दुख ही दुख है, राह तो कहीं मिलती नहीं, मंजिल तो कहीं मिलती नहीं। मैं तुम्हें एक नहीं कहावत देना चाहूंगा, जहां चाह वहां आह। जहां कामना है वहां दुख है। तो फलासक्ति त्यागो, कामना को त्यागो, वासना को त्यागो, कर्मों को नहीं, कर्मों को तो आनंदपूर्वक करो। यहीं सांसारिक कर्मों में रहते हुए सन्यस्थ होने की धारणा सभी ज्ञानी जनों ने दी है।

अगला प्रश्न पूछती हैं मां धर्म संगीता, रोहिणी, दिल्ली से, कृष्ण की उत्सवपूर्ण जीवनशैली और रासलीला के बारे में ओशो की दृष्टि समझाएं?

ओशो की जीवन दृष्टि है कि सारा जीवन ही रास है। कृष्ण का गोपियों के साथ रास तो उस विराट अस्तित्वगत रास की एक छोटी सी झलक है। चारों तरफ देखो, रास ही रास तो चल रहा है, यहां और क्या हो रहा है। जरा गौर से नजर उठाओ फूल खिले हैं वह वृक्षों का रास है, कोयल कुहू–कुहू कर रही है, पपीहा पीहू–पीहू कर रहा है, कि मोर अपने पंख फैलाकर नाच रहे हैं, सब तरफ रास हो रहा है। रास को जरा काज्मिक मीनिंग में, विराट अर्थों में देखो। छोटी से छोटी चीज से लेकर बड़ी से बड़ी चीज तक, चांद घूम रहा है पृथ्वी के चारों तरफ, पृथ्वी घूम रही है सूरज के चारों तरफ, सूरज लगा रहा है किसी और महाग्रह के चक्कर, एक नृत्य चल रहा है, रास हो रहा है, कृष्ण का नृत्य किसी नृत्य का प्रतीक है। इलेक्ट्रांस घूम रहे हैं प्रोटान्स के चारों तरफ। प्रेम जिसे हम कहते हैं फिजिक्स की भाषा में तुम उसे गुरुत्वाकर्षण कह लो। वह आकर्षण सब तरफ मौजूद है।

चुंबक में धन और ऋण ध्रुव होते हैं, विद्युत में दो पोल्स होते हैं, हर जगह विपरीत मौजूद है। देखते हो मकान का राज, मिस्त्री आर्च बनाता है दरवाजे के ऊपर, विपरीत दिशा में ईंटों को जोड़ देता है और वे मकान को सम्हाल लेती हैं। सारा अस्तित्व विपरीत एनर्जी से बना हुआ है। चीन में उसे इन और यांग कहते हैं, हम उसे धन और ऋण कह सकते हैं, पुरानी भाषा में उसको पुरुष और प्रकृति कहा गया है, स्त्रैण और पुरुष कहा गया है। नाम कुछ भी दो बस एक बात को ख्याल रखना, अगर तुमने इन दोनों को विपरीत समझा, इन दोनों को

एक–दूसरे से लड़ाया तो जीवन की उलझन खड़ी हो जाएगी, जीवन नर्क बन जाएगा, यह दोनों कंट्राडिक्ट्री नहीं, कंप्लीमेंट्री हैं। यह एक–दूसरे के विपरीत नहीं, एक–दूसरे के परिपूरक हैं तब इनमें एक गहन प्रेम घटित होगा और उस प्रेम से स्वर्ग निर्मित हो सकता है।

कृष्ण का रास इसी का प्रतीक है, पुरुष और प्रकृति का वह खेल है, सारे जीवन को एक खेल की भांति देखो। और यह जो मिलन घटित होता है विपरीत ऊर्जाओं का उससे अद्वैत फलित होता है। नृत्य अद्वैत के सर्वाधिक नजदीक है इसलिए रास के लिए नृत्य को चुना गया। नृत्य की एक खूबी है, नर्तक और नृत्य अलग–अलग नहीं होते। अन्य सब चीजों में जैसे रचनाकार और रचैता भिन्न–भिन्न हो जाते हैं। एक कुम्हार घड़ा बनाता है तो कुम्हार अलग हो गया और घड़ा अलग हो गया। एक पेंटर से हम पूछ सकते हैं कि आपकी पेंटिंग कहां है और वह आल्मारी से निकालकर बता सकता है। हो सकता है पेंटर कल मर जाए पेंटिंग फिर भी सैकड़ों साल तक रहेगी। ताजमहल बनाने वाले समाप्त हो गए ताजमहल आज भी है चार–पांच सौ साल बाद भी।

नृत्य की एक खूबी है, नर्तक और नृत्य एक–दूसरे से अभिन्न हैं। किसी नर्तक से आप पूछ नहीं सकते कि आपका डांस कहां रखा हुआ है निकालकर बताइए। नर्तक जब नाचता है केवल तभी नृत्य है, अलग से कोई नृत्य नहीं है। इसलिए हमने भगवान शिव की नाचती हुई प्रतिमा बनाई नटराज की, वह प्रतीक है इस सारे अस्तित्व के रास का। सारा अस्तित्व नाच रहा है, परमात्मा नृत्यमग्न है यह संसार उसका नृत्य है। वह इससे भिन्न और पृथक नहीं है, अगर उसे खोजना है तो इसी नृत्य में खोजना होगा। शिव की एक और मूर्ति है अर्धनारीश्वर के रूप में, आधे शिव, आधे पार्वती, इन और यांग का मिलन, विपरीत ऊर्जाएं मिल गईं एक हो गईं, अद्वैत फलित हो गया। तो कृष्ण के रास को इस भांति देखना।

नृत्य प्राचीनतम मुद्रा है, जब भाषा विकसित नहीं हुई थी तब भी मुद्राएं विकसित हो गई थीं। आप किसी परदेश में चले जाएं और आपको प्यास लगी हो आप पानी मांगें तो पानी तो कोई नहीं समझेगा वहां की भाषा में लेकिन अगर आप हाथ से चुल्लू बनाकर बताएं कि मुझे पीना है तो कोई भी समझ जाएगा कि आप पानी मांग रहे हैं। मुद्राएं बड़ी प्राचीन हैं, हमारे अचेतन में समाई हुई हैं, नृत्य मुद्राओं का जोड़ है। भाषा तो चेतन मन की खोज है, नृत्य हमारे अचेतन में गहरी जड़ों में समाया हुआ है। रास प्राकृतिक है, नेचुरल है। आदिवासी जंगलों में इतने प्रसन्न रहते हैं उसका कारण यह है रोज रात को सब मिलते–जुलते हैं, स्त्री–पुरुष मिलकर ढोल–नगाड़े बजाते हैं, नाचते हैं और नृत्यमग्न होने के बाद सो जाते हैं। जब विपरीत ऊर्जाएं आपस में मिलती हैं तो एक अद्भुत घटना घटती है दोनों ही एक–दूसरे को निर्भार और हल्का कर देते हैं। जीवन एक ऊंची छलांग लेता है, विपरीत के मिलन से जीवन अपने उत्कर्ष पर पहुंचता है, कृष्ण का रास भी उसी का प्रतीक है।

अगला प्रश्न है, ओशो पर सेक्स गुरु होने का आरोप क्यों लगा जबकि भगवान शिव और भगवान कृष्ण पर नहीं लगा, ऐसा क्यों? पूछते हैं स्वामी योग देवेन्द्र, सागर, मध्यप्रदेश से।

देवेन्द्र, पुराने जमाने में लोग ज्यादा प्राकृतिक और नैसर्गिक थे। काम को, जीवन की

शुरूआत को उन्होंने सहज रूप से स्वीकारा हुआ था। कृष्ण के रास का कहीं भी किसी शास्त्र में विरोध नहीं है। खजुराहो, कोणार्क, पुरी के मंदिरों का किन्हीं ग्रंथों में विरोध नहीं है, यह तांत्रिक मंदिर हैं। शिव की तो पूजा ही शिवलिंग के रूप में होने लगी, पार्वती की योनि ओर शिवलिंग पूजा के हिस्सा बन गए, मंदिर के अंग बन गए। जब लोग प्राकृतिक थे तब प्रकृति का सहज स्वीकार था, सम्मान था। कालांतर में न जाने किन दुर्भाग्य की घड़ियों में जीवन विरोधी धारणाएं उत्पन्न हो गईं। विशेषकर बौद्ध भिक्षुओं के द्वारा, जैन मुनियों के द्वारा, फिर आदि शंकराचार्य के संन्यासी भी उसी पथ पर चल पड़े जीवन विरोधी धारणाओं में, फिर त्यागवादी संन्यास आ गया और कृष्ण का संन्यास खो गया। फिर ईसाई मिशनरी भारत में आए, ईसाई पादरी भी अविवाहित रहता था। यह त्यागवादी धारणाएं ज्यादा मजबूत हो गईं, कामवासना का सप्रेषण और दमन प्रचलित हो गया।

जैसे–जैसे सभ्यता विकसित हुई हम अपनी प्रकृति से दूर चले आए इसलिए तुम्हारा प्रश्न ठीक ही है। अगर सेक्स गुरु आरोप लगना था तो कृष्ण और शिव पर लगना था लेकिन नहीं लगा क्योंकि उस समय के लोग ज्यादा सहज, ज्यादा नैसर्गिक थे, ज्यादा जीवन स्वीकार भाव में जीते थे। आधुनिक युग में आते–आते, सभ्यता का विकास होते–होते लोग प्रकृति से बहुत दूर हो गए, कामवासना निंदित हो गई और कामवासना के साथ सारा जीवन ही निंदित हो गया। क्योंकि जीवन की शुरूआत ही काम से होती है। सुनो एक प्यारा गीत महाकवि नीरज का लिखा हुआ–

बस यही अपराध मैं हर बार करता हूं,
आदमी हूं आदमी से प्यार करता हूं।
एक खिलौना बन गया दुनिया के मेले में,
कोई खेले भीड़ में कोई अकेले में,
मुस्कुरा के भेंट हर स्वीकार करता हूं,
आदमी हूं आदमी से प्यार करता हूं।
हूं बहुत नादान करता हूं मैं नादानी,
बेचकर खुशियां खरीदूं आंख का पानी,
हाथ खाली हैं मगर व्यापार करता हूं,
आदमी हूं आदमी से प्यार करता हूं।
मैं बसाना चाहता हूं स्वर्ग धरती पर,
आदमी जिसमें रहे बस आदमी बनकर,
उस नगर की हर गली तैयार करता हूं,
बस यही अपराध मैं हर बार करता हूं,
आदमी हूं आदमी से प्यार करता हूं।

भगवान शिव ने, भगवान कृष्ण ने सबने जीवन के प्रति प्रेम सिखाया, इंसान का इंसान से प्रेम सिखाया लेकिन दुर्भाग्य की बात ओशो के ऊपर यह आरोप लगा। बस यही अपराध मैं हर बार करता हूं। प्रेम का मसीहा कहा जाना चाहिए था उन्हें, वह ज्यादा उचित होता। जो कृष्ण ने सिखाया, जो शिव ने सिखाया, जो जनक ने सिखाया, जो नानक ने सिखाया वही ओशो ने सिखाया है। आदमी हूं आदमी से प्यार करता हूं।

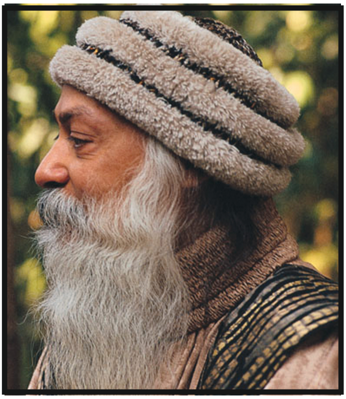

अध्याय–36

भीतरी रूपांतरण

भैरहवा नेपाल से लक्ष्मी शर्मा पूछती हैं मेरे पति को तम्बाकू खाने की बुरी आदत है, मेरे बहुत समझाने पर भी वे नहीं मानते। मेरे पिताजी को भी यही लत सवार थी, मैंने और मेरी मम्मी ने उन्हें समझाने का बहुत प्रयास किया परंतु असफल रहे। दो माह पहले पचासी वर्ष की आयु में मेरे पिताजी का देहान्त हो गया फिर भी मेरे पति नहीं सुधरते, मैं उन्हें कैसे समझाऊं? आपका आशीर्वाद चाहिए।

लक्ष्मी शर्मा, तुम्हारे मां ने भी किसी साधु–संन्यासी का आशीर्वाद लिया होगा, वह काम नहीं किया होगा, असफल हो गया होगा। उन असफल होने वालों की लिस्ट में मैं अपना नाम नहीं जोड़ना चाहता। तुम क्यों पति को सुधारने के पीछे पड़ी हो, यह अनपेड जॉब। क्या इसके बदले में कोई तनख्वाह तुम्हें मिलती है। महिलाओं ने अपनी जिंदगी समर्पित कर दी सुधारने के कार्य में, दुनिया को सुधारने में लगी हुई हैं। पहले पति को सुधारने की कोशिश में लगी रहती हैं पंद्रह–बीस साल, पता चलता है कि पतिदेव तो नहीं सुधरे, तब तक बच्चे बड़े हो जाते हैं और फिर उनको सुधारने की कोशिश में पड़ जाती हैं माता के रूप में। वे भी नहीं सुधरते, तब तक बहू आ जाती है और अब बहू को सुधारने की कोशिश, फिर नाती–पोतों को सुधारने की कोशिश और एक दिन सबको सुधारते–सुधारते वे खुद स्वर्ग सिधार जाती हैं। अब बेचारे तम्बाकू खा रहे हैं तो खाने दो, तुम ऐसा नहीं सोचना कि तुम केवल तम्बाकू के पीछे ही पड़ी हो। कुछ और अगर करते तो तुमको वही बुरा लगता।

अस्सल में महिलाओं के भीतर एक ईर्ष्या की प्रवृत्ति है जो कि बहुत गहन है। अगर पति को किताब पढ़ने का शौक है तो पत्नी किताब की दुश्मन हो जाएगी, अगर पति को अखबार पढ़ने में मजा आता है तो अखबार नहीं पढ़ने देगी, अगर पति को टीवी पर न्यूज़ देखना अच्छा लगता है वह उसी समय टीवी पर दूसरा सीरियल लगाकर बैठ जाएगी और न्यूज़ न देखने देगी। पता भर लग जाए कि किसी चीज में इनको सुख है वहीं भर न करने दो। करीब–करीब एक ऐसा ही सवाल गीतादर्शन में ओशो से किसी व्यक्ति ने पूछा था तम्बाकू की लत के ऊपर, सुनो ओशो ने क्या कहा–

'तम्बाकू के बड़े गुण हैं। बाजार में तम्बाकू का एक व्यापारी बड़े जोर–जोर से चिल्ला–चिल्लाकर तम्बाकू बेच रहा था। वह कह रहा था कि जो लोग तम्बाकू खाते हैं उनके घर में चोर कभी नहीं घुसते, जो लोग तम्बाकू खाते हैं कुत्ते उन्हें कभी नहीं काटते, अरे काटना तो दूर उसके पास तक नहीं फटक सकते और तीसरा सबसे बड़ा फायदा यह है कि वे लोग कभी बूढ़े नहीं होते। ब्रह्मचारी मटकानाथ ने जब यह सुना तो उन्हें तो बड़ा ही आश्चर्य हुआ कि अरे, तम्बाकू में इतने फायदे। उन्होंने व्यापारी से कहा कि जरा विस्तार से बताओ कि तम्बाकू खाने वाले व्यक्तियों के घर में चोर क्यों नहीं घुसते और कैसे उन्हें कुत्ते नहीं काटते। और सबसे बड़ा जो फायदा है वह यह कि आदमी कभी बूढ़ा नहीं होता। ऐसी बातें न तो मैंने किन्हीं शास्त्रों में पढ़ीं, न किन्हीं ज्ञानियों से सुनीं, यह तम्बाकू का राज पहली दफा तुमसे सुन रहा हूं? व्यापारी बोला कि स्वामी जी आप अपने बीच के हैं इसलिए बताए देता हूं वरना यह तो उस्तादों की बातें हैं, उस्ताद ही कहते हैं और उस्ताद ही समझते हैं, राज ही यह गहरा है सुनिए।

तम्बाकू खाने वाले को ऐसी खांसी चलती है कि रात सोना हराम हो जाए और जब सोओगे ही नहीं रात भर खांसते ही रहोगे तो किस चोर की मजाल जो घर में घुस जाए और रही बात कुत्ते के काटने की तो जब तम्बाकू खाओगे और तम्बाकू पिओगे तो खांसी चलने से जो कमजोरी आएगी तो एक छड़ी तो कम से कम रखोगे न हाथ में, अरे छड़ी टेक–टेककर ही चलोगे न और छड़ी देखकर तो दुश्मन भी भाग जाते हैं फिर कुत्तों की क्या बिसात। ब्रह्मचारी जी बोले कि और आदमी कभी बूढ़ा नहीं होता यह कैसे? व्यापारी बोला अरे स्वामी जी, वह बूढ़ा हो ही नहीं पाता क्योंकि बूढ़ा होने के पहले ही मर जाता है। दयानंद, मत छोड़ो, जीभर के पियो, जीभर के खाओ ऐसे–ऐसे गुण हैं। तुम किसी की बातों में मत पड़ना कि तम्बाकू पाप है। फिर सवाल क्यों उठता है कि मैं तम्बाकू खाने की लत से परेशान हूं। अगर एक लत छोड़ भी दोगे तो कोई दूसरी लत पकड़ोगे।

अस्सली सवाल तम्बाकू नहीं है, अस्सली सवाल लत है। मैं लोगों को जानता हूं, एक आदत छोड़ने के लिए वह दूसरी पकड़ लेते हैं, दूसरी छोड़ने के लिए तीसरी पकड़नी पड़ती है, कोई न कोई परिपूरक चाहिए न नहीं तो खाली–खाली लगता है। तम्बाकू बैठे–बैठे चबाते क्यों हो, अगर तम्बाकू नहीं चबाओगे तो लोगों का सिर खाओगे, वह और भारी बीमारी है उसमें लोग भी परेशान होंगे। इसमें तो तुम अकेले ही चबा रहे हो तो चबाते रहो, तुम किसी दूसरे का सिर तो नहीं खाते। अगर तम्बाकू नहीं खाओगे तो बकवास करोगे। इस पर वैज्ञानिक शोध हुई है कि जो लोग तम्बाकू खाते हैं या अमरीका में च्विंगम बैठे चबाते रहते हैं यह लोग बातचीत कम करते हैं,

इनमें एक सद्‌गुण होता है। बातचीत करें कैसे, अब जो आदमी दो–दो पान दोनों तरफ रखे हुए है वह बात करे तो पिचकारी चल जाए सो अपनी पिचकारी सम्हाले कि बात करे। सो ऐसे आदमी बड़े भले होते हैं, चुपचाप बैठे अपना काम करते रहते हैं, भीतर ही भीतर उनका मजा चलता रहता है। जो लोग तम्बाकू नहीं खाते, पान नहीं चबाते, च्विंगम नहीं चबाते वह भी मुंह तो चलाएंगे इसलिए तो स्त्रियां ज्यादा मुंह चलाती हैं कि न तो उनको तम्बाकू खाने दो, न सिगरेट पीने दो, न बीड़ी पीने दो, न चिलम पीने दो, तुम कुछ भी न करने दो तो मुंह तो चलाएं।

चंदूलाल के पिताजी मरे, तो मित्रों ने पूछा कि क्या मरते वक्त पिताजी कुछ कह गए? चंदूलाल ने सिर ठोंक लिया, वे बोले कि पिताजी तो कहना चाहते थे मगर क्या करें, माता राम आखिर तक साथ रहीं और जब तक माताजी बोलतीं पिताजी को सुनना पड़ता था और माता जी बोलती ही चली गईं तो पिताजी मर गए। लगता तो थो कि कुछ कहना चाहते थे, दो–चार बार कोशिश भी की मगर माताराम के सामने किसी की चले तब तो। स्त्रियां बहुत बकवास करती हैं, वह मुंह चलाने का जो समय बच गया मुंह तो चलाएंगी।'

लक्ष्मी शर्मा, तुम पूछती हो कि पति को कैसे समझाऊं? मैं सोच रहा हूं कि तुमको कैसे समझाऊं। अगर सुधारना ही है तो केवल एक व्यक्ति है जिस पर तुम्हारा वश चलता है और वह तुम स्वयं हो। कबीर साहब कहते हैं, बुरा जो देखन मैं चला बुरा न मिलिया कोय, जो भीतर खोजा आपने मुझ सा बुरा न कोय। दूसरों से नजर हटाओ, उनको स्वतंत्रता दो, कम से कम जिन्हें तुम प्रेम करती हो उनको तो स्वतंत्रता दो, उनका सम्मान करो जैसे वे हैं, यही तो प्रेम का लक्षण है। अपने ऊपर नजर लाओ, अपने भीतर देखो, आत्मरूपांतरण की सोचो।

नवां शहर पंजाब से मां प्रेम आदर्श पूछती हैं, देश की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं के संबंध में अपनी क्रांतिकारी मौलिक विचारधारा देकर ओशो ने बहुतेरे निःस्वार्थियों को नाराज किया। यदि वे ऐसा न करते तो भारत में ज्यादा सम्मानित धर्म पुरुष के रूप में प्रतिष्ठा पाते, वे राजनीति के बारे में चुप क्यों नहीं रह गए?

प्रेम आदर्श, अगर वे चुप रह जाते तो वह चालाकी होती, वह राजनीति होती। ओशो एक सरल, सहज, स्वाभाविक व्यक्ति हैं, साहसी व्यक्ति हैं उनके भीतर कोई चालाकी नहीं है। मान और प्रतिष्ठा की चिंता ही तो राजनीति है, चालाकी है, हम क्यों चाहें कि लोग हमारा सम्मान करें। सम्मान की चिंता सद्‌गुरुओं को नहीं होती, सत्य की चिंता होती है। देश अगर गड्ढे में जा रहा है और अगर वे अपनी दूरदृष्टि से देख रहे हैं कि ऐसा हो रहा है और वे आवाज न दें, टोंकें न यह राजनीति हो गई कि सम्मान पाने के खातिर कुछ न कहो, चुप रह जाओ। वह चुप रहना चालाकी होगी। तो कुछ लोग जो राजनीति में बोल रहे हैं जो कि राजनीतिज्ञ के रूप में जाने जाते हैं वे राजनीतिज्ञ हैं और कुछ साधु–महात्मा जो इस संबंध में बिल्कुल मौन धारण किए हैं, कुछ कहते ही नहीं वे भी राजनीतिक हैं, वे भी चालाक हैं।

मैंने सुना है चंदूलाल और नसरुद्दीन शाम को घूमने जा रहे थे। दूर से देखा कि विचित्तर सिंह चला आ रहा है। नसरुद्दीन ने कहा कि चलो भाई हम लोग यहां से अपना रास्ता बदल लें क्योंकि मुझे इसको दो सौ रुपए देने हैं। चंदूलाल ने कहा कि मैं रास्ता नहीं

बदलूंगा, तुम्हारे संग नहीं जाऊंगा क्योंकि मुझे उससे पांच सौ रुपए लेने हैं। वह जो रास्ता बदल रहा है वह भी चालाक और जो नहीं बदल रहा है वह भी चालाक। वह जो राजनीति के संबंध में वक्तव्य दे रहे हैं वे भी राजनेता और वे जो चुप हैं वे भी राजनेता। इसलिए ओशो ने जो अपनी क्रांतिकारी मौलिक दृष्टि दी, उन्होंने जो आह्वान दिया, उदाहरण के लिए जनसंख्या बढ़ रही और ओशो ने प्रवचन दिया जनसंख्या विस्फोट के ऊपर, परिवार नियोजन के पक्ष में, एक बड़ी समस्या से डूबने के पक्ष में आवाज दी यह उनकी सरलता का प्रतीक है। भलीभांति जानते हैं कि इस देश में जो भी आदमी परिवार नियोजन के पक्ष में कहेगा उसकी खिलाफत होगी, लोग उसको गालियां देंगे।

एक समय था जब देश समाजवाद की ओर मुड़ गया था यद्यपि उस समय सारी दुनिया को यही नजर आ रहा था कि मार्क्स के विचार सही हैं, ओशो की दूरदृष्टि यह देख पा रही थी कि समाजवाद गैरप्राकृतिक है, यह संभव नहीं है, अभी नहीं हो पाएगा। हां, समाज बहुत संपन्न हो जाए उसके बाद एक नए प्रकार का समाजवाद आ सकता है। लेकिन फिलहाल गरीबी की हालत में समाजवाद का कोई उपयोग नहीं।

ओशो ने एक लंबी प्रवचनमाला दी, समाजवाद से सावधान। निश्चितरूप से उस समय सारे लोग नाराज हुए, सारे देश ने उनकी खिलाफत की लेकिन चालीस साल बाद यह सिद्ध हो गया जब रूस में साम्यवाद समाप्त हुआ और चीन का साम्यवाद टूटने लगा और जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया और करीब-करीब सारी दुनिया से जब साम्यवाद उखड़ गया। चालीस साल बाद सिद्ध हुआ कि ओशो की दूरदृष्टि सही थी। और उस समय उन्होंने देश में जो हवा पैदा की और भारत को समाजवाद के गड्ढे में गिरने से बचाया यह उपयोगी था। यद्यपि इसके लिए उनको अपमान सहना पड़ा, बेइज्जती सहनी पड़ी। लोग कहेंगे कि आप धार्मिक आदमी हो आपको क्या लेना देना पूंजीवाद और समाजवाद से, तुम्हारा प्रश्न ठीक है।

तुम कह रही हो कि वह ज्यादा सम्मानित धर्मपुरुष के रूप में प्रतिष्ठा पाते अगर समाज के संबंध में, राजनीति के संबंध में कुछ न कहते। लेकिन वह कुछ न कहना राजनीति होती। सच्चा धर्मपुरुष जो समस्याएं दिखाई देंगी उनके जो समाधान उन्हें सूझेंगे वह कहेंगे, वह टोकेगा कुछ भूल-चूक हो रही है तो इसलिए ओशो ने जो किया बिल्कुल ठीक किया। क्योंकि उन्हें मान और प्रतिष्ठा की जरा भी फिक्र न थी। मान की चिंता अहंकार का लक्षण है, राजनीति का लक्षण है।

इंदौर से मां प्रीति सुधा पूछती हैं कि भक्ति में इतनी विरह वेदना क्यों है?
विरह की पीड़ा के कंट्रास्ट में ही उस पृष्ठभूमि में ही मिलन का आनंद है इसलिए। भक्त के लिए पीड़ा का दुख भी नकारात्मक नहीं नजर आता। जैसे काले बादलों के बीच में सफेद बिजली चमकती है, जैसे ब्लैकबोर्ड पर शिक्षक लिखता सफेद चाक से तो उभर के दिखाई देती है ठीक इसी प्रकार इस विरह वेदना से गुजरकर ही प्रभु मिलन का आनंद है। मीराबाई कहती हैं न, अंसुअन जल सींच-सींच प्रेम बेल बोई, अब तो बेल फैल गई आनंद फल होई। बड़े आंसू सींचने पड़ते हैं, इस प्रेम की बेल को, भक्ति की बेल को फैलाने के लिए लेकिन एक दिन जरूर आनंद के फल आते हैं। भक्त की दृष्टि बड़ी विराट है। वह कहता है वे जो आंसू हैं, वे जो पीड़ा

है, वे जो विरह के दिन हैं वह जो तड़फ है वह भी उपयोगी है उसी के द्वारा एक दिन परमानंद के, सच्चिदानंद के फल आते हैं। सुनो यह गीत–

छांह तो देते नहीं, मधुमास लेकर क्या करूंगी,
बांह तो देते नहीं, विश्वास लेकर क्या करूंगी।
तृप्ति तो देते नहीं यह प्यास लेकर क्या करूंगी,
गीत तो देते नहीं, उछ्वास लेकर क्या करूंगी।
सांस तो देते नहीं, उल्लास लेकर क्या करूंगी,
बांह तो देते नहीं, विश्वास लेकर क्या करूंगी।

भक्त बांह चाहता है विश्वास नहीं, वह भगवान को चाहता है सिद्धांत नहीं, वह दर्शनशास्त्र में उत्सुक नहीं है, वह तो प्रभु के दर्शन में ही उत्सुक है। निश्चितरूप से बड़ी पीड़ा से गुजरना होता है, महादुख आ पड़ता है। सांसारिक आदमी क्या खाक दुख जानता है, जैसा दुख भक्त जानता है। लेकन इस महादुख के कंट्रास्ट में ही फिर महासुख, महाआनंद फलित होता है। ऐसे समझो जैसे प्रसव पीड़ा होती है तभी कोई मां बनने का सुख भी ले पाती है। अगर हम कोई शार्टकट खोज लें प्रसव पीड़ा से बचाने का जैसा कि आजकल होने लगा है, ऑपरेशन के द्वारा बच्चे का जन्म। जहां देखो वहीं सीजेरियन सेक्शन, डॉक्टर जबरदस्ती किए जा रहे हैं, बिना काम के किए जा रहे हैं। मां प्रसव पीड़ा से तो बच गई पर याद रखना, उस पीड़ा के बाद जो मातृत्व पैदा होता था तुमने उस मातृत्व से भी उसको वंचित कर दिया।

मैंने सुना है नसरुद्दीन के बेटे फजलू से कोई पूछ रहा था कि बेटा तुम्हारी कितनी उम्र है? फजलू ने कहा आठ वर्ष। उस व्यक्ति ने कहा कि तुम्हारे मां की उम्र कितनी है? उसने कहा कि मां की उम्र भी आठ वर्ष। फिर पूछा कि पिता की उम्र कितनी है? फजलू बोला पिता की उम्र भी आठ वर्ष है। पूछने वाला थोड़ा हैरान हुआ, तुम्हारा दिमाग खराब है, तुम आठ साल के हो तो कम से कम तुम्हारी मां नौ महीने बड़ी तो होनी ही चाहिए। फजलू ने कहा नहीं, जिस दिन मैं पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ उसी दिन मेरी मां, मां बनी, मेरे पिता, पिता बने। उसके पहले मां, मां नहीं थी। तो केवल बेटे का ही जन्म नहीं होता, मां का भी जन्म होता है उसी दिन। जिस दिन पुत्र पैदा हुआ उसी दिन पिता भी पैदा हुआ, उसके पहले यह आदमी पिता नहीं था, सिर्फ एक पुरुष था, अब वह पिता हुआ। फजलू बेचारा ठीक ही कह रहा है, माता–पिता उसी दिन उत्पन्न हुए।

जिस दिन पुत्र उत्पन्न हुआ। कोई महिला प्रसव पीड़ा को नकारात्मक ढंग से नहीं लेती, वह जानती है कि इस पीड़ा से ही आनंद फलित होता है, ह्रदय में मातृत्व की गहराई और बच्चे के प्रति प्रेम की प्रगाढ़ता पैदा होती है। ठीक वैसे ही भक्त की पीड़ा भी है।

अंधेरी मुंबई से मां दिव्या प्रीति पूछती हैं, वर्षों से ओशो साहित्य पढ़ती हूं, उनकी दीवानी हो गई हूं, उनके साक्षात दीदार करना चाहती हूं, अपने सिर पर उनके हाथ का स्पर्श करने को व्याकुल हूं, मैं क्या करूं?

तुमने ओशो का खूब साहित्य पढ़ा है तो जरूर योगा, दि अल्फा एण्ड दी ओमेगा भी पढ़ी होगी जिसका हिन्दी अनुवाद है पतंजलि योग सूत्र, उसमें पढ़ना ओशो का एक प्रवचन द मास्टर आफ द मास्टर्स, उसका शीर्षक है गुरुओं के गुरु। उसमें ओशो समझाते हैं कि जब कोई

सद्गुरु देह त्याग देता है तो वह ओंकार स्वरूप हो जाता है, वह ब्रह्म के नाद के साथ एकात्म होकर ब्रह्म स्वरूप हो जाता है, वह स्वयं भगवान हो जाता है और इसलिए महर्षि पतंजलि कहते हैं, देह जो त्याग चुके हैं उन सद्गुरुओं से जुड़ने का एक ही तरीका है ओंकार की साधना में डूबो। दिव्य प्रीति, वही मैं तुमसे कहूंगा, अब ओंकार की साधना में डूबो।

अब ओशो ओंकार स्वरूप हो गए हैं, वे स्वयं परमात्ममय हो गए हैं, अब उनके साक्षात दर्शन करने हैं तो रूप और आकार में नहीं होंगे। अब तो आंतरिक प्रकाश के रूप में वह जो नाम का प्रकाश है, संत पलटू साहब जिसके लिए कहते हैं, दीपक बारा नाम का। अब तो उस दीपक की ज्योति को देखना होगा, अब तो उस आंतरिक आलोक में डूबना होगा। उस भीतर के उजाले को ही अब ओशो जानना, सद्गुरु के रूप में जानना। तो जो गुरु देह त्याग चुके हैं उनसे मिलन हो सकता है, स्पर्श भी हो सकता है लेकिन अब वह स्पर्श दिव्य स्पर्श होगा, डिवाइन टच होगा। अब वे डिवाइन साउण्ड के रूप में, डिवाइन लाइट के रूप में, डिवाइन टच के रूप में मौजूद हैं। उनकी उपस्थिति का एहसास समाधि में होगा, अपने भीतर होगा, अपने भीतर डूबो।

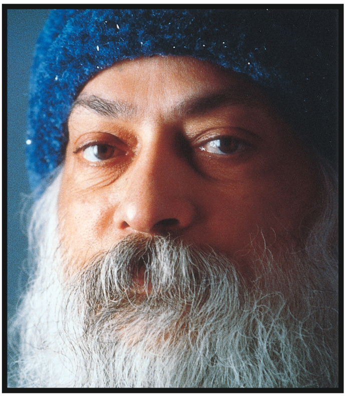

अध्याय–37

कोई शैतान, कोई भगवान

प्यारे सद्‌गुरु प्रणाम, आज का पहला प्रश्न है स्वामी प्रेम अनहद सोनाली नेपाल से, कहते हैं इस दुनिया में कोई आदमी शैतान जैसा और कोई भगवान जैसा क्यों बना दिया जाता है? क्या यह अन्याय नहीं है?

स्वामी प्रेम अनहद, तुम्हारे प्रश्न में एक भ्रांति छिपी है कि कहीं कोई दुनिया को बनाने वाला ईश्वर, इसको चलाने वाला कोई सर्वशक्तिमान तानाशाह बैठा हुआ है। यहां कोई किसी को नहीं बना रहा है, हम स्वयं अपने जीवन के निर्माता हैं। इस बात को खूब अच्छे से समझ लो। प्रत्येक व्यक्ति अपनी जिंदगी के लिए स्वयं ही उत्तरदायी है, हमको किसी ने बनाया नहीं। हम चाहें तो साधु हो जाएं, हम चाहें तो असाधु हो जाएं, हम चाहें तो शैतान हो जाएं, हम चाहें तो भगवान हो जाएं, सारी संभावनाएं खुली हैं। प्रकृति ने हमको संभावनाएं दी है, और बुद्धि–विवेक दिया है। जैसा हम होना चाहें वैसा हम होने के लिए स्वतंत्र हैं। मनुष्य के ऊपर कोई बंधन नहीं है।

यह स्वतंत्रता ही मनुष्य के दुख का कारण भी है और परम आनंद की संभावना का स्रोत भी है। इस बात को जरा गहराई से समझना। प्रकृति की तरफ से हमें स्वतंत्रता मिली है, हम जिस दिशा में चाहें उस दिशा में यात्रा कर सकते हैं। हम मंदिर भी जा सकते हैं और वैश्यागृह भी जा सकते हैं, हमारी मर्जी है, कहीं कोई रोकने वाला नहीं है। हम चाहें तो अपराधी बन जाएं, हम चाहें तो संत बन जाएं।

मैंने सुनी है एक कहानी चित्रकार के संबंध में, उसके मन में एक दिन ख्याल आया कि मैं खोजूं इस धरती पर एक ऐसे व्यक्ति को जिसको देखकर ईश्वर का ख्याल आता हो, दिव्यता की धारणा स्मरण आती हो उसका एक बहुत खूबसूरत चित्र बनाउ वह खोज में निकला, वर्षों की खोज के बाद एक छोटे से गांव में एक चरवाहा लड़का उसे मिला जो जंगल में गाएं चरा रहा था। उस चित्रकार ने इतना सुंदर व्यक्ति कभी देखा न था। किशोरावस्था का वह लड़का देखने में ऐसा लगता था कि साक्षात भगवान का अवतार हो। उस चित्रकार ने उस लड़के से निवेदन किया कि तुम थोड़ा बैठो, मैं तुम्हारा चित्र बनाना चाहता हूं, सारी दुनिया को यह चित्र दिखाना चाहता हूं कि इतना सुंदर, इतना दिव्य भी कोई हो सकता है। जिसे देखकर लगे कि खुद परमात्मा ही धरती पर उतर आया हो। इस माटी की देह में दिव्यता के लक्षण प्रगट हो गए। उसने मेहनत करके बहुत खूबसूरत पेंटिंग उस युवक की बनाई, वह पेंटिंग बहुत प्रसिद्ध हुई।

कोई चालीस साल बाद जब वह चित्रकार स्वयं बूढ़ा होने को आया तब उसके मन में ख्याल आया कि अभी वह मेरी पेंटिंग अधूरी है क्योंकि आदमी केवल भगवान जैसा ही नहीं, कुछ–कुछ शैतान जैसा भी है। एक पेंटिंग और मैं किसी ऐसे व्यक्ति की जिसे देखकर ख्याल आता हो कि अरे, यह तो साक्षात शैतान है। वह पुनः खोज में निकला, गया अपराधियों के बीच, गया पागलखानों में, गया कारागृहों में। अंततः एक कारागृह में एक भयानक अपराधी उसको मिल गया जो कई हत्याएं कर चुका था, उसे मृत्युदण्ड होना था। सजा सुना दी गई थी, बस अपनी बारी की प्रतीक्षा में था। उस भयानक व्यक्ति को देखकर चित्रकार के भी रोंगटे खड़े हो गए कि यह तो महाहत्यारा है। लेकिन उसे लगा कि इसकी पेंटिंग और बनाउं तब मेरी दोनों पेंटिंग मिलकर मनुष्य की दोनों संभावनाओं को प्रगट कर पाएंगी। उस कारागृह में बैठकर वह उस भयंकर अपराधी की पेंटिंग बनाने लगा।

जब पेंटिंग पूरी होने को थी तो उसने देखा कि वह अपराधी रो रहा है। उसने पूछा कि तुम्हारी आंखों में आंसू कैसे, तुम तो इतने कठोर दिल के हो, मैं कल्पना भी नहीं कर सकता कि तुम रोओगे? उस अपराधी ने कहा कि इसलिए रो रहा हूं, शायद आपको पता नहीं, मैं वही गांव का चरवाहा लड़का हूं, चालीस साल पहले आपने जिसकी एक पेंटिंग बनाई थी। रोना इस बात पर आ रहा है कि जिंदगी की शुरूआत मेरी कहां से हुई थी और कहां अंत हो रहा है। मैं भगवान की तरह आया था और शैतान की तरह इस दुनिया से विदा ले रहा हूं। मैं तो भूल ही गया था, लेकिन आज आपको पेंटिंग बनाते देखकर मुझे ख्याल आया कि तुम तो वही आदमी हो।

प्यारे मित्रो, हम सबकी जिंदगी की कहानी में से अधिकांश लोगों की कहानी उस चरवाहे के समान ही होती है। लेकिन याद रखना, कोई हमें बनाने वाला नहीं है, हम स्वयं अपनी जिंदगी के निर्माता हैं। हां, यह बात अवश्य है कि प्रकृति ने जो संभावनाएं दी हैं उसमें हिंसा की, क्रोध की, ईर्ष्या की, द्वेष की, तुलना की, अहंकार की पासिबिलटीज ज्यादा हैं, अगर हम मूर्छित ढंग से जिए तो हम इस नर्क में पड़ जाएंगे। लेकिन कोई हमें मजबूर नहीं कर रहा है, अगर हम जाग्रत होकर, विवेकपूर्वक, होशपूर्वक जिए तो दिव्य संभावनाओं के द्वार भी हमारे लिए खुले हुए हैं।

मुझे याद आता है श्रीमद्भागवत गीता के सोलहवें अध्याय के प्रथम श्लोक में भगवान श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन सुन, अब तुझे बताता हूं दिव्य संपदा वाले और आसुरी संपदा वाले लोगों के लक्षण। इस सूत्र पर बोलते हुए ओशो ने जो कहा है वह गौर से सुनो–

बुरे होने में जितना श्रम उठाना पड़ता है उतने ही श्रम से भलाई भी फलित हो जाती है। शैतान होना जितना आसान व कठिन है, संत होना भी उतना ही आसान और कठिन। और एक बात ठीक से समझ लें, एक ही उर्जा दोनों दिशाओं में यात्रा करती है। ऐसा मत सोचें कि बुरा आदमी तपश्चर्या नहीं करता, बुरे आदमी की भी तपश्चर्या है, उसकी भी बड़ी साधना है, उसे भी बड़ा श्रम उठाना पड़ता है, शायद भले आदमी से उसकी साधना ज्यादा दुष्कर है, कठिन है क्योंकि मार्ग में दोनों को कष्ट मिलते हैं। भले आदमी को अंत में आनंद भी मिलता है जो बुरे आदमी को अंत में नहीं मिलता। मार्ग दोनों बराबर चलते हैं, भला कहीं पहुंचता है, बुरा कहीं पहुंच भी नहीं पाता।

एक अर्थ में बुरे आदमी की साधना और भी कठिन है। जितनी बड़ी बुराई हो उतना ही अधिक दुख है। उर्जा एक, यात्रा की लंबाई एक, समय और जीवन का व्यय एक जैसा है। फिर अंतर क्या है? अंतर केवल दिशा का है। इस जगह तक आने के लिए भी आप उसी रास्ते को चुनकर आए हैं और लौटते समय भी उसी रास्ते से लौटेंगे। उतना ही फासला होगा, सिर्फ आपकी दिशा बदली होगी। यहां आते समय मुंह मेरी तरफ था और जाते समय पीठ मेरी तरफ होगी, बस इतना ही फर्क होगा। यात्रा वही की वही है। जिसे हम शुभ कहते हैं वह परमात्मा की तरफ मुंह करके चलने वाली यात्रा है।

जिसे हम अशुभ कहते हैं वह परमात्मा की तरफ पीठ करके चलने वाली यात्रा है। वे ही पैर चलते हैं, वे ही प्राण चलते हैं, जरा भी यात्रा में भेद नहीं है। और यात्रा के यही दो पथ हैं, यह अगर आपके बाहर होते तो बहुत आसानी हो जाती। यह दोनों पथ आपके भीतर हैं। चलने वाले भी आप हैं, जिस रास्ते से चलेंगे वह भी आप हैं और जिस मंजिल पर पहुंचेंगे वह भी आप हैं। आपके भीतर मूर्ति बनाने वाला, मूर्ति बनने वाला पत्थर, मूर्ति को निखारने वाली छेनी, सभी कुछ आप हैं इसलिए दायित्व भी बहुत गहन है। और दोष किसी और को दिया नहीं जा सकता। जो भी फल होगा सिवाय आपके अकेले के कोई और उसके लिए जिम्मेवार नहीं।

स्वामी प्रेम अनहद याद रखना, कहीं कोई बनाने वाला सृष्टा नहीं बैठा है जो हमारे जीवन को निर्धारित कर रहा है। आकाश में स्वर्ग के सिंहासन पर कोई तानाशाह नहीं बैठा है, हम उसके हाथ की कठपुतली नहीं हैं। मनुष्य के जीवन की यही सबसे बड़ी सौभाग्य की घटना और यही सबसे बड़ी संभावित दुर्भाग्य की भी घटना है। हम स्वतंत्र हैं, अगर विवेकपूर्वक चलोगे तो स्वतंत्रता का उपयोग होगा, नहीं चलोगे तो बुरी तरह पछताओगे, स्वतंत्रता का दुरुपयोग होगा। लेकिन हम स्वतंत्र हैं, यही हमारी गरिमा और महिमा भी है।

आज का दूसरा प्रश्न है, मेरी जिंदगी की सबसे बड़ी पीड़ा और निराशा का कारण प्रेम में मिला धोखा है। इस डिप्रेशन को मिटाने के लिए कुछ ऐसा कर दिखाना चाहता हूं कि मेरा नाम दुनिया में अमर हो जाए? पूछने वाले हैं अर्जुन तिमिलसेना, काठमाण्डू, नेपाल से।

अर्जुन तिमिलसेना, पहले इस बात को समझो कि यह प्रेम की चाहत हमारे भीतर क्यों है? हमें भीतर एक आंतरिक खालीपन, रिक्तता का एहसास होता है उस रिक्तता को भरने के लिए हम चाहते हैं कि कोई हमें प्रेम करे। हम स्वयं तो स्वयं को नहीं चाहते, हम स्वयं तो स्वयं से बचना चाहते हैं किन्तु हमारी कामना होती है कि दूसरे लोग मुझे चाहें। अगर दूसरे लोग मुझे चाहेंगे तब एक भ्रम खड़ा हो जाएगा कि मैं प्रेम करने के योग्य हूं, मैं खाली नहीं हूं, मैं रिक्त नहीं हूं, लोग मुझे चाहते हैं। अगर इस प्रकार के जीवन को जिओगे तो फिर बार–बार दुख मिलेगा, पीड़ा और निराशा हाथ आएगी। क्योंकि दूसरा व्यक्ति जो तुम्हें चाह रहा है वह भी इसी आशा में है कि तुम उसे चाहो।

एक पारस्परिक समझौता है, तुम मेरी प्रशंसा करो, मैं तुम्हारी प्रशंसा करूंगा, तुम मेरे लिए गीत गाओ, मैं तुम्हारे लिए गीत गुनगुनाउंगा। लेकिन यह धोखा सिद्ध होता है क्योंकि दोनों ही भिखारी हैं और एक–दूसरे से प्रेम चाह रहे। स्थिति करीब–करीब ऐसी है कि जैसे दो भिखारी आमने–सामने कटोरा लिए खड़े हों, देने के लिए किसी के पास भी कुछ नहीं है। दोनों ही मांगने के लिए आतुर हैं। निश्चित ही यह भिखमंगापन दुख में ले जाएगा। कुछ मिल तो सकता नहीं।

अब तुम एक और खतरनाक बात कह रहे हो, कह रहे हो कि प्रेम में मिले धोखे के कारण जो दुख हुआ, अब दुनिया में कुछ ऐसा कर दिखाना चाहता हूं कि नाम अमर हो जाए? यश की और प्रतिष्ठा की आकांक्षा भी प्रेम की ही आकांक्षा है। जिसे हम सामान्यतः प्रेम कहते हैं वह किसी एक–दो व्यक्ति से प्राप्त होने वाली प्रशंसा है और जिसे हम यश अथवा प्रतिष्ठा कहते हैं उसमें चाहत है कि बहुत–बहुत लोग मुझे प्रेम करें। अर्जुन, तुम्हारी बीमारी मिटी नहीं, और बढ़ गई। अक्सर ऐसा होता है कि जो लोग पाते हैं कि एक–दो व्यक्तियों से उन्हें प्रेम नहीं मिला वे राजनीति में रस लेने लगते हैं। वे चाहते हैं कि पूरा समाज, पूरा देश, पूरा गांव, पूरा विश्व उन्हें जाने। यद्यपि सारी दुनिया भी तुम्हें जाने तो भी कोई शांति और आनंद नहीं मिलेगा जब तक तुम खुद ही अपने आपको न जान लो। जब तक आत्मज्ञान न घट जाए यश, प्रतिष्ठा पाकर भी शांति नहीं मिलेगी, तृप्ति नहीं मिलेगी। सुनो किसी शायर ने लिखा है–

दिल ही बुझा हुआ हो तो फसले बहार क्या,
साकी है क्या, शराब क्या, सब्ज सार क्या?
दुनिया से ले चला है जो तू हसरतों का बोझ,
काफी नहीं है सिर पे गुनाहों का बोझ क्या?
वादे फिना फिजूल है नामोनिशां की फिक्र,
जब हम नहीं रहे तो रहेगा मजार क्या?

हम फना हो जाएंगे, मिट जाएंगे उसके बाद हमारा नामोनिशान रहे, अमर होने की आकांक्षा। लेकिन याद रखो, जब हम ही नहीं रहे तो हमारा मजार क्या रहेगा। वादे फिना फिजूल है नामोनिशां की फिक्र, जब हम नहीं होंगे तो रहेगा मजार क्या? और क्या फर्क पड़ता है, मजार रहा भी आए, कुछ भी फर्क न पड़ेगा क्योंकि तुम ही नहीं रहोगे। नहीं, इस प्रकार से अमरता हासिल नहीं होती लेकिन अपने भीतर के अमृत चैतन्य को जानकर जरूर शाश्वतता

का बोध होता है। मैं तुम्हारी दिशा परिवर्तित करना चाहता हूं। पहले सांसारिक प्रेम में तुम कह रहे हो धोखा मिला। वह प्रेम की वजह से नहीं मिला, तुम्हारी आशा की वजह से मिला, तुम्हारे भिखमंगेपन के कारण मिला। और अब तुम एक और दूसरे बड़े धोखे में जाना चाह रहे हो, यश पाकर अमर होने के धोखे में। यह भी संभव नहीं है, फिर धोखा मिलेगा। किसी दूसरे की वजह से नहीं, तुम्हारे सपने की वजह से। दूसरों का मिला प्रेम, दूसरों से मिली प्रशंसा भीतर के खालीपन को नहीं भर सकती। भगवान बुद्ध कहते हैं, भीतर की उस शून्यता में रमना सीखो तब एक प्रकार का भराव आएगा। झूठे सहारे मत खोजो। किसी कवि ने कहा है–

कागज की मेरी नाव और दूर किनारा है,
इस डोलती नैया का अब कौन सहारा है।
आंसू भी छलकते हैं और गम की घटाएं हैं,
देखो मेरी आंखों में सावन का नजारा है।
हमने तेरी आंखों में एक दुनिया बसाई थी,
जब तू ही फिरे हमसे फिर कौन हमारा है।

कोई तुम्हारा नहीं है और न तुम्हारा हो सकता, न तुम किसी के हो, न तुम किसी के हो सकते हो। इस तथ्य के प्रति जागृत होओ और तब तुम्हारे जीवन में अंतर्यात्रा शुरू होगी।

अगला सवाल है, पूछ रहे हैं देवराज उपाध्याय काठमाण्डू नेपाल से, कहते हैं जगत के सृष्टा को भगवान कहा जाता है। क्या वह इंसान गलत नहीं है जो स्वयं को भगवान कहता है?

सृष्टा जैसा तो जगत में कोई भी नहीं, अभी–अभी मैं चर्चा कर रहा था। हां, भगवान का अर्थ है भाग्यवान। वह परमसौभाग्यशाली व्यक्ति, जिसने अपने भीतर की भगवत्ता, अपने भीतर की दिव्यता का ज्ञान प्राप्त कर लिया और भीतर की दिव्यता, भगवत्ता को जानकर वह स्वयं भगवान स्वरूप हो गया। तो भगवान जैसा कोई व्यक्ति कहीं आकाश में नहीं बैठा है, भगवान हमारी संभावना है। हम अपने भीतर के दिव्य गुणों को बढ़ाएं, आसुरी दुर्गुणों को कम करें तो हम स्वयं भगवान हो सकते हैं।

तुम कह रहे हो कि क्या वह इंसान गलत नहीं है जो स्वयं को भगवान कहता है?

अगर तुम सृष्टा की धारणा में मानते हो तो फिर ऐसे इंसान को भी उस भगवान ने ही बनाया जो अपने आपको भगवान कह रहा है। अगर तुम्हारी नजर में वह बुरा या गलत है तो फिर याद रखना, इस बुराई और गलती के लिए भी तुम्हारा सृष्टा भगवान ही जिम्मेवार होगा। उसने ऐसा गलत आदमी क्यों बनाया, यह तो मेन्यूफैक्चरिंग डिफेक्ट है। नहीं, यह बचकानी धारणाएं छोड़ो। अक्सर ऐसा होता है कि जो इंसान के रूप में हमारे सामने होता है हम उसे बुरा कहते हैं और किसी कल्पना के व्यक्ति को, अतीत में हो चुके व्यक्ति को अवतार, तीर्थंकर, भगवान कहते हैं।

सामने है जो, लोग उसे बुरा कहते हैं,
जिसको देखा ही नहीं, उसको खुदा कहते हैं।
क्या नहीं कहते हैं कहने वाले,
जिंदगी को भी, गुनाहों की सजा कहते हैं।

नजदीकी मौत से कुछ और बढ़ा देते हैं,
जाने क्यों लोग उसे, फिर भी दवा कहते हैं।
चंद मासूम से पत्तों का लहू है यह रंग,
जिसको महबूब के हाथों की हिना कहते हैं।
सामने है जो, लोग उसे बुरा कहते हैं,
जिसको देखा ही नहीं, उसको खुदा कहते हैं।

जिसको हमने देखा ही नहीं, जिसके बारे में कुछ भी नहीं जानते केवल किताबों में लिखा है उस धारणा को हम ईश्वर कहते हैं। सामने है जो उसे लोग बुरा कहते हैं, जिसको देखा ही नहीं उसको खुदा कहते हैं। क्या नहीं कहते हैं कहने वाले, जिंदगी को भी गुनाहों की सजा कहते हैं। नजदीकी मौत से कुछ और बढ़ा देते हैं, जाने क्यों लोग उसे फिर भी दवा कहते हैं। चंद मासूम से पत्तों का लहू है यह रंग, जिसको महबूब के हाथों की हिना कहते हैं। सामने है जो लोग उसे बुरा कहते हैं, जिसको देखा ही नहीं उसको खुदा कहते हैं।

यह व्यर्थ की बातें छोड़ो। कहीं कोई खुदा नहीं है। हां, तुम खुद खुदा बन सकते हो।

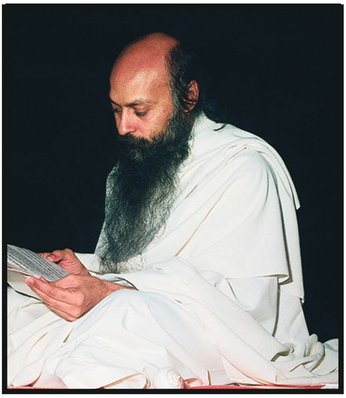

अध्याय–38

भक्ति में मस्ती

स्वामी जी प्रणाम, आज का पहला प्रश्न विपिन पंड्या सिकंदराबाद से, पूछते हैं, ओशो की दृष्टि से महर्षि शांडिल्य के भक्ति शास्त्र का सार–सूत्र समझाने की कृपा करें। भक्तों के जीवन में इतनी मस्ती कहां से आती है, भगवान को जाने बगैर उसके प्रति हम प्रेम रस में कैसे डूबें?

यह सवाल महत्वपूर्ण है कि भगवान को जाने बगैर उसके प्रति प्रेमभाव से कैसे भरें? तो भगवान को जानो। सबसे पहले भगवान को जानो, उसके बिना भक्त न बन सकोगे। परमात्मा हमारे भीतर, हमारी अंतरात्मा में ब्रम्हनाद के रूप में मौजूद है। एक अद्भुत संगीत गूंज रहा है, संत उसको अनहद नाद या ओंकार की ध्वनि कहते हैं। निश्चित ही यह सवाल महत्वपूर्ण है। उसे जाने बगैर कोई भी वास्तव में भक्त बन नहीं सकता, वह भक्ति झूठी ही होगी। महर्षि शांडिल्य उसे गौणीय भक्ति नाम देते हैं। और ओंकार को जानकर जो भक्ति पैदा होती है उसे पराभक्ति कहते हैं, वही असली भक्ति है। गौणीय भक्ति तो बच्चों के खेल–खिलौने हैं। कोई मूर्ति पूजा कर रहा है, कोई आरती उतार रहा है, कोई अन्य क्रिया–काण्ड कर रहा है। असली पराभक्ति प्रभु को जानने के पश्चात ही संभव है।

जिसे तुमने जाना ही नहीं उसके प्रति प्रेम भी कैसे पैदा होगा, वह प्रेम झूठा ही होगा। वह किसी भय या लोभ पर आधारित होगा, वह सच्चा प्रेम हो ही नहीं सकता। इसलिए ओंकार को जानो। शांडिल्य के भक्ति शास्त्र की शुरूआत वहां से होती है, ओम अथातो भक्ति जिज्ञासा। ओशो ओम को समझाते हुए आरम्भ में कहते हैं कि अगर तुमने इस एक शब्द को

समझ लिया तब कुछ और समझने को बाकी नहीं रह जाता। यद्यपि चालीस प्रवचनों की लंबी प्रवचन माला ओशो ने दीं। लेकिन उन्होंने बार–बार रिपीट किया कि जिसने ओम को जाना उसने सब जान लिया। अब विस्तार में कह लिया हूं उनके लिए जो ओम को नहीं समझ पाए। ठीक ऐसी हीं बात ओशो ने गुरुनानक देव जी के जपजी पर बोलते हुए कहा कि जिसने इन तीन शब्दों को समझ लिया, एक ओंकार सतनाम, उसने सब समझ लिया। आगे तो बस इसी बात को विस्तृत ढंग से कहने का उपाय है। पूरा जपजी, पूरा आदि गुरुग्रंथ साहब इसमें समा गया। असली बात है ओम। सुनो स्वयं ओशो की अमृतवाणी में ओम की महिमा–

'ओंकार बनता है तीन ध्वनियों से– अ, उ, म। यह तीन मूल ध्वनियां हैं, शेष सभी ध्वनियां इन्हीं ध्वनियों के प्रकरान्तर से भेद हैं। यही असली त्रिवेणी है, अ, उ, म। यही त्रिमूर्ति है, यही शब्द ब्रम्ह के तीन चेहरे हैं। सब शास्त्र अ, उ, म में समाहित हो गए। हिन्दुओं के हों, कि मुसलमानों के, कि ईसाइयों के, बौद्धों के, कि जैनों के भेद नहीं पड़ता, जो भी कहा गया है अब तक और जो नहीं कहा गया सब इन तीन ध्वनियों में समाहित हो गया है। ओम कहा तो सब कहा, ओम जाना तो सब जाना। इसलिए वेद घोषणा करते हैं कि जिसने ओंकार को जान लिया उसे जानने को कुछ और शेष नहीं रहा। निश्चित ही यह उस ओंकार की बात नहीं है जिसे तुम अपने पूजागृह में बैठकर दोहरा लेते हो, यह ओंकार तो तुम्हारे पूरे जीवन की सुगंध की तरह प्रगट होगा तो समझोगे।

तुम्हारे जीवन में बड़ी छंदहीनता है, तुम्हारा जीवन टूटा–फूटा हुआ सितार हुआ, जिसके तार या तो बहुत ढीले हैं या बहुत कसे हैं और किस तार पर कैसे अंगुलियां रखें उसका शास्त्र ही तुम भूल गए हो और उस सितार को कैसे बजाएं उसकी भाषा ही तुम्हें नहीं आती। तुम सितार लिए बैठे हो, सितार में छिपा संगीत तुम्हारी प्रतीक्षा करता है और जीवन बड़ी पीड़ा से भरा है। यह सारी पीड़ा रूपांतरित हो सकती हैं, तुम गाओ, तुम गुनगुनाओ, तुम्हारे भीतर की सरिता बहे, तुम नाचो, भक्ति जीवन का परमस्वीकार है। इसलिए शुभ ही है कि शांडिल्य अपने इस अपूर्व सूत्र ग्रंथ का उद्घाटन ओम से करते हैं। ठीक ही है क्योंकि भक्ति जीवन में संगीत पैदा करने की विधि है। जिस दिन तुम संगीतपूर्ण हो जाओगे, जिस दिन तुम्हारे भीतर एक भी स्वर ऐसा न रहेगा जो व्याघात उत्पन्न करता है, जिस दिन तुम बेसुरे न रहोगे उसी दिन प्रभु मिलन हो गया।

प्रभु कहीं और थोड़ी है, छंदबद्धता में है, लयबद्धता में है, जिस दिन नृत्य पूरा हो उठेगा, गान मुखरित होगा, तुम्हारे भीतर का छंद जिस दिन स्वच्छंद होगा उसी क्षण परमात्मा से मिलन हो गया। इसीलिए तो वेद कहते हैं कि ओम को जिन्होंने जान लिया उन्हें जानने को कुछ शेष न रहा। यह शास्त्र में लिखे ओम की बात नहीं है, यह जीवन में अनुभव किए गए अनुभूत छंद की बात है। गायत्री तुम्हारे भीतर छिपी है, भगवतगीता भी, कुरान की आयतें तुम्हारे भीतर मचल रही हैं, मुक्त करो, तुम्हारे भीतर बड़ा रुदन है। जैसे किसी वृक्ष में फूल नहीं खिले, जैसे कोई नदी चट्टानों के कारण बह न सकी हो। जिस वृक्ष में फूल नहीं आते उसकी पीड़ा जानते हो? है और नहीं जैसा, जब तक फूल न आएं और जब तक सुगंध छिपी है प्राणों

में, जड़ों से जो मुक्त होना चाहती है, जो पक्षी बनकर उड़ जाना चाहती है आकाश में, जो पंख फैलाना चाहती है, जो चांद–तारों से बात करना चाहती है।

बहुत दिन हो गए कारागृह में जड़ों को पड़े–पड़े, वह छूट जाना चाहती हैं सब जंजीरों से। जब तक वह सुगंध फिर से मुक्त न हो जाए तब तक वृक्ष तृप्त कैसे होगा, तब तक कैसी तृप्ति, कैसा संतोष, कैसी शांति, कैसा आनंद? तब तक वृक्ष उदास रहता है, ऐसे ही वृक्ष तुम हो। तुम्हारे भीतर ओंकार पड़ा है बंधन में, जंजीरों में उसे मुक्त करो।'

तो बिपिन पंड्या, मैं तुम्हें आमंत्रित करता हूं ध्यान समाधि कार्यक्रम में, तुम आओ। जब आओगे तब जानोगे ओम क्या है और इससे कैसा आनंद मिलता है। तुम पूछते हो कि भक्तों के जीवन में इतनी मस्ती कहां से आती है? एक ही स्रोत है मस्ती का, भीतर की भगवत्ता की पहचान। वह तुम्हारे भीतर मौजूद है और उसे जानना भी बहुत सरल है। पुराने जमाने में तो जन्मों–जन्मों लोग साधनाएं करते थे तब ओम का ज्ञान किसी–किसी को प्राप्त होता था, सबको नहीं। परमगुरु ओशो की कृपा से अब यह मात्र नौ दिन में संभव है।

दूसरा प्रश्न है, भक्तों के समर्पण भाव तथा ज्ञानियों के तथाता भाव में क्या अंतर है? क्या कर्मयोगियों का समत्व योग इससे पृथक है? अमृत चैतन्य काठमाण्डू से पूछते हैं।

तीनों बातों में मुख्य तत्व तो एक ही है फिर भी कहने का अंदाज अलग–अलग है। कर्मयोगी कहते हैं समत्व भाव, अर्थात तुम्हारे कर्मों का क्या फल आएगा, सफलता मिलेगी या असफलता; उसके प्रति समभाव रखना, उत्तेजित मत होना। चाहे हारो, चाहे जीतो। एक बात पर कभी ख्याल किया– जब कोई जीत जाता है तो उसे फिर की माला पहनाते हैं और फिर की माला को हम कहते हैं 'हार'। विजयी को माला पहनाकर कहते हैं कि यह लो हार डालते हैं आपके गले में। अजीब बात है, जीत के बाद हार पहनाते हैं। याद दिलाने के लिए कि ज्यादा इतराओ नहीं। जिन्होंने यह शब्द गढ़ा 'हार' बड़े समझदार लोग रहे होंगे। हर जीत के बाद हार आती है, हार के बाद फिर जीत आती है। दिन के बाद रात, रात के बाद दिन। सफलता के बाद असफलता, असफलता के बाद सफलता। बीमारी के बाद स्वास्थ्य, स्वास्थ्य के बाद बीमारी... ऐसा ही क्रम चलता रहता है। जन्म के बाद मौत, मौत के बाद पपुनः जन्म। समता रखो, किसी घटना से उत्तेजित न होओ। कर्मप्रधान लोगों के लिए बड़ा महत्वपूर्ण है समत्व योग– भगवान कृष्ण की अनूठी देन!

ठीक इसी प्रकार भगवान बुद्ध ने तथाता शब्द का प्रयोग किया। इशारा इसी तरफ है लेकिन जरा दूसरे दृष्टिकोण से। तथाता अर्थात तथ्य की स्वीकृति। ऐसा है कि दिन होता है और रात भी होती है। वृक्ष में फूल हैं और यह भी तथ्य है कि कांटे भी हैं। बुद्ध स्मरण दिलाते हैं कि फूल और कांटे, दोनों, एक ही गुलाब के पौधे के अभिन्न अंग हैं। जिंदगी के सारे आयामों को इसी भांति लो, तथ्यों को स्वीकारो कि ऐसा है। जो लोग प्रेम करते हैं वही लोग घृणा भी करते हैं। जो दोस्त हैं वही दुश्मन भी बन जाते हैं। ऐसा जानकर न दोस्ती में तुम उत्तेजित होओगे, न दुश्मनी में परेशान होओगे। कबीर कहते हैं– न काहू से दोस्ती, न काहू से बैर। तथ्य को उन्होंने स्वीकार लिया कि ऐसा ही है जीवन का रंग–ढंग। सुख–दुख, आना–जाना,

सूर्योदय–सूर्यास्त, मिलन–विरह, खुशी–उदासी; विपरीत दिखने वाली बातें एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

तीसरी बात है– भक्तों का समर्पण भाव। नारद मुनि और ऋषि शांडिल्य द्वारा, वह भी उसी ओर किया गया इशारा है एक भिन्न बिन्दु से। समर्पण का अर्थ है कि अब प्रभु की जो मर्जी, अब हमारी कोई कामना नहीं, हमारी कोई आकांक्षा नहीं। इसलिए भक्त बड़ी आसानी से फलाकांक्षा से मुक्त हो जाते हैं, समत्व और तथाता उन्हें अपने आप सध जाते हैं। प्रभु के चरणों में समर्पित कर दिया स्वयं को। राजी हैं तेरी रजा में। अब कोई नाराजी नहीं, शिकायत नहीं। यह है समर्पण का भाव।

ओशो ने चौथी बात कही– अहोभाव, जिसमें उनरोक्त तीनों गुण तो शामिल हैं ही, उनके अलावा धन्यवाद भी है। अनुग्रह की भावदशा इन तीनों से ऊपर है। सिर्फ शिकायत न होना पर्याप्त नहीं, इस अमूल्य उपहार हेतु धन्यवाद भी! समत्व, तथाता, समर्पण को यदि साधना विधि कहें, तो अहोभाव सिद्धि है। वे तीनों मार्ग हैं तो अनुग्रह दशा मंजिल है। वह उपलब्धि है। उपलब्धि पर गाया हुआ गीत है। वह खुशी का इजहार है, नृत्य है, उत्सव है। अस्तित्व को हम भला क्या लौटा सकते हैं, अपनी प्रफुल्लता व्यक्त करके, बिना शब्द का उच्चारण किए 'थैंक्स' कह सकते हैं, बस!

सदगुरु ओशो ने एक प्रवचन में यह प्यारा गीत सुनाया है–

ये प्रभु की हवाएं जहां भी बहाएं खुशी से बहेंगे, विहंसते रहेंगे,
यह सांझ और सकारे यह प्रभु के नजारे, यह काले अंधेरे यह गोरे उजाले,
बहुत प्यारे–प्यारे प्रभु के इशारे, हम उसके ही रंगों में खिलते रहेंगे।
यह इबादत बहारें, यह रस की फुहारें, यह प्रभु का है आलम, यह प्रभु की पुकारें,
हमें हैं बुलाती, हमें हैं झुलाती, हम उसकी ही धुन पर थिरकते रहेंगे।
हम जिस ओर जाएं, उसी उसको पाएं, किसे याद रखें हम किसको भुलाएं?
हम उसकी लगन में, हम उसकी भजन में, हम उसकी अगन में सुलगते रहेंगे।
हमें तो हैं गाने उसी के तराने, उसी को रिझाने उसी को मनाने,
सभी नाज उसके, सभी साज उसके, वह जिस पर नचाए थिरकते रहेंगे।
ये प्रभु की हवाएं जहां भी बहाएं खुशी से बहेंगे विहंसते रहेंगे।

जीवन की नदिया जहां भी ले जाएं हम एक घास के तिनके की तरह मौज–मस्ती में बहते चलेंगे। तीनों बातें एक ही तरफ इशारा हैं लेकिन कहने का अंदाज बड़ा निराला, प्यारा और अलग–अलग है। चौथी बात सवर्हपरि है। अनुग्रह सिखाने वाले सदगुरु ओशो के प्रति हम सबका कोटि–कोटि अनुग्रह।

अगला सवाल है, मैं सभी को अच्छी सलाह देता हूं मगर मुझे कोई धन्यवाद तक नहीं देता और मेरी सलाह भी नहीं मानता, ऐसा क्यों? बच्चन सिंह आर्या, पानीपत, हरियाणा से पूछते हैं।

इससे एक बात समझो, कम से कम सलाह देना बंद करो, जब कोई तुम्हारी मानता ही नहीं। दुनिया में सबसे ज्यादा दी जाने वाली चीज और सबसे कम ली जाने वाली चीज है सलाह, मशविरा। कोई किसी की सलाह न मांगता न लेता फिर भी लोग दिए चले जा रहे हैं।

या कम से कम समत्व योग साधो, कोई माने या न माने, कोई आपकी तारीफ करे कि नाराज हो, समभाव से लेना।

मैंने सुना है एक खूबसूरत युवती बस में यात्रा कर रही थी। एक छोटा सा काले रंग का पिल्ला उसकी गोद में था जो कि बड़ी उछल-कूद मचा रहा था और वह उसको खिला रही थी। सामने बैठी एक वृद्ध महिला से न रहा गया, उसने कहा बेटी, काश इस काले-कलूटे पिल्ले की जगह तुम्हारी गोद में कोई नन्हा-मुन्ना सा बच्चा होता तो तुम्हारी सुंदरता में चार-चांद लग जाते। वह युवती भड़क कर बोली कि हरगिज नहीं, मैं शादीशुदा नहीं हूं। तुम भी कुछ ऐसी ही सलाह देते होओगे।

तुम्हें दूसरे की परिस्थिति का पूरा एहसास नहीं, उसकी समस्या का पूरा ख्याल नहीं इसलिए तुम्हारी सलाह उसके किसी काम की नहीं। व्यर्थ में परेशान न होओ। और अगर तुम्हारा शौक ही है सलाह देने का तो समत्व योग साधो, समभाव से लो चाहे जो भी परिणाम हो या तथाताभाव को साधो कि तथ्य ऐसा है कोई किसी की सलाह नहीं मानता। तुम खुद किसी सलाह मानते हो क्या?

जिन सज्जन ने सवाल पूछा है मैं उनको व्यक्तिगत रूप से जानता हूं, वह स्वयं विद्रोही किस्म के हैं, कभी किसी की सलाह नहीं माने। बड़ी छोटी उम्र में अपने परिवार वालों से छुपाकर ओशो के पास पहुंच गए थे, विद्यार्थी जीवन में ही संन्यास दीक्षा ले ली थी। निश्चितरूप से बड़े हिम्मतवर हैं, विद्रोही स्वभाव के हैं, खुद किसी की सलाह न मानी अब तुम क्यों चाहते हो कि दूसरे लोग तुम्हारी सलाह मानें। सब अपने-अपने विवेक से जीते हैं और जीना भी चाहिए।

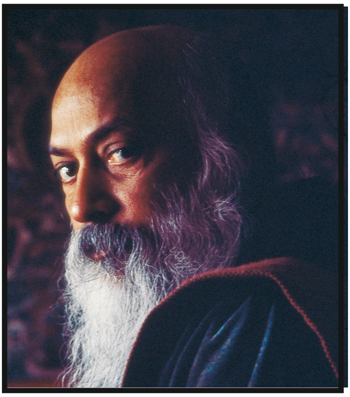

अध्याय–39

चिंतन और श्रद्धा

सद्गुरु जी को प्रणाम, आज का पहला प्रश्न सानू श्रेष्ठ काठमाण्डू से पूछते हैं कि कहा जाता है कि बुद्ध, महावीर और ओशो श्रद्धा के विरोधी हैं फिर क्यों त्रिशरन मंत्र, नमोकार मंत्र या ओशो शरणम् गच्छामि से शिष्यत्व की शुरूआत कराई जाती है। ओशो कहते हैं निर्विचार स्थिति में सत्य जाना जाता है तो खुद इतने मौलिक विचार क्यों प्रस्तुत करते हैं? चिंतन–मनन आवश्यक है या श्रद्धा, समझाने की कृपा करें?

सानू श्रेष्ठ, श्रद्धा तक ले जाने के लिए चिंतन–मनन अनिवार्य है। इन दोनों बातों में कोई भी विरोध नहीं। अगर तुम्हारे पैर में एक कांटा गड़ा है तो उसे दूसरे कांटे से निकाला जा सकता है और बाद में फिर दोनों कांटे फेक देना। ठीक ऐसे ही विचार का कांटा तुम्हारे भीतर गड़ा ही हुआ है, तुम्हारा मन निरंतर विचार कर रहा है एक विपरीत तर्क से इसे काटा जा सकता है, मिटाया जा सकता है।

अगर तुम्हारे इस मन को मैं समझाने में सफल हो जाउं कि निर्विचार में डूबो तो कामयाबी मिल गई। मेरा विचार तुम्हारे भीतर के विचारों के जाल को तोड़ सकता है। नहीं, न तो बुद्ध, न महावीर और न ओशो श्रद्धा के विरोधी हैं। लेकिन वे उस श्रद्धा की तरफ ले जाना चाहते हैं जो अनुभव से उत्पन्न होती है, मान्यता और विश्वास से नहीं। श्रद्धा तो एक वैज्ञानिक भी करता है। उसे वह कहता है हाइपोथेटिकल ट्रस्ट, एक परिकल्पनात्मक भरोसा। प्रयोग करने के पहले कुछ तो मानना पड़ेगा वरना प्रयोग की शुरूआत ही कैसे होगी। हां, यह

भरोसा सिर्फ माना हुआ है, असल में तो प्रयोग के परिणाम जब आ जाएंगे तब वास्तविक श्रद्धा पैदा होगी। ठीक इसी प्रकार अध्यात्म भी आत्मा का विज्ञान है और धर्म के साधक को भी एक हाइपोथेटिकल ट्रस्ट लेकर चलना होता है। तुम गुरु पर श्रद्धा करके शुरूआत करते हो, प्रयोग करते हो, ध्यान और समाधि में डूबते हो, जब तुम्हारे जीवन में आनंद की सुवास उड़ने लगती है और सच्चिदानंद की महक फैल जाती है तब तुम्हारा भरोसा पक्का हो जाता है, तब तुम जानते हो कि गुरु ने जो कहा वह ठीक कहा। लेकिन शुरूआत अनुमानगत श्रद्धा से होगी, अंत जाकर अनुभवगत श्रद्धा पर होगा। तो चिंतन–मनन भी उपयोगी है।

तुमने पूछा कि जब निर्विचार स्थिति में सत्य जाना जाता है तो स्वयं ओशो इतने मौलिक विचार क्यों देते हैं?

मौलिक विचार का अर्थ जानते हो, जो मूल से आया, उद्‌गम से आया। निर्विचार शून्यता हमारा मूल है। जो व्यक्ति निर्विचार हो पाएगा, जिसका मन शांत और मौन हो जाएगा उसके भीतर ही मौलिक विचार उत्पन्न हो सकते हैं। सामान्यतः हमारे मन में जो विचारों की भीड़ चल रही है वह सब उधार है। यहां से सुना, वहां से पढ़ा, कहीं का कूड़ा–कबाड़ा इकट्ठा कर लिया उसको हम कहते हैं विचार। उनमें कोई मौलिकता नहीं है, कुछ नवीनता नहीं है, वह विचार तुम्हारे हैं भी नहीं, माने हुए हैं, विश्वास से उत्पन्न हुए हैं। इस विचार की भीड़ का कोई भी उपयोग नहीं। केवल निर्विचार ध्यान का साधक ही मौलिक विचारों को पैदा कर सकता है। पहले अपने मूल से जुड़ो।

आप पूछते हैं कि चिंतन–मनन आवश्यक है या श्रद्धा?

पहले चिंतन–मनन आवश्यक है, बाद में श्रद्धा अपने आप आती है। करीब–करीब एक ऐसा ही सवाल ओशो से पूछा गया है एस धम्मो सनंतनो प्रवचन माला में। सुनो ओशो का प्यारा उत्तर–

'बुद्ध श्रद्धा के विरोधी नहीं है, बुद्ध से बड़ा श्रद्धा का कोई पक्षपाती नहीं हुआ। लेकिन बुद्ध श्रद्धा को थोपते नहीं, जन्माते हैं। दूसरों ने श्रद्धा थोपी है। दूसरे कहते हैं श्रद्धा करो, अगर न किया तो पाप है। बुद्ध कहते हैं विचार करो, अगर ठीक विचार किया तो श्रद्धा अपने से आएगी। बुद्ध तुम्हें चलाते हैं श्रद्धा की तरफ, दूसरे तुम्हें धकाते हैं। चलाने और धकाने में बड़ा फर्क है। बुद्ध तुम्हें फुसलाते हैं श्रद्धा की तरफ, दूसरे तुम्हें धमकाते हैं, वह कहते हैं श्रद्धा न की तो नर्क में सड़ोगे, श्रद्धा की तो स्वर्ग में फल पाओगे। दूसरे तुम्हें लुभाते हैं या भयभीत करते हैं। दूसरे धर्म डरवाते रहे हैं, वह कहते हैं, डरो ईश्वर से।

छोटे–मोटे लोगों की तो बात छोड़ दो, महात्मा गांधी जैसे व्यक्ति भी कहते हैं, मैं किसी और से नहीं डरता सिवाय ईश्वर के। पर डरते तो हो ही। इससे क्या फर्क पड़ता है कि ईश्वर से डरते हो। यह तो और मजे की बात है, संसार से डरते तो ठीक भी था, ईश्वर से डरते हो? ईश्वर से डरने का तो अर्थ हुआ कि आचरण जबरदस्ती हुआ। ईश्वर से डरने का तो कोई भी कारण नहीं है। संसार से डरो, क्योंकि यहां तो उपद्रवी हैं, सब तरह के दुष्ट हैं। शैतान से डरो तो बात समझ में आती है, परमात्मा से डरते हो। परमात्मा यानि प्रेम, प्रेम से क्या कभी डर

का कोई संबंध बन सकता है। जहां प्रेम है वहां डर कैसा और जहां डर है वहां प्रेम कैसा। भय के पास प्रेम की गंध नहीं उठ सकती और प्रेम के पास भय की दुर्गंध नहीं आती। लेकिन धर्मों ने लोगों को डरना सिखाया है कि डरो, लोगों को कंपा दिया है।

बुद्ध ने लोगों को फुसलाया है, धमकाया नहीं। बुद्ध ने कहा सोचो, बुद्ध ने कहा विचार करो, बुद्ध ने कहा जीवन को विश्लेषण करो। बुद्ध ने विज्ञान दिया, अंधविश्वास नहीं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि बुद्ध ने श्रद्धा नहीं दी, बुद्ध ने ही श्रद्धा दी। ऐसे सोच–विचार जब तुम करने लगोगे तो अचानक एक दिन पाओगे कि श्रद्धा का पड़ाव आ गया। सोच–विचार की यात्रा से ही कोई श्रद्धा तक पहुंचता है। बुद्ध ने कहा कि कोई भी व्यक्ति पैदा होते से ही श्रद्धा लेकर नहीं आता, संदेह ही लेकर आता है। हर बच्चा संदेह लेकर आता है इसीलिए तो बच्चे इतने प्रश्न पूछते हैं जितने बूढ़े भी नहीं पूछते। बच्चा हर चींज से प्रश्न बना लेता है। यह बात स्वाभाविक है, पूछना ही पड़ेगा क्योंकि पूछ–पूछकर ही तो वहां पहुंचेंगे जहां अनुभव होगा। और अंत में सब पूछना गिर जाता है, सब जिज्ञासा गिर जाती है। मुझसे लोग कहते हैं, आप क्यों इतना समझाते हैं जब श्रद्धा से पहुंचना है?

इसलिए समझाता हूं ताकि श्रद्धा तक पहुंचना हो जाए। फिर तो तुम खुद ही चल लोगे, श्रद्धा काफी है, फिर मेरी जरूरत न होगी। श्रद्धा तक तुम्हें फुसलाकर ले आउं, फिर तो मार्ग सुगम है, फिर तो तुम खुद ही चल लोगे, फिर तो तुम्हारी श्रद्धा ही खींच लेगी, फिर तो श्रद्धा का चुम्बक ही काफी है।

सानू श्रेष्ठ, श्रीमदभागवतगीता में कृष्ण कहते हैं अर्जुन से, श्रद्धावान लभते ज्ञानं, श्रद्धावान को ज्ञान होता है। लेकिन श्रद्धा तक पहुंचने की सीढ़ी जो है वह संदेह है, वह चिंतन–मनन है। इस पूरी बात को लेना, आधी बात को नहीं। वरना तुम्हारी श्रद्धा झूठी हो जाएगी। तो संदेह में तुम खड़े हो बिल्कुल ठीक, स्वाभाविक है, प्राकृतिक है, ऐसा ही होना चाहिए। हर बुद्धिमान व्यक्ति संदेह की भूमि पर ही खड़ा होगा लेकिन वहां से चलना शुरू करे। चिंतन–मनन उस यात्रा को दिशा देगा। और एक दिन जब तुम स्वयं जान लोगे तब तो नहीं मानने का सवाल ही नहीं उठता, वह श्रद्धा ही सच्ची श्रद्धा है।

दूसरा प्रश्न ज्ञानगंगा काठमाण्डू से पूछ रहे हैं, जीवन के आरंभिक पचास वर्षों में मैंने बहुत पूजा, प्रार्थनाएं की, अब सत्तर साल की आयु में मेरे नास्तिक हो चुके मन में पपुनः श्रद्धा कैसे जन्मे?

पहले तो यह बात समझो कि नास्तिकता क्यों जन्मी? बिना गुरु के जो लोग भी अध्यात्म की यात्रा पर चलेंगे वे अंततः नास्तिकता के गड्ढे में गिरेंगे। क्योंकि तुम भटक जाओगे। बिना मार्गदर्शक के मंजिल तक नहीं पहुंच पाओगे, तुम्हारा भरोसा डगमगा जाएगा। तुमने झूठी श्रद्धा से शुरू किया, बिना किसी की मदद के शुरू किया, बिना नक्शे के, बिना मार्गदर्शक के तुम चले, बिना गाइड के यह यात्रा संभव नहीं। हम तो बाहर की भी छोटी–मोटी यात्रा पर जाते हैं तो गाइड को साथ लेते हैं, अध्यात्म की अनजानी डगर पर बिना गुरु के जाना नहीं हो सकता। कबीर साहब ने गुरु की महिमा गाई है– कहते हैं तीन लोक नौ खण्ड में गुरु से बड़ा न कोय, कर्ता करे न कर सके, गुरु करे सो होय। एक काम वह है जिसे वह कर्ता

पुरुष, परमात्मा खुद भी नहीं कर सकता, केवल गुरु ही उस काम को कर सकता है। लोग कहते हैं कि परमात्मा सर्वशक्तिमान है। कबीर कहते हैं नहीं, एक काम है जो वह भी नहीं कर सकता। वह काम है परमात्मा का ज्ञान। वह केवल गुरु देता है, स्वयं परमात्मा वह ज्ञान नहीं देता। इसीलिए तो संत सहजोबाई कहती हैं, राम तजूं मैं गुरु को न बिसारूं, गुरु के सम हरि को न निहारूं। गुरु के सामने तो मैं हरि की भी कीमत नहीं करती। राम को छोड़ने के लिए तैयार हूं लेकिन गुरु को नहीं छोड़ूंगी। क्योंकि अगर गुरु हैं तो फिर से राम से मुलाकात हो जाएगी लेकिन अगर गुरु नहीं हैं तब राम से मुलाकात भी न हो सकेगी। गुरु की महिमा को पहचानो।

तुम कह रहे हो कि आरंभिक पचास वर्षों में खूब-पूजा व प्रार्थनाएं कीं, यह प्रार्थनाएं काम न आएंगी। आदि शंकराचार्य कहते हैं, पूजा, प्रार्थना, स्तुति इत्यादि अधम से भी अधम हैं, निम्न से भी निम्नतम, अध्यात्म का के. जी. स्कूल समझो। अब थोड़ी प्रौढ़ता तुम्हारे भीतर जन्मी है। सुंदर हुआ, नास्तिक हो जाना, इसको मैं कोई बुराई नहीं मानता। समझदार व्यक्ति को नास्तिक होना ही चाहिए, तुम्हारी पुरानी आस्तिकता झूठी थी। किसी शायर ने प्रार्थनारूपी यह पंक्तियां लिखी हैं, सुनो-

मेरे हाल पर मेहरबानी करे, खुदा से कहो हुक्मसानी करे,

हुक्मसानी यानि दूसरा आदेश। एक नया आर्डर निकाले कि मेरे हाल पर मेहरबानी करे।

मैं एक बूंद पानी बड़ी चीज हूं, समुंदर मेरी पासवानी करे।

समुंदर मेरी निगरानी करे, सारी प्रार्थनाएं इसी प्रकार की हैं कि मुझ बूंद की देखभाल सागर करे।

पढ़ें लोग दीवार दर पे लिखा, खुला सा मेरी बेजवानी करे,
वह बख्शे उजाले किसी सुबह को, कोई शाम रोशन सुहानी करे।
कोई तो बढ़कर उठा ले कुदाली, इस पथरीली जमीं को पानी करे,
मेरे साए में सब हैं मेरे सिवा, कोई तो मेरी सायबानी करे।

कोई तो मुझे छाया दे। इस प्रकार की प्रार्थनाएं सुनने वाला कोई ईश्वर कहीं नहीं है, तुमने व्यर्थ ही पचास साल गंवाए। यह नास्तिकता उसका स्वाभाविक परिणाम है। अब मैं तुमसे कहता हूं किसी सद्‌गुरु से जुड़ो और फिर दोबारा यात्रा शुरू करो। जब तुम मंजिल पर पहुंच जाओगे तब असली आस्तिकता पैदा होगी।

अगला सवाल पूछ रहे हैं आनंदबर्धन काठमाण्डू से, मैं सार्वजनिक रूप से अपने जीवन की समस्याएं नहीं बता सकता, क्या आप मेरे कष्टों के कारण समझकर उनका निदान व उपचार कर सकते हैं?

जरूर, सारी समस्याओं की जड़ एक ही है, वह तुम्हारा मन है। और उपाय भी एक है, वह है ध्यान अर्थात निर्विचार मन की अवस्था, उन्मनी अवस्था। एक ही समाधान है, वह है समाधि। समस्याएं होंगी, बहुत विस्तार में जाओगे तो हर व्यक्ति की समस्याएं अलग-अलग होंगी लेकिन उनका समाधान बस एक ही संभव है वह है ध्यान और समाधि में। तो तुम्हें बताने

की जरूरत नहीं है समस्याएं। किसी शायर ने लिखा है–

सभी इस जमाने में हैं गम के मारे, गमे दिल सुनाने की जहमत न कीजे,
निगाहें मिलाने की जहमत न कीजे, हमें आजमाने की जहमत न कीजे।

कोई जरूरत नहीं है अपने गम का कारण बताने का, तुम्हारे बिना बताए भी मैं जानता हूं। एक ही कारण है सारे कष्टों का कि हम परमात्मा से जुड़े नहीं हैं, हम अपनी मूल को, अपनी जड़ों को भूल गए हैं। फिर हमारे वृक्ष में फूल खिलें भी तो कैसे खिलें?

सभी इस जमाने में हैं गम के मारे, गमे दिल सुनाने की जहमत न कीजे,
घड़ी भर में बीमार है जाने वाला, अभी आप जाने की जहमत न कीजे,
मैं खुद अपनी मंजिल से वाकिफ नहीं हूं, मेरे संग आने की जहमत न कीजे।
कहीं रफक न जाए फसले बहारां, गुलिस्तां सजाने की जहमत न कीजे,
सभी इस जमाने में हैं गम के मारे, गमे दिल सुनाने की जहमत न कीजे।

कोई जरूरत नहीं है अपनी दास्तान सुनाने की, तुम्हारे बिना कहे भी मैं जानता हूं। दुख का एक ही कारण है वह है अपने वास्तविक स्वरुप का विस्मरण, परमात्मा से टूट जाना, प्रभु से वियोग। और एक ही समाधान है वह है योग, अपनी अंतरात्मा से मिलन। अपनी जड़ों में उतर जाना। तुम अलग–अलग नाम दे सकते हो, चाहे कह लो भक्ति, चाहे कह लो योग, चाहे कहो ध्यान, चाहे कहो समाधि सब समस्याएं बस वहीं सुलझती हैं, अपने अंतर्तम में डूबो।

अध्याय–40

आस्तिकता अनिवार्य नहीं

आदरणीय सद्‌गुरु, मां हरि प्रिया नेपाल से पूछती हैं, आनंद प्रज्ञा शिविर में शामिल होकर मेरा जीवन ही बदल गया। मेरे पतिदेव मेरा रूपांतरण देखकर प्रभावित हैं। किन्तु नास्तिक होने की वजह से वे धार्मिक जगहों पर जाने से कतराते हैं। यदि वे भी ओशोधारा से जुड़ जाएं तो हमारा घर स्वर्ग बन जाए। मैं कैसे उन्हें राजी करूं?

हरिप्रिया, ओशोधारा नास्तिकों और आस्तिकों सबके लिए अपना द्वार खोले बैठी है। भारत में चार बड़े धर्म पैदा हुए। इनमें से हिन्दू धर्म और सिक्ख धर्म आस्तिकता पर जोर देते हैं, वहां केवल आस्तिक का ही प्रवेश संभव है, केवल श्रद्धालु और विश्वासी लोग ही उस मंदिर में प्रवेश हो सकते हैं। हमारे देश में दो और धर्म पैदा हुए जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म, वे अनिश्वरवादी हैं, वहां केवल नास्तिकों का ही स्थान है। वहां अंधविश्वास और श्रद्धालु लोगों के लिए कोई जगह नहीं है।

ओशो ने एक अद्भुत प्रयोग किया उन्होंने आस्तिक और नास्तिक दोनों के लिए मंदिर के द्वार खोले। अपने पतिदेव जी से कहना कि धार्मिक और आस्तिक होने की कोई जरूरत नहीं। बल्कि मैं तो प्रिफर करता हूं कि जब नास्तिक लोग यहां ओशोधारा में कार्यक्रम करने आते हैं वे ज्यादा आसानी से, ज्यादा गहराई से ध्यान में डूब पाते हैं। क्योंकि उनके भीतर कोई पूर्वाभ्यास, कोई पूर्व मान्यताएं, पूर्वाग्रह, धारणाएं नहीं हैं जो कि भीतर ध्यान में डूबने में बाधा बन सकती हैं। पूर्वाग्रहों से भरा व्यक्ति अंधविश्वास से भरा व्यक्ति स्वयं के भीतर

विश्वास नहीं करता। तो मैं तो पसंद करता हूं वैज्ञानिक चित्त के लोगों को जो कि सत्य की खोज में निकले हों। अक्सर मैंने देखा कि नास्तिक आदमी ज्यादा ईमानदार, ज्यादा वैज्ञानिक चित्त का होता है। आस्तिक आदमी अवैज्ञानिक चित्त का होता है, बिना जाने उसने कुछ मान लिया। जब मान लिया तब खोज बंद हो जाती है। तो अपने पति से कहना कि ओशोधारा तथाकथित धार्मिक स्थलों जैसी कोई धर्मस्थल नहीं है, ओशोधारा का मंदिर वैसा मंदिर नहीं है जैसे अन्य मंदिर हैं। ओशोधारा एक प्रकार की वैज्ञानिक प्रयोगशाला है। हां, वैज्ञानिक की प्रयोगशाला में आविष्कार का विषय स्वयं से बाहर होता है, ओशोधारा में अन्वेषण का विषय तुम स्वयं ही हो।

गौतमबुद्ध अद्भुत व्यक्ति हुए। उन्होंने कहा कि आस्तिक होने की कोई जरूरत नहीं। उन्होंने जीवन के यथार्थ तथ्यों की चर्चा की। कई बार तुम्हें लगेगा कि उपनिषद के ऋषि कितनी उंची-उंची महान बातें करते हैं। वेदान्त वाले कितनी महान फिलास्फी पैदा करते हैं। बुद्ध बिल्कुल जमीन की बात करते हैं, हमारे जीवन की बात करते हैं। तो गौतमबुद्ध के साथ एक नया मोड़ इतिहास में आता है। ओशो ने उसको और खूबसूरत ढंग से आगे बढ़ाया। अपने पति से कहना कि जरा भी चिंता न करें, वे आएं और प्रयोगधर्मी बनें। प्रयोग करेंगे, खोजेंगे, पता लगाएंगे फिर जो खुद को अनुभव होगा, ज्ञान होगा उसे तो इंकार न कर सकोगे। हम पहले से कह भी नहीं रहे कि क्या ज्ञान होगा।

गौतमबुद्ध चार आर्यसत्यों की बात करते हैं। जीवन दुख है, इससे कौन इंकार कर सकता है। और वे कहते हैं कि हर व्यक्ति आनंद की खोज में है। क्या तुम्हारे पति इस बात से इंकार कर सकते हैं कि जीवन में शांति, आनंद, प्रेम और सत्य की तलाश है, हर व्यक्ति को है चाहे वह आस्तिक हो चाहे नास्तिक। धम्मपद पर दी गई प्रवचन माला में ओशो बड़े ही सुंदर अंदाज में यह बात समझाते हैं, जरा अपने पति को ओशो की यह अमृतवाणी सुनाना।

'बुद्ध पहले मनुष्य हैं जिन्होंने परमात्मा के बिना ध्यान करने की विधि दी, जिन्होंने परमात्मा की मान्यता को ध्यान के लिए आवश्यक न माना। और न केवल परमात्मा की, बल्कि आत्मा की धारणा को भी ध्यान के लिए आवश्यक न माना। उन्होंने कहा कि ध्यान तो स्वास्थ्य है, तुम स्वस्थ हो सकते हो, फिर शेष तुम खोज लेना। मैं तुम्हें रोग से मुक्त करने आया हूं। इसलिए बुद्ध को तुम एक मनुष्य चिकित्सक की भांति देखना, वे धर्मगुरु नहीं हैं। धर्मगुरु मान लेने से बड़ी भ्रांति हो गई, लोग उन्हें दूसरे धर्मगुरुओं के साथ गिन देते हैं। वे धर्मगुरु जरा भी नहीं हैं। कहीं परमात्मा की धारणा के बिना क्या कोई धर्म हो सकता है, कहीं आत्मा की धारणा के बिना कोई धर्म हो सकता है? तत्व की तो कोई बुद्ध ने बात ही नहीं की, तथ्य की बात की।

उन जैसा यथार्थवादी खोजना मुश्किल है और उन्होंने मनुष्य की असली तकलीफ को पकड़ा और कहा कि यह तकलीफ सुलझ सकती है, उन्होंने चार आर्यसत्यों की घोषणा की, कि मनुष्य दुखी है। इसमें किसको संदेह होगा, इसका कौन विरोध करेगा? मनुष्य दुखी है, मनुष्य के दुख का कारण है। ठीक बुद्ध वैसे ही बोलते हैं जैसा वैज्ञानिक बोलता है, दुख का

कारण है। क्योंकि अकारण कैसे दुख होगा, पैर में अगर पीड़ा है तो कांटा लगा होगा, सिर दुखता हो तो कारण होगा, पीड़ा है तो अकारण कैसे होगी, पीड़ा का कारण है। तो बुद्ध ने कहा पहला आर्यसत्य कि मनुष्य दुख में है। दूसरा आर्यसत्य कि दुख का कारण है और तीसरा आर्यसत्य कि दुख के कारण को मिटाया जा सकता है और चौथा आर्यसत्य कि एक ऐसी भी दशा है जब दुख नहीं रह जाता। बुद्ध ने यह भी नहीं कहा कि वहां आनंद होगा। क्योंकि वह कहते हैं कि व्यर्थ की बातों को क्यों करना। इतना ही कहा कि वहां दुख नहीं होगा, आनंद को तुम समझोगे कैसे।

आनंद तुमने जाना नहीं। वह शब्द थोथा है, अर्थहीन है। तुम उसमें जो अर्थ भी डालोगे वह वही होगा जो तुमने जाना है। तुम अपने सुख को ही आनंद समझोगे, उसको थोड़ा बड़ा कर लोगे, करोड़ गुना कर लोगे लेकिन वह मात्रा का भेद होगा, गुण का न होगा और आनंद गुणात्मकरूप से भिन्न है। वह तुम्हारा सुख बिल्कुल नहीं है, वह तुम्हारा दुख भी नहीं है, सुख भी नहीं है तो बुद्ध ने कहा कि उसकी बात कैसे करें, उसकी बात करनी ही उचित नहीं। इतना ही कहा कि दुख निरोध हो जाएगा, तुमने जिसे दुख की तरह जाना है वह वहां नहीं होगा, बीमारी नहीं होगी, स्वास्थ्य क्या होगा उसका तुम स्वयं स्वाद ले लेना और जान लेना।'

हरिप्रिया, अपने पति से कहना कि ओशोधारा को दार्शनिक प्रश्नों में, मेटाफिजिक्स में, स्वर्ग और नर्क में कोई रुचि नहीं है। सृष्टि को किसने बनाया, कोई सृष्टा है कि नहीं इस प्रकार की व्यर्थ बकवास में जरा भी रस नहीं है। हम तो अपने जीवन को संवारने की, सुंदर बनाने की बात करते हैं। उनका स्वागत है ओशोधारा में, उन्हें मेरा संदेश देना वह जरूर आएंगे।

टोकियो जापान से पूछती हैं मोटोमी कोडोटा, व्हेयर टू सर्च फार गॉड? प्रभु को कहां खोजें?

मोटोमी कोडोटा, तुम पूछती हो प्रभु को कहां खोजें? प्रश्न में ही भूल छिपी है, ऐसा लगता है कि प्रभु हमसे बाहर, हमसे दूर कहीं किसी तीर्थ स्थान में, कि किसी मंदिर में, कहीं आकाश के स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान हैं। अब सवाल सिर्फ खोज का है कि उसको कहां खोजें। अगर ठीक जगह का पता मिल जाए तो खोज आसान हो जाएगी। तुम्हारा प्रश्न ही भूल भरा है। परमात्मा का अर्थ है परम आत्मा, दी अल्टीमेट सेल्फ, स्वयं के होने की परमदशा। वह तो तुम्हारे भीतर है, तुम बाहर कहां खोजने चलीं। अपने भीतर डूबो, ध्यान में जाओ। प्रार्थनाएं काम नहीं आएंगी, मंदिर और तीर्थ काम नहीं आएंगे, शास्त्रा, ग्रंथ और सिद्धांत काम नहीं आएंगे। इन सब क्रियाकाण्डों, शास्त्राों के विचारों से मुक्त होकर अपने भीतर डूबने की कला सीखो। ध्यान ही एक मात्रा अंतर्यात्राा का उपाय है जिससे प्रभु को जाना जा सकता है। कहां खोजो, अपने भीतर खोजो। किसी शायर ने लिखा है–

खुदा हमको ऐसी खुदाई न दे कि खुद के सिवा कुछ दिखाई न दे,
गुनहगार समझेगी दुनिया तुझे अब इतनी ज्यादा सफाई न दे।
हंसो आज इतना कि इस शोर में सदा सिसकियों की सुनाई न दे,
अभी तो बदन में लहु है बहुत कलम छीन ले रोशनाई न दे।
खुदा ऐसे एहसास का नाम है रहे खुद में फिर भी दिखाई न दे।

इस अंतिम पंक्ति पर गौर करना, वह हमारे भीतर ही मौजूद है। बेहतर हो कि खोजबीन बंद करो और स्वयं में स्थित होओ। कबीर साहब ने कहा है– जिन खोजा तिन पाइयां। उन्होंने जिस संदर्भ में कहा है ठीक ही कहा है लेकिन मैं आज तुम्हारे प्रश्न के संदर्भ में कहना चाहूंगा कि जिन्होंने खोजा उन्हें नहीं मिलता, कभी नहीं मिलता। क्योंकि खोज में व्यस्त आंखें दूर–दूर तलाशती हैं, खोजी व्यक्ति की आंखें हमेशा दूर पर होती है, स्वयं पर नहीं होती। कभी–कभी ऐसा होता है न कि कोई आदमी चश्मा लगाए हुए है और भूल जाता है और चश्मे को घर में ढूंढ़ता है कि कहां रखा है। अब चश्मा कैसे मिलेगा। चश्मे के थ्रू ही तो वह देख रहा है और चश्मे को ही खोज रहा है, ऐसे में चश्मा नहीं मिलेगा।

मैंने सुना है नसरुद्दीन के बारे में कि एक दिन सुबह घोड़े पर सवार तेजी से दौड़ रहा, भगाए जा रहा है घोड़े को और चिल्ला रहा है कि भाइयो रास्ते से हट जाओ, मैं बहुत जल्दी में हूं। लोग रास्ता छोड़ रहे थे और नसरुद्दीन अपने घोड़े को तेजी से दौड़ाता हुआ ले जा रहा था। आखिर उसके दोस्त मियां महमूद ने पूछा कि नसरुद्दीन, इतनी जल्दबाजी में कहां जा रहे हो, क्या खो गया, कौन सी मुसीबत आ गई? नसरुद्दीन ने कहा कि महमूद तुम तो जानते हो, मेरा घोड़ा मुझे जान से भी प्यारा है, आज सुबह से मिल ही नहीं रहा है, मेरा घोड़ा खो गया है। महमूद ने कहा कि भले मानुष, तुम घोड़े पर ही तो सवार हो। नसरुद्दीन ने नीचे देखा और कहा कि अरे! धन्यवाद, तुमने अच्छी याद दिलाई।

जो आदमी खोज रहा है वह दूर देखता है, पास नहीं देखता। कबीर साहब कहते हैं– मोको कहां खोजे रे बंदे मैं तो तेरे पास में, खोजी होय तो तुरतइ मिलिहों पल भर की तलाश में। घोड़ा तो फिर भी तुमसे दूर है, शायद विस्मरण भी हो जाए, शायद दिखाई न भी पड़े, किसी आदमी को मोतियाबिन्द हो जाए कि आंख खराब हो जाए कि घोड़ा भी दिखाई न पड़े लेकिन जिस प्रभु की तुम बात पूछ रही हो वह बिना आंख के भी भीतर दिखाई देता है। वह तुम ही हो, वह तुमसे भिन्न नहीं कि वह खो जाए, बस भूल गया है, विस्मरण हो गया है। इसलिए तो संत स्मरण पर, सुमिरन पर, सुरति पर, सम्यक स्मृति पर इतना जोर देते हैं। बस याद आ जाए अपनी।

अगला सवाल है, सिकंदराबाद से मां धर्म क्रांति पूछ रही हैं, सच्चा मंदिर कौन सा है, सच्चा ईश्वर कौन सा है, सच्ची पूजा किसे मानूं?

सच्चा मंदिर तुम्हारा मन ही है। यह शब्द मंदिर समझने जैसा है। दिर यानि होता है द्वार, दरवाजा। मन ही द्वार है, इसी मन के द्वार से हमारी चेतना अतिक्रमण करती है, बाहर की ओर गमन करती है। इसी द्वार से चेतना प्रतिक्रमण कर सकती है, प्रत्याहार कर सकती है और पुनः भीतर प्रवेश कर सकती है। अभी–अभी आपने इस कक्ष में प्रवेश किया। जिस द्वार से आपने प्रवेश किया उसे आप कहेंगे इंट्रेन्स गेट। लेकिन याद रखिएगा, जब आप उठकर बाहर जाएंगे तब वही द्वार एक्जिट गेट हो जाएगा। इंट्रेंस और एक्जिट अलग–अलग नहीं होती, तुम्हारी दिशा भिन्न–भिन्न होती है। यही मन हमें संसार में और विषयों में ले जाता है अगर हम बहिर्मुखी हों, यही मन हमें भीतर ले आता है, परमात्मा में स्थिर कर देता है अगर

हम अंतर्मुखी हो जाएं। तो अपनी दिशा को बदलना है, तुम्हारा मन ही मंदिर बन जाता है। और कोई मंदिर असली नहीं है, अपने मन को ही अपना मंदिर जानना।

तुम पूछती हो सच्चा ईश्वर कौन सा है? तुम्हारे मंदिर के भीतर गूंज रहा ब्रह्म का नाद, वह स्वर ही परमेश्वर है। उस ओंकार की ध्वनि में डूबना है। हिन्दुओं ने मंदिर में गुंबद बनाई, घण्टा लगाया, घंटे की आवाज गुंबद में गूंजती है यह तो प्रतीकात्मक है, हमारे भीतर भी गुंबद है। हमारे सिर का ऊपरी हिस्सा अर्द्धचन्द्राकार है। उसके भीतर ओंकार की परमध्वनि गूंज रही है, उस स्वर को ही असली ईश्वर जानना।

तुम पूछती हो सच्ची पूजा किसे मानूं? हमारे उपनिषदों में एक अद्भुत उपनिषद है उसका नाम है आत्मपूजा उपनिषद। सबसे छोटा उपनिषद है वह। कुल सत्राह लाइन में है केवल। एक छोटे से पोस्टकार्ड पर भी उसे लिखा जा सकता है, अद्भुत है वह ग्रंथ। सच्ची पूजा आत्मपूजा है। अपने भीतर डूबो। चाहो तो तुम उसे ध्यान कह लो।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन, सेठ चंदूलाल और सरदार विचित्रा सिंह रात को रमी खेल रहे थे, गपशप कर रहे थे। तभी घंटा घर की घड़ी ने रात के नौ बजाए। अचानक चंदूलाल उठकर खड़े हो गए और बोले कि अरे! नौ बज गए। आज तो नौ बजे लायन्स क्लब में शिवमंदिर में पंडित टुन्नू महाराज का सितार वादन है, मैं तो चला शिवमंदिर। और तुरंत वह चला भी गया। सरदार विचित्रा सिंह पूछने लगे कि यह चंदूलाल कब से शिव का भक्त हो गया कि इसको अचानक मंदिर की सूझी और चला मंदिर? नसरुद्दीन ने समझाया, रहस्य खोला कि वह शिव का भक्त नहीं, टुन्नू महाराज की पत्नी का प्रेमी है। टुन्नू महाराज गए लायन्स क्लब सितार बजाने और यह सज्जन गए शिवमंदिर।

तुम्हारे तथाकथित मंदिरों में जो लोग आए हैं उनको देखकर धोखे में नहीं पड़ जाना कि शिवमंदिर में आए हैं, न जाने किन–किन कारणों से आए हैं। कोई कुछ मांगने आया है, कोई कुछ प्रार्थना करने आया है, कोई शिकायत करने आया है, कोई दूसरों की बीबियों को देखने आया है, कोई महिलाएं अपने कपड़े और आभूषण दिखाने आई हैं, सासें मिलकर बहुओं की निंदा करने आई हैं, बहुएं मिलकर सासों की बुराइयां करेंगी, जेठानी के गुणगान करेंगी। पुराने जमाने में क्लब वगैरह तो थे नहीं, मंदिर ही एक मात्रा जगह थी जहां महिलाएं मिल सकती थीं, अपने सुख–दुख कह सकती थीं। न जाने किन–किन कारणों से लोग आए हैं, परमात्मा के लिए कोई नहीं आया है और अच्छा ही है कि नहीं आया, क्योंकि परमात्मा वहां है भी नहीं। परमात्मा तुम्हारे स्वयं के भीतर है, अपने भीतर डूबो।

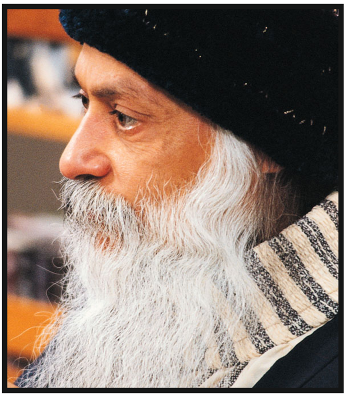

अध्याय-41

विगत जन्म के कर्मफल

स्वामी जी पहला प्रश्न है, समाज में प्रतिष्ठित नागरिक बनने के लिए पहले मैंने धन कमाया, फिर नगरपालिका का चुनाव जीतकर सच्चे मन से जनसेवा की, आश्चर्य है कि अपने ही लोगों के षड्यंत्र का शिकार बन गया। झूठे आरोप लगाकर उन्होंने मेरी बदनामी की। इस बार चुनाव हार जाने के बाद मैं डिप्रेशन का मरीज हो गया हूं। ज्यादा दुख इस बात का है कि जिनकी सेवा की वे ही ऐसा मेवा देंगे कभी सोचा न था। क्या यह विगत जन्मों का कर्म फल है? प्रश्न पूछा है श्री आर साहूवाला हरियाणा से।

विगत जन्मों के कर्मों का फल नहीं, इसी जन्म के कर्मों का फल है। इस बात को जरा गौर से समझो, जब तुम प्रतिष्ठा पाते हो, सम्मान पाते हो तो दूसरे लोग ईर्ष्या से भर जाते हैं, उन्हें मजबूरी में तुम्हारा सम्मान करना पड़ रहा है और वे भीतर अपमानित महसूस करते हैं। इसका बदला वे किससे लें? कर्म के सिद्धांत को जरा सरल करके समझो, पिछले जन्मों से लेना-देना नहीं है, सीधा-सीधा अभी और यहीं देखो। जो व्यक्ति तुम्हें सम्मान दे रहा है वह भीतर-भीतर अपमानित महसूस कर रहा है, वह सोच रहा है कि काश ऐसा दिन आए कि आप मेरा सम्मान करें। आज मेरी मजबूरी है मुझे आपका सम्मान करना पड़ रहा है, जब भी तुम प्रतिष्ठा पाओगे दूसरे लोग ईर्ष्या से जल-भुन जाएंगे और तब वे षड्यंत्र रचेंगे, अपने ही लोग रचेंगे षड्यंत्र, दूसरों को क्या लेना देना, उन्हें तुम्हारी परवाह नहीं है। अपने ही लोग हमेशा षड्यंत्र करेंगे। महात्मा गांधी को किसने मारा? अंग्रेज थे उनके दुश्मन, अंग्रेजों ने तो नहीं मारा। संभावना हम मान सकते हैं कि मुसलमान शायद बदला लेते, लेकिन मुसलमानों ने तो नहीं मारा, मारा एक

हिन्दू ने। अपने ही लोग षड्यंत्रा रचेंगे, दूसरों को क्या लेना–देना। इंदिरा गांधी को किसने मारा? अपने ही अंगरक्षकों ने। क्योंकि उन्हें पीड़ा का अनुभव होता है, वे अपमानित महसूस कर रहे हैं जो तुम्हारे निकट हैं, नजदीक हैं। दूर वाले को तुम्हारी परवाह नहीं है।

तुम कह रहे हो कि मैं षड्यंत्रा का शिकार हुआ, डिप्रेशन का रोगी हो गया हूं चुनाव हारने के बाद। अगर तुमने इंप्रेशन जमाने की कोशिश की तो जल्दी ही डिप्रेशन के गड्ढे में जाकर गिरोगे। अगर तुम पर्वत शिखर पर चढ़े तो खाई तुम्हारा इंतजार कर रही है। वे लोग जो बड़े उत्साह और उमंग में आकाश में उड़ते हैं वे बुरी तरह से गड्ढों में गिरते हैं। अगर सावधान होना है तो उस समय सावधान होओ, शिखर पर चढ़ने की कोशिश न करो। लेकिन उस समय तो तुम सुनते नहीं। उस समय तुम्हें लगता है कि शिखर पर चढ़ जाएं लेकिन शिखर पर पहुंचकर करोगे क्या? अब एक ही काम है कि वहां से लुढ़को।

मैंने सुना है एक आदमी जो कि पर्वतारोही था उसने अपनी पत्नी से पूछा कि मान लो मैं एवरेस्ट की शिखर पर पहुंच जाउं तो तुम मुझे क्या दोगी? उसने कहा, पीछे से एक धक्का। तो कोई पिछले जन्मों के कर्मों का फल नहीं है, इसी जन्म के कर्मों का फल है। तुम गौर से देखो कि तुम्हारे भीतर मान–सम्मान पाने की इच्छा क्यों है। दूसरों को छोड़ दो कि दूसरे क्या दे रहे हैं, तुम्हारे भीतर एक पर्सनाल्टी होल है, तुम कहीं भीतर आत्मनिंदा से भरे हो और तुम इस छिद्र को बंद करना चाहते हो दूसरों से सम्मान प्राप्त करके। याद रखना, जो लोग फूल चढ़ाएंगे वे ही लोग जूते मारेंगे, जो ताली बजाएंगे वे ही गाली भी देंगे। वह वही के वही लोग हैं, कोई और नहीं होता। राम को वनवास किसने दिलाया, अपनी ही मां कैकेयी ने। दूसरों को क्या लेना–देना? ईसामसीह को सूली पर किसने चढ़ाया, अपनी ही जाति के लोगों ने यहूदियों ने। दूसरी जाति वालों को क्या लेना–देना? तुम जिन्हें अपना कहते हो जरा गौर से देखो कि वे कितने अपने हैं? किसी शायर ने लिखा है–

दुनिया का ऐतबार करें भी तो क्या करें,
आंसू तो अपनी आंख का अपना हुआ नहीं।

आंसू भी आंख से लुढ़क कर बाहर बह जाता है, वह भी अपना नहीं होता। तुम किसको अपना कह रहे हो साहूवाला? सिर्फ तुम्हारा निराकार चैतन्य ही तुम्हारा है। याद रखना, मैं तुम्हारे डिप्रेशन को बढ़ाने के लिए नहीं कह रहा हूं कि कोई तुम्हारा अपना नहीं है, मैं इसलिए कह रहा हूं ताकि तुम्हें समझ में आ जाए कि कौन वास्तव में तुम्हारा है, केवल तुम ही तुम्हारे हो। यहां तक कि यह तन भी तुम्हारा नहीं और मन भी तुम्हारा नहीं। अपने उस भीतर के चैतन्य को पाओ, ध्यान में डुबकी लगाओ और तब बाहर से सम्मान पाने की आकांक्षा समाप्त हो जाती है। भगवान बुद्ध की अद्भुत वाणी धम्मपद पर प्रवचन देते हुए ओशो ने जो कहा है उसे हृदयंगम करो–

'सार क्या है इसे जान लेना आधा पा लेना है, क्या है सार? अब तक जिंदगी में तुमने जो खोजा है उसमें से तुम्हें क्या ऐसा लगता है जो सार कहा जा सके? धन खोज लिया, कल तुम मरोगे वह पड़ा रह जाएगा, जो साथ न जा सके वह सार कैसे होगा। प्रशंसा पा ली, लोगों ने तालियां बजाई और गजरे पहना दिए। गजरे क्षण भर बाद कुम्हला जाएंगे, तालियों

की आवाज हो भी न पाएगी और खो जाएगी और सारी दुनिया भी ताली बजाए तो भी सार क्या होगा, मिलेगा क्या। जिसने भी ताली बजाई वह गाली देगा ही, वह बदला लेगा। जब ताली बजाई थी तो वह कोई प्रसन्नता में नहीं बजा रहा था। लोग दूसरों से अपने लिए ताली बजवाना चाहते हैं तब प्रसन्न होते हैं। जब कोई ताली तुम्हारी लिए बजाता है तभी तुम भी प्रसन्न होते हो, जब तुम्हें बजानी पड़ती है तो तुम मजबूरी में बजाते हो। शायद इस आशा में बजाते हो कि हम दूसरों के लिए बजाते हैं तो दूसरे भी हमारे लिए बजाएंगे, चलो आज हम तुम्हारे लिए बजाए देते हैं, कल तुम हमारे लिए बजा देना, ऐसा पारस्परिक लेन–देन चलता है। हम तुम्हारी प्रशंसा कर देते हैं तुम हमारी कर देना। लेकिन कौन किसी दूसरे के लिए सुख की इच्छा कर रहा है। यहां कौन अपना है?

इस जिंदगी का कुल हिसाब इतना है, कुछ हसीन ख्वाब और कुछ आंसू, उम्र भर की यही कमाई है। कुछ सुंदर सपने और कुछ आंसू, उम्र भर की यही कमाई है। कुछ सपने देखते रहो, सपनो को संजोते रहो और टूटे सपनो के लिए रोते रहो। इधर टूटे सपने इकट्ठे होते जाते हैं, तुम नए सपने देखते रहो, अतीत तुम्हारा आंसू बनता जाता है, रेगिस्तान हो गया। आने वाले कल में तुम मरुद्यान बसाए हो। वह भी कल बीतता जाता है, वह भी आज हो गया, वह भी कल हो जाएगा, वह भी जा रहा है।'

आज का दूसरा प्रश्न, जब इस क्षणभंगुर नश्वर जीवन से कुछ भी संग नहीं जाता तो सत्कर्म और दुष्कर्म भी मौत के पार नहीं जाएंगे। फिर क्यों हम सत्कर्म, सद्विचार और सद्भाव करें? पुछते है सुरेश गिरधर, हांसी, हरियाणा से।

महत्वपूर्ण सवाल है, बहुत लोगों के मन में यह सवाल उठता है। गौर से सुनना मेरी बात, कर्म तो तुम्हारे संग नहीं जाएंगे लेकिन कर्म करने की जो आदत है, जो सूक्ष्म प्रवृत्ति तुम्हारे भीतर बन गई है वह तुम्हारे संग जाएगी। तुमने अच्छा किया बुरा किया वह कुछ भी साथ न जाएगा लेकिन तुम्हारा अच्छा या बुरा करने का भाव तुम्हारा संस्कार बन गया। भगवान महावीर कहा करते थे कर्माणु के बारे में। वे कहते थे कर्मों के सूक्ष्म अणु हमारी चेतना से चिपक जाते हैं। जैसे शरीर के ऊपर धूल जम जाती है ठीक वैसे ही आत्मा के ऊपर कर्माणु जम जाते हैं, वह आत्मा का मैल है। तो कर्म तो छूट गया किन्तु कर्माणु साथ जाएगा। उसमें पूरी कंडिश्निंग है, उसमें पूरा नक्शा है, ब्लू प्रिंट छिपा हुआ है। आपने जेनेटिक इंजीनियरिंग के बारे में सुना होगा, छोटा सा जीन है, माइक्रोस्कोप में भी उसको नहीं देखा जा सकता लेकिन उसमें सारे गुण मौजूद हैं।

एक व्यक्ति का निर्माण कर देता है वह छोटा सा अदृश्य जीन। ठीक जिस प्रकार आदमी मात्रा जीन्स से बनता है माता–पिता के जो दिखाई भी नहीं देते ठीक उसी प्रकार हमारा मन जन्मों–जन्मों की यात्राा करता है और वह उन सूक्ष्म कर्माणुओं से बना होता है जो बिल्कुल ही अदृश्य हैं। लेकिन वही जाकर फिर एक नए शरीर में फिट हो जाते हैं, फिर एक नए बच्चे का जन्म होता है और वही पुराना मन काम करना शुरू कर देता है। तो उसमें जो प्रोग्रामिंग हो गई उसी प्रकार से फिर वह नए जीवन को शुरू कर देगा। तो आपके कर्म तो संग नहीं जाएंगे, न

सत्कर्म, न दुष्कर्म लेकिन वह कर्म करने की जो प्रवृत्ति है वह आपके संग जाएगी। तो केवल इस जीवन में ही नहीं अगले जीवन में भी वह साथ होगा।

अभी पहले सवाल में आपने देखा, साहूवाला ने पूछा कि क्या विगत जन्मों के कर्मों का फल है? अगर बहुत सूक्ष्मता से विश्लेषण करो तो विगत जन्मों के कर्मों का फल भी नजर आएगा। इस जन्म के कर्मों का फल तो है ही लेकिन इस जन्म की भी यह प्रवृत्ति और आदतें कहां से आईं? निरीक्षण करोगे तो तुम पाओगे कि पिछले जन्मों से आईं। यह सम्मान पाने की आकांक्षा हो सकता है श्री साहूवाला को जन्मों–जन्मों से रही हो, इस जन्म में फिर उन्होंने भागदौड़ शुरू कर दी। तो यह जन्म तो महत्वपूर्ण है ही, मैं क्यों मना करता हूं पिछले जन्मों की बात और अगले जन्मों की बात, अक्सर मैं उत्तर नहीं देता। मैं उसको हंसकर टाल जाता हूं लेकिन अभी उत्तर दे रहा हूं क्योंकि जन्मों की श्रृंखला है। अगला जन्म इस जन्म पर निर्भर है, यह जन्म पिछले जन्मों पर निर्भर था लेकिन सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह जन्म है। अगर तुम कुछ बदलाहट करना चाहते हो तो अभी ही करनी होगी।

पिछले जन्म को तो नहीं बदल सकते, जो हो चुका सो हो चुका और अगला जन्म अभी आया नहीं। लेकिन अगर तुम इस जन्म को बदल लो तो अगले जन्म भी बदल जाएंगे। तो मैं नहीं कहता कि अगले जन्म की चिंता करो, मैं नहीं आपसे कहता कि पिछले जन्मों का स्मरण करो। संभव है वह भी, जातिस्मरण का प्रयोग महावीर ने और गौतमबुद्ध ने अपने शिष्यों को खूब कराया, उसका थोड़ा सा उपयोग है साधना में लेकिन फिर भी मैं नहीं चाहता कि उस लंबी साधना में आप जाएं। इस जन्म को ही ठीक ढंग से जीना सीख जाएं। भविष्य कहां से आएगा, वर्तमान के गर्भ से ही तो उत्पन्न होगा, आनेवाला कल आज में से ही तो पैदा होगा। अगर हम आज को सुधार लें तो भविष्य भी सुधर जाएगा। तो कर्म तो संग नहीं जाएंगे लेकिन नेकी या बदी तुम्हारे साथ जाएगी। वह गीत तुमने सुना होगा–

नेकी तेरे साथ चलेगी बाबा,
साथ यही एक बात चलेगी बाबा।
संग न देंगे बंधु–बराती, संग न देंगे जीवनसाथी,
जिनके लिए तूने महल बनाए वे न तुझे बहलाएंगे भाई,
आग पे एक दिन सो जाएगा बन के धुआं तू खो जाएगा,
याद में तेरी आंसू बहाकर जीवन कोई न खोएगा,
एक तारा जो टूट गया तो आसमान क्यों रोएगा,
नेकी तेरे साथ चलेगी बाबा,
साथ यही एक बात चलेगी बाबा।

मन साथ में जाता है, अगर इस मन को तुम अभी बदल लो तो वह बदलाहट भी तुम्हारे साथ जाएगी। अगर तुम नहीं बदलोगे, जैसा वह है अगला जन्म भी फिर इसी प्रकार का होगा, सब तुम पर निर्भर है, तुम अपने भविष्य को दिशा दे सकते हो।

अगला सवाल पूछ रहे हैं यश कुमार हांसी से, मैं अपनी जिंदगी में से दस से पंद्रह मिनट प्रतिदिन ध्यान के लिए निकाल सकता हूं, कितने दिन में परमात्मा मिल जाएगा?

दिन की तो बात छोड़ो यस कुमार, मिनिट की भी बात छोड़ो, तत्क्षण मिल जाएगा, परमात्मा तो मिला ही हुआ है। मिलने की भाषा छोड़ो। बुद्ध को जब परमज्ञान उपलब्ध हुआ तो किसी ने उनसे पूछा कि आपको क्या मिला? बुद्ध ने कहा मिला कुछ भी नहीं, जो पहले से ही मिला हुआ था उस तरफ नजर पड़ी, उस ओर आंख उठी। परमात्मा शब्द को समझते हो, दो शब्दों से मिलकर बना है परम और आत्मा। आत्मा यानि सेल्फ, स्वयं का होना और परम यानि अल्टीमेट। स्वयं के होने की जो चरमावस्था है, शुद्धतम अवस्था है, आत्मा का परमरूप है परमात्मा। तो वह तो तुम हो ही, बस भीतर मुड़ने की बात है। ध्यान अगर घट जाए क्षण भर में बात बन जाती है। तो मिनिट, घंटे और दिनों की तो बात ही न पूछो। तुम्हें लग रहा होगा कि मैं मजाक कर रहा हूं। नहीं, मजाक बिल्कुल नहीं कर रहा हूं।

मैंने सुना है एक बेरोजगार युवक बहुत परेशान था। उसे लंबे समय से नौकरी नहीं मिल रही थी। अंततः वह एक बड़े कारखाने के मालिक के पास पहुंचा और उसने कहा कि सर! मैं आपके यहां नौकरी करने को तैयार हूं अगर आप मुझे एक बंगला, एक कार, एक ड्राइवर और सिर्फ एक लाख रुपया प्रतिमाह तनख्वाह दें तो। उस कारखाने के मालिक ने कहा कि जरूर–जरूर, एक क्यों, मैं आपको दो बंगले, दो ड्राइवर, दो कारें और दो लाख रुपया प्रतिमाह तनख्वाह दूंगा। उस युवक ने पूछा कि सर आप मजाक तो नहीं कर रहे, मालिक ने कहा कि मजाक की शुरूआत तो तुम्हीं ने की। तो यश कुमार, मैं मजाक नहीं कर रहा हूं, तुम ध्यान में डूबो, अंतसमुखी बनो और अपने आपको पहचानो। इसमें समय की कोई बात नहीं, परमात्मा समयातीत है, मिला ही हुआ है, वह तुम ही हो, तत्वमसी श्वेतकेतु। उपनिषद के ऋषि कहते हैं, वह तू ही है।

परमात्मा किसी कार्यकारण श्रृंखला में बंधा नहीं है, परमात्मा परममुक्त है। अगर कोई कहे कि इतना–इतना ध्यान करने से, इतने दिन में, इतने साल में, इतनी तपस्या करने से वह मिल जाएगा इसका मतलब समझते हो क्या हुआ, इसका मतलब हुआ कि परमात्मा भी बंधा हुआ है। अगर तुम कहो कि मैंने इतनी तपस्या कर ली, इतना ध्यान कर लिया अब मिलना ही चाहिए तो वह तो बंधा हुआ हो गया। बंधन में हो गया। नहीं, परमात्मा परममुक्त है। इसलिए वह कार्यकारण श्रृंखला में बंधा हुआ नहीं है। ऐसा कोई भी कारण नहीं है जिससे परमात्मा को पाया जा सके। कोई शर्तबंदी नहीं हो सकती। और इसलिए समय का सवाल नहीं है, परमात्मा टाइमलेसनेस, कालातीत है। इसीलिए उसे अकालपुरुष कहा जाता है।

चाहो तो क्षण भर में पा लो और अगर भीतर मुड़कर न देखो तो जन्म–जन्म गवां दो। तुमने कभी गेस्टाल्ट सायकालाजी का चित्रा देखा, एक ही चित्रा में दो चित्रा छिपे होते हैं उन्हीं रेखाओं, उन्हीं बिन्दुओं से एक वृद्ध स्त्री का चित्रा बना हुआ है और उसी में एक युवती का चित्रा बना हुआ है लेकिन एक बार में एक ही चित्रा दिखाई देता है। अगर वृद्ध दिखाई देगी तो युवती खो जाएगी, युवती दिखाई देगी तो बूढ़ी खो जाएगी।

ठीक ऐसे ही संसार दिखाई देता है तो परमात्मा खो जाता है, परमात्मा दिखाई देता है तो संसार खो जाता है। नजर बदलने की बात है, कहीं कुछ खोजना नहीं है, कोई नया चित्र नहीं ढूंढ़ना है, उसी चित्र में सबकुछ छिपा हुआ है, संसार और परमात्मा एक ही हैं। तुम्हारी दृष्टि बदलने की बात है जो कि क्षण भर में बदल सकती है।

अध्याय–42

परंपराएं और ओशो

पहला प्रश्न पूछा है जसपाल कुमार नई दिल्ली से, ओशो के शिष्य अपने आपको संन्यासी कैसे कहते हैं जबकि आप लोगों ने काम्य कर्मों का त्याग नहीं किया है। गीता में वर्णित हिन्दू संन्यास की परिभाषा में आप फिट ही नहीं होते हैं। जैन और बौद्ध धर्म के संन्यासी की तरह आप भिक्षु भी नहीं हैं?

जसपाल कुमार, इस बात को जरा गौर से समझना। ओशो की नवसंन्यास की धारणा कृष्ण के संन्यास की धारणा से बिल्कुल मैच करती है। शायद आपको पता हो, ओशो ने जब संन्यास शुरू किया था तब वे कृष्ण पर ही प्रवचन दे रहे थे। उस प्रवचन माला का नाम है कृष्ण मेरी दृष्टि में। हां, यह बात जरूर सच है कि बौद्ध धर्म, जैन धर्म और बाद में आदि शंकराचार्य ने हिन्दू धर्म में भिक्षु वाले संन्यास की धारणा दी, ओशो उससे जरा भी सहमत नहीं हैं। भीख मांगकर कितने लोग संन्यासी हो सकते हैं। भीख तो एक प्रकार का शोषण है दूसरों का। आपको ध्यान करने में रस है, साधना करने में रस है इसका क्या अर्थ है? दूसरे लोग आपके खाने–पीने का इंतजाम करें, आपके लिए मकान बनाएं, आपके लिए कपड़ों का इंतजाम करें, आप अपना इंतजाम स्वयं क्यों नहीं करते?

काम्य कर्म का अर्थ है कामनाओं और वासनाओं से उत्पन्न कर्म। दो प्रकार के कर्म हुए– एक तो जरूरतों से उत्पन्न। जैसे मैंने कहा रोटी चाहिए, कपड़ा चाहिए, मकान चाहिए, प्रेम चाहिए, भोजन चाहिए, दवाइयां चाहिए, सुरक्षा चाहिए यह तो जरूरतें हैं और फिर वासनाएं हैं

हमारी कि मेरे पास मंहगी विदेशी कार हो, कि मेरा पर्सनल हेलीकाप्टर हो, कि बड़ा संगमरमर का महल हो, कि मरने के बाद मेरी ताजमहल जैसी समाधि बने यह वासनाएं हैं, यह जरूरतें नहीं हैं। तो जब कहते हैं काम्य कर्मों का त्याग तो उसका अर्थ है कामनाओं से उत्पन्न कर्मों का कार्य। जरूरत से उत्पन्न कर्म तो प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने पूरे करने ही चाहिए। भिक्षा मांगना अनैतिक है जैसे कि चोरी करना अनैतिक है।

मेरी बात सुनकर तुम्हें बुरा लगेगा लेकिन यह बात समझनी ही होगी। जैसे भीख को और चोरी करने को अनैतिक क्यों कहा जाता है? नीति की परिभाषा यह है कि अगर दुनिया के सारे लोग भी उसका पालन करें तो समाज की व्यवस्था सुचारू रूप से चलती रहेगी, अनीति वह है कि अगर सारे लोग वही काम करने लगें तो समाज की व्यवस्था चलनी ही मुश्किल हो जाएगी। जरा सोचो, अगर सारे लोग सोचने लगें कि चोरी करेंगे हम, चोरी के द्वारा धन कमाएंगे तो फिर चोरी करोगे किसकी? बस थोड़े से लोग ही चोर हो सकते हैं, बहुत ज्यादा चोर नहीं हो सकते। अधिकांश लोग तो मजदूर होंगे, किसान होंगे, दुकान चलाएंगे, नौकरी करेंगे, तब थोड़े से लोग चोरी कर सकते हैं।

लेकिन अगर सारे लोग तय कर लें कि हम सब चोर होंगे तो फिर चोरी करोगे किसकी, कोई धन कमाने वाला ही नहीं बचेगा, खाओगे क्या, पिओगे क्या, कपड़े क्या पहनोगे क्योंकि तब तो कोई कपड़े ही नहीं बनाएगा। इसलिए हम चोरी को अनैतिक कहते हैं। ठीक इसी प्रकार भीख मांगना भी अनैतिक है। अगर सारे लोग भीख मांगने लगें तो भीख देगा कौन फिर। इसलिए अनैतिक कार्य ऐसे कार्य को कहा जाता है जिसको सारे लोग नहीं कर सकते, समाज की व्यवस्था ही टूट जाएगी। इसलिए मेरी दृष्टि में जैन और बौद्ध संन्यासी अनैतिक संन्यासी है। मैं उसको नैतिक का हिस्सा नहीं मानता।

भगवान कृष्ण गीता में जो कह रहे हैं वह बिल्कुल ओशो की धारणा से मैच करता है। काम्य कर्मों का त्याग करो, अर्थात कामना से उत्पन्न कर्मों की कोई जरूरत नहीं, महत्वाकांक्षाओं के पीछे पागल होकर न दौड़ो, बस अपनी शारीरिक, मानसिक जरूरतें पूरी कर लो और इतना तो सभी कर सकते हैं। और आदमी को चाहिए ही कितना, सच पूछो तो जितना कम हमें चाहिए उतने का इंतजाम हम कर लें तो हम बहुत सुखी हो सकते हैं। दुख पैदा होते हैं कामनाओं की वजह से, जरूरतों की वजह से दुख पैदा नहीं होते। जरूरतें तो पशु की भी पूरी हो जाती हैं, पक्षी की भी पूरी हो जाती हैं, कीड़े-मकोड़ों की भी पूरी हो जाती हैं, बैक्टीरिया और वायरस की भी पूरी हो जाती हैं और तो और, पेड़ पौधे जो बेचारे चल भी नहीं सकते जमीन में गड़े हुए हैं उनकी भी पूरी हो जाती हैं।

प्रकृति ने बड़ा करुणापूर्ण इंतजाम किया हुआ है।कृष्ण कर्मों के त्याग के पक्ष में नहीं हैं। अर्जुन तो कह रहा था कि मैं भाग जाऊं, संन्यासी हो जाऊं, क्या फायदा अपने ही लोगों को मारने-काटने से, कृष्ण ने उसको रोका कि तू अपना कर्म कर। तो कृष्ण कैसे कर्म के खिलाफ हो सकते हैं? नहीं, कृष्ण की बात और ओशो की बात बिल्कुल मिलती-जुलती है। इसी संदर्भ में ओशो का यह प्यारा प्रवचनांश सुनो-

'कृष्ण कहते हैं हे अर्जुन, कितने ही पंडितजन, कितने ही प्रज्ञावान पुरुष काम्य कर्मों के त्याग को संन्यास जानते हैं। काम्य कर्म क्या है? अगर तुम गीता की टीकाएं पढ़ोगे तो काम्य कर्म के संबंध में गीता के टीकाकार जो कहते हैं वह बिल्कुल ही गलत कहते हैं। गीता के सभी टीकाकार यह मानकर चलते हैं कि काम्य कर्म वे कर्म हैं जो वेदविहित, करने योग्य हैं। लेकिन यह बात मुझे ठीक नहीं मालूम पड़ती। मेरी दृष्टि में काम्य कर्मों के त्याग को संन्यास कहने का अर्थ यह नहीं हो सकता कि जो कर्म वेदविहित हैं उनका त्याग करो। काम्य कर्मों का त्याग एक ही अर्थ रख सकता है कि कर्म दो तरह के हैं– एक जो आवश्यक हैं और दूसरे जो काम्य हैं। आवश्यक कर्म तो ऐसा है कि जैसे भूख लगेगी तो भोजन जुटाना पड़ेगा। कैसे तुम जुटाते हो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। बुद्ध को भी जुटाना पड़ता है, वह भी भिक्षा के लिए गांव में निकलते हैं, यह तो जरूरत है, यह तो आवश्यकता है। प्यास लगेगी तो शरीर के लिए पानी देना पड़ेगा, न दोगे तो आत्महत्या का पाप लगेगा। वर्षा है तो छप्पर खोजोगे, धूप घनी है तो बुद्ध भी छायापूर्ण वृक्ष के नीचे बैठते हैं। यह काम्य कर्म नहीं है। यह अनिवार्य कर्म हैं। इनका त्याग कोई प्रज्ञावान पुरुष नहीं कहता।

काम्य कर्म वह हैं जो वासना जन्य हैं। जैसे बड़ा मकान चाहिए। जरूरत शायद न भी हो, सिर्फ अहंकार की आकांक्षा हो क्योंकि छोटे मकान में छोटा अहंकार लग सकता है, बड़े में बड़ा लग सकता है। शायद सोने के लिए तो जितनी जगह तुम छोटे मकान में लेते हो उतनी ही जगह बड़े मकान में भी लोगे, लेकिन बड़ा मकान चाहिए। लोग बड़ा मकान जिंदा में भी नहीं चाहते, मरने के बाद चाहते हैं। सम्राट तो अपनी कब्र भी पहले से ही बनवा रखता है क्योंकि पीछे क्या भरोसा, लोग बड़ी कब्र बनाएं कि न बनाएं इसलिए अपनी कब्र पहले ही बनवा रखता है। बड़ी–बड़ी कब्रें बनाई गई हैं और आदमी मरकर उतनी ही जगह लेता है, जितना गरीब लेता है उतनी ही गरीब भी लेता है। अगर जिंदगी में भी काम्य कर्म छूट जाएं तो तुम्हारी जरूरतें भी वही हैं जो गरीब की हैं, अमीर की भी वही है गरीब की भी वही है। प्यास लगती है पानी चाहिए, भूख लगती है भोजन चाहिए। त्याग का अर्थ होगा, संन्यास का अर्थ होगा जरूरत ही शेष रह जाए, गैरजरूरत हट जाए। जो गैरजरूरी है, जो किसी कामना के कारण पैदा हुआ है, जो किसी पागलपन से पैदा हुआ है वह हट जाए। अगर तुम ठीक से इसे समझ लो तो तुम पाओगे कि जीवन बड़ा सरल हो जाता है। चाहिए ही कितना कम है।

जशपाल, एक बात का और ख्याल रखना, युग परिवर्तन होता है, समय बदल जाता है, समाज की व्यवस्था बदल जाती है। बुद्ध और महावीर के समय में हमारा देश सोने की चिड़िया था, एक आदमी कमाता था तो चालीस–पचास लोगों का परिवार मजे से रहता था। धन–धान्य की कोई कमी न थी, अतिरेक में सबकुछ मौजूद था। उस समय हजारों लोग अगर भिक्षाटन भी करें तो कोई हर्ज नहीं था, वह एक प्रकार की लक्जरी थी। कुछ लोग भीख मांग सकते हैं। जैसे पीछे अमेरिका में हुआ, बहुत समृद्ध हो गया देश, हजारों–हजारों युवक–युवतियां हिप्पी बन गए, भीख मांगने लगे, काम–धंधा छोड़ दिया। जब कोई देश बहुत समृद्ध हो जाता है तब भीख मांगना भी एक शौक हो सकता है, एक मजे की घटना हो सकती

है। थोड़े से लोग कामधाम न करें चलेगा, यह एक लक्जरी की बात है। आज परिस्थिति बिल्कुल भिन्न है। साम्यवाद की धारणा सबके मन में समा गई है। संन्यासी को लोग शोषक की भांति देख रहे हैं। सोवियत रूस में, चीन में संन्यास समाप्त हो गया। सबसे गहरे संन्यासी तिब्बत में पैदा हुए थे वे सब विदा हो गए, वर्मा में और थाईलैण्ड में बड़ी मुश्किल हो गई है। थाईलैण्ड में सरकार को नियम बनाना पड़ा कि संन्यास लेने से पहले सरकार से लायसंस लेना पड़ेगा। क्योंकि बड़ी मुश्किल है, नियम है कि हर परिवार का एक व्यक्ति संन्यासी हो। तो करीब–करीब बीस प्रतिशत लोग देश की बड़ी जनसंख्या संन्यासी है। इतने लोगों का पालन–पोषण कौन करेगा, कैसे करेगा।

आज तो मुश्किल यह है कि एक व्यक्ति कमाता है तो अपने ही परिवार को छोटा सा जो होता है उसे बामुश्किल पाल पाता है। महानगरों में स्थिति और खराब है, पति–पत्नी दोनों ही काम करें तब जाकर गुजारा हो पा रहा है। पश्चिम के देशों में स्थिति यह है कि स्टूडेंट्स विद्यार्थी जीवन में ही कुछ काम करते हैं तब जाकर अपना पालन–पोषण कर पाएंगे, माता–पिता के कमाई से उनका खर्च नहीं चल सकता। ऐसी स्थिति में समाज संन्यास को झेल न सकेगा, कि भिक्षु वाला संन्यास आगे न चल सकेगा। अगर संन्यास को बचाना है तो उसे भिक्षाटन से मुक्त करना होगा। तो कृष्ण जब कहते हैं काम्य कर्मों का त्याग तो सीधा–सीधा उसका अर्थ है– कामनाजनिक कर्मों का त्याग।

अगला प्रश्न पूछा है डॉक्टर टी एम डेकवार गोंदिया से, शिष्य तो अज्ञानी होता है, वह अपने अंधेपन में जिसे गुरु चुनेगा निश्चय ही उसमें भूलचूक की संभावना है, फिर गुरु कैसे चुना जाए?

गुरु चुना नहीं जाता। तुम साधु–सत्संग में घूमते रहो, ढूंढ़ते रहो, तलाश करते रहो अचानक किसी के प्रति जब तुम्हारे हृदय में प्रेम उत्पन्न हो जाएगा, उस प्रेम का नाम है श्रद्धा। वह तुम्हारा गुरु है और तुम उसके शिष्य हुए। बाहर से कोई परिभाषा और लक्षण नहीं बताए जा सकते, कहा नहीं जा सकता कि कहां, कब और कैसे यह घटना घटेगी। हां, तुम्हारी आंख खुली हो, तुम्हारे हृदय के वातायन खुले हों, स्वागत भाव से खोज करना, जरूर गुरु मिल जाता है। कहीं न कहीं वह निगाहें तुम्हें मिल जाएंगी जहां तुम कह सकोगे कि–

महफिल में बार–बार उसी पर नजर गई,
हमने बचाई लाख मगर फिर भी उधर गई।
तेरी नजर में कोई तो जादू जरूर था,
जिस पे पड़ी उसी के जिगर तक उतर गई।
पत्थरों की आंख से भी आंसू निकल पड़े,
तेरी जादुई निगाह बड़ा काम कर गई।

उन निगाहों को खोजो जहां तुम्हारे भीतर, तुम्हारे हृदय में कुछ गुदगुदी पैदा होती हो, जिसके सानिध्य में बैठकर तुम्हारे मन में शांति छाती हो। जहां कोई जादुई असर तुम्हें लगे, सोचविचार से नहीं होगा। चिंतन–मनन मस्तिष्क का काम है, गुरु–शिष्य का संबंध हृदय का नाता है। इसलिए सोचविचार न करो और निश्चितरूप से तुम कह रहे हो कि भूलचूक की संभावना है। इसको मैं स्वीकारता हूं कि भूलचूक की संभावना है, तुम धोखा भी खा सकते

हो। साधारण प्रेम में भी आकर कभी न कभी धोखा मिलता है लेकिन इस डर से तुम प्रेम करना बंद नहीं कर देते। यह जीवन का लक्षण है, यहां भूलचूक हो सकती है, हम फिसल सकते हैं, गिर सकते हैं।

मैंने सुना है एक युवक ने युनिवर्सिटी की परीक्षा पास की। अपने गांव के नगर सेठ चंदूलाल के यहां जाकर उसने पूछा कि मैं भी एक सफल व्यवसायी बनना चाहता हूं, आप तो प्रतिष्ठित व्यवसायी हैं इस शहर के, कृपया मुझे कुछ हिंट दें, कुछ सूत्र दें कि मैं भी सफल हो सकूं। चंदूलाल ने कहा कि बहुत ही आसान है। अगर तुम्हें सफलता अर्जित करनी है तो एक बात ख्याल रखना, हमेशा व्यापारिक निर्णय सही लेना। उस युवक ने कहा कि आपकी बात बिल्कुल ठीक, सही डिसीजन लूंगा तो सफलता मिलेगी। अब कृपया यह बताएं कि सही डिसीजन कैसे लूं? चंदूलाल ने कहा कि बड़ा आसान है, अपने अनुभव से ही यह ज्ञान प्राप्त होता है कि सही निर्णय क्या है। युवक ने कहा कि बात आपकी बिल्कुल ठीक, अनुभव कैसे प्राप्त करूं? चंदूलाल ने कहा गलत निर्णय करके। और कैसे अनुभव आएगा। तो भूल-चूक की संभावना सदा है लेकिन इस कारण तुम रुक मत जाना, खोज जारी रखना। खोजते-खोजते जरूर गुरु से मिलन होता है। आज तक जिसको भी गुरु मिला ठीक इसी प्रकार मिला।

अगला प्रश्न है, मेरी घमंडी पत्नी सदा झगड़ा करती रहती है। घर में शांति लाने का उपाय बताइए? यह प्रश्न पूछा है गिरि प्रसाद नेपाल से।

गिरि प्रसाद अगर अभी तुम्हारा विवाह नहीं हुआ है तो एक बिल्कुल सरल उपाय है, शांति नाम की स्त्री से शादी कर लेना तो घर में शांति आ जाएगी। अगर तुम विवाहित हो तो अगर बेटी पैदा हो तो उसका नाम शांति रख लेना तब भी घर में शांति आ जाएगी। तीसरा उपाय, अगर तुम्हारा बेटा बड़ा हो गया है जब उसकी शादी हो तो शांति नाम की लड़की से उसकी शादी कर देना, तुम्हारी बहू शांतिस्वरूपा घर में आ जाएगी।

मैं जहां गांव में रहता था बचपन में मेरे घर के बायीं तरफ एक शांत कुमार नाम के सज्जन रहते थे और घर के दाहिनी तरफ एक मकान था उनका नाम था प्रशांत कुमार। संयोग की बात कि इन दोनों का जब विवाह हुआ तो इकट्ठी दोनों बहनों के साथ हुआ जो कि सगी थीं। एक का नाम था छोटी शांति, एक का नाम था बड़ी शांति। हद हो गई, नामों की कमी पड़ रही थी। पिताजी ने अपने दोनों बेटियों के नाम शांति ही शांति रख दिया, घर में शांति ही शांति हो गई। तो सरल उपाय अगर पूछोगे तो ऐसा कुछ बताऊंगा और अगर तुम्हें साधना में रस है, अपने आपको बदलना चाहते हो तो फिर मेरी बात गौर से सुनो, तुम कह रहे हो कि पत्नी घमण्डी है और मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि तुम घमण्डी हो।

दो हाथ से ताली बजती है, एक हाथ से नहीं। तुम्हारा अहंकार दूसरे के अहंकार से टकराता है तभी तुम्हें दूसरे के अहंकार का बोध होता है, सिर्फ घमण्डी आदमी को ही लगता है कि दूसरे लोग घमण्डी हैं। तो तुम्हारी पत्नी के बारे में तो नहीं जानता क्योंकि वह यहां नहीं, लेकिन तुम्हारे बारे में मैं जरूर बता सकता हूं कि तुम बहुत अभिमानी हो और इसलिए तुम्हें दूसरे लोग अभिमानी लगते हैं। अपने अहंकार के प्रति जागो। तुम्हारी अशांति का कारण

पत्नी नहीं है और तुम्हारी शांति का कारण भी दूसरा नहीं हो सकता। अशांति का कारण तुम्हारा अहंकार है और शांति का कारण तुम्हारी निर्अहंकारी जागरूकता होगी, ध्यान में डूबना होगा, समाधि में डूबना होगा।

यह अहम तभी विलीन होता है जब तुम ब्रम्ह को जान लो, उसके पहले नहीं होता। जब तक दीपक न जल जाए अंधकार नहीं मिटता। अहंकार भी अंधकार के समान है। इसको सीधा–सीधा मिटाने का कोई उपाय नहीं। हां, ध्यान का दीपक जल जाए तो अंधकार पाया ही नहीं जाता। जब मैं कहता हूं कि अंधकार विलीन हो जाता है तो ऐसा नहीं सोचना कि दीपक जलाते समय अंधकार भागता हुआ नजर आता है कि वह भाग रहा है डर के मारे। नहीं, जब दीपक जलता है तो हम पाते हैं कि अंधकार है ही नहीं। ठीक ऐसे ही ज्ञान के प्रकाश में पता चलता है कि अहंकार है ही नहीं, वह हमारी भ्रांति थी और तब सारे क्रोध, कलह, लड़ाई–झगड़े समाप्त होते हैं और शांति व्याप्त होती है।

तुम कह रहे हो घर में शांति लाने का उपाय, मैं तुमसे कहता हूं आत्मशांति का उपाय। तुम शांत हो जाओ, जागो, चेतो, दूसरों को दोष देना बंद करो। कबीर साहब ने कहा है, बुरा जो देखन मैं चला बुरा न मिलिया कोय, जो भीतर खोजा आपना मुझसे बुरा न कोय।

ओशो ने धर्म और राजनीति की बड़ी सुंदर छोटी सी परिभाषा की है– राजनीति अर्थात दूसरों को बदलने का प्रयास और अध्यात्म यानि आत्मरूपांतरण की कला। आत्मरूपांतरण की दिशा में आगे बढ़ो।

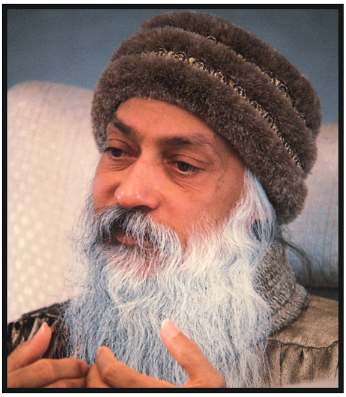

अध्याय–43

अल्लाह का जिक्र

सद्गुरु जी प्रणाम, आज का पहला प्रश्न गुलाम मोहम्मद भोपाल से पूछ रहे हैं, मैं एक मुस्लिम परिवार से आता हूं, क्या मैं भी ध्यान व सुरति समाधि में शामिल हो सकता हूं?

जरूर आपका स्वागत है गुलाम मोहम्मद जी ध्यान व सुरति समाधि में। शब्दों को मत पकड़ना, अलग भाषाओं में अलग–अलग शब्द हैं एक ही बात के लिए, परमात्मा तो एक ही है और सबमें वही का वही है। और उस तरफ जाने के मार्ग भी वही के वही हैं। किन्तु अलग–अलग देश में, अलग–अलग काल में विभिन्न भाषाएं उपयोग में आई हैं। अब आपका नाम देखिए, गुलाम मोहम्मद है। कोई हिन्दू अपना नाम रखे भगवान दास या नारायण दास या गोपाल दास अर्थ तो वही हुआ। गुलाम का अर्थ है दास। दास भक्ति की प्रथा को कहा जाता है पूरब में प्रचलित रही। परमात्मा हमारा मालिक है, हम उसके दास हैं। सुनने में कितना अलग–अलग लगता है, नारायण दास और गुलाम मोहम्मद लेकिन दोनों का तात्पर्य और अर्थ तो वही का वही है, एक ही है।

जिसको तुम कह रहे हो जिक्र करना सूफियों की भाषा में उसी को हिन्दुओं ने कहा है सुरति, उसकी याद, हरिचर्चा, हरि गुणगान। बात वही की वही है। काश मनुष्य जाति शब्दों का मोह छोड़ दे तो सारी दुनिया में एक आध्यात्मिकता बचे। फिर यह विशेषण वाले धर्म विदा हो जाएंगे, जैन, बौद्ध, हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख इत्यादि, इनकी कोई भी जरूरत नहीं। क्योंकि इन धर्मों के भीतर के सार तत्व को देखो तो आध्यात्मिकता वही की वही है सब जगह एक सी। उसमें कोई भी फर्क नहीं। कहने के ढंग अलग हैं, उपमाएं अलग हैं, जिन लोगों से

बात कहीं गई थीं वे लोग अलग थे तो निश्चितरूप से समझाने का ढंग अलग था लेकिन मूल तत्व तो वहीं का वहीं है। सुनो जिक्र के संबंध में, सुरति के संबंध में ओशो एक बड़ी प्यारी विधि बताते हैं–

सूफियों के पास ठीक शब्द है सुरति के लिए, वह कहते हैं जिक्र। जिक्र का भी वही अर्थ होता है जो सुरति का, जिक्र का अर्थ होता है स्मरण, याददाश्त कि चलो बैठें प्रभु का जिक्र करें, उसकी याद करें। जिसको हिन्दू नामस्मरण कहते हैं। नामस्मरण का मतलब यह नहीं होता कि बैठकर राम–राम–राम करते रहें, अगर राम–राम करने से शुरू भी होता है राम का स्मरण तो भी समाप्त नहीं होता। सूफियों का जिक्र समझने जैसा है, कुछ तुममें से प्रयोग करना चाहें तो करें। सूफियों के जिक्र का आधार है अल्लाह, शब्द बड़ा प्यारा है, शब्द में बड़ा रस है। वह तो हम हिन्दू, मुसलमान, जैन, ईसाई बांटकर दुनिया को देखते हैं इसलिए बड़ी रसीली बातों से वंचित रह जाते हैं।

मैंने बहुत से शब्दों में प्रयोग किया लेकिन अल्लाह जैसा प्यारा शब्द नहीं है। राम में वह मजा नहीं है। तुम जब गुनगुनाओगे तब पता चलेगा। जो गुनगुनाहट अल्लाह में पैदा होती है और जो मस्ती अल्लाह में पैदा होती है वह और किसी शब्द में नहीं होती। चेष्टा करके देखना। कभी रात के समय द्वार–दरवाजें बंद करके दिया बुझाकर बैठ जाना ताकि बाहर कुछ दिखाई ही न पड़े, नहीं तो तुम्हारी आदत तो पुरानी है कुछ न कुछ देखते रहोगे। फिर भीतर बैठकर पहला कदम है जिक्र का अल्लाह–अल्लाह कहना शुरू करना, जोर से कहना, होंठ का उपयोग करना। एक पांच–सात मिनट तक अल्लाह–अल्लाह जोर से कहना, पांच–सात मिनट में तुम्हारे भीतर रसधार बहनी शुरू होगी। तब होंठ बंद कर लेना, दूसरा कदम अब सिर्फ भीतर जीभ से कहना अल्लाह–अल्लाह।

पांच–सात मिनट जीभ का उपयोग करना तब भीतर ध्वनि होने लगेगी, तब तुम भीतर जीभ को भी छोड़ देना, अब बिना जीभ के भीतर अल्लाह–अल्लाह–अल्लाह करना, पांच–सात मिनट तब तुम्हारे भीतर और भी गहराई में ध्वनि होने लगेगी, प्रतिध्वनि होने लगेगी। तब भीतर भी बोलना बंद कर देना, अल्लाह–अल्लाह वहां भी छोड़ देना।

अब तो अल्लाह शब्द नहीं रहेगा लेकिन अल्लाह शब्द के निरंतर स्मरण से जो प्रतिध्वनि गूंजी वह गूंज रह जाएगी, तरंगें रह जाएंगी। जैसे वीणा बजते–बजते अचानक बंद हो गई, तो थोड़ी देर वीणा तो बंद हो जाती है लेकिन श्रोता गदगद रहता है, गूंजती रहती है आवाज, फिर धीरे–धीरे वह खोती जाती है। तो तुमने अगर पंद्रह–बीस मिनट अल्लाह का स्मरण किया अपने होठों से, फिर जीभ से, फिर बिना जीभ के तो तुम उस जगह आ जाओगे जहां दो–चार मिनट के लिए अल्लाह की गूंज गूंजती रहेगी।तुम्हारे भीतर जैसे रोम–रोम अल्लाह–अल्लाह करेगा, तुम उसे सुनते रहना। धीरे–धीरे वह गूंज भी खो जाएगी। और तब जो शेष रह जाता है वही अल्लाह है, तब जो शेष रह जाता है वही राम है, शब्द भी नहीं बचता, शब्द की अनुगूंज भी नहीं बचती, एक महाशून्य रह जाता है।

सुरति, राम शब्द का उपयोग करो उससे भी हो जाएगा, ओम शब्द का उपयोग करो उससे भी हो जाएगा। लेकिन अल्लाह निश्चित ही बहुत रसपूर्ण है। और तुम सूफियों को

जैसी मस्ती में देखोगे इस जहां तो तुम किसी को वैसी मस्ती में न देखोगे, जैसे सूफियों की मस्ती में तुम शराब देखोगे वैसे किसी की आंख में न देखोगे।

आज का दूसरा प्रश्न महिपाल यादव जबलपूर से पूछते हैं, कार दुर्घटना में समस्त परिवार जनों की मृत्यु हो गई और ईश्वर के अस्तित्व में मेरी श्रद्धा भी खत्म हो गई, अब करूं तो क्या करूं? कविता के माध्यम से अपने भाव प्रगट कर रहे हैं–

खाली हैं मेरे हाथ मेरे पास कुछ नहीं बचा,
दिल के दामन में कड़वे एहसास के सिवा,
देखे थे मीठे ख्वाब कितने किस तरह कहूं,
पर कुछ न मिल सका इक प्यास के सिवा।
आखिर वह आस भी अब दम तोड़ने लगी,
सब कुछ ही खो चुका हूं इक आस के सिवा।

अगर किसी कारणों से श्रद्धा करोगे तो वह श्रद्धा टूटेगी। तुम्हारी झूठी आस्तिकता थी वह समाप्त हुई। चलो अच्छा हुआ, जिस प्रकार से ईश्वर की धारणा पर तुम भरोसा कर रहे थे वह तुम्हारा मीठा ख्वाब ही थी, वह तुम्हारा सपना था, तुम्हारा आरोपण था। अनुभव जन्य श्रद्धा कभी नष्ट नहीं होती, तुम्हारी श्रद्धा बिना अनुभव के थी। बिना जाने थी और तुमने मान लिया था बिना जाने। वह तो किसी न किसी कारण से टूटना ही था। याद रखना, जो लोग भी किसी कारण से भगवान पर भरोसा कर रहे हैं उनका भरोसा टूटेगा, सुनिश्चितरूप से टूटेगा। अकारण हो श्रद्धा तो ही वह सही श्रद्धा है, भक्ति हो अकारण तो ही वह पराभक्ति है। श्रद्धा और भक्ति तो बड़ी चीज हैं, प्रेम के विराट रूप हैं।

जिसे हम साधारण प्रेम कहते हैं अगर उसमें भी कारण हो तो फिर वह प्रेम शुद्ध नहीं रह जाता। अगर तुम कह सको कि मैं फलां व्यक्ति को इन–इन कारणों से प्रेम करता हूं कि वह सुंदर है, कि उसकी वाणी मधुर है, कि उसके पास धन बहुत है फिर यह प्रेम, प्रेम न रहा। क्योंकि यह कारण कभी भी समाप्त हो सकते हैं। जो व्यक्ति सुंदर है कल हो सकता है किसी दुर्घटना में उसका चेहरा जल जाए और कुरूप हो जाए, आज जो व्यक्ति धनी है कल हो सकता है उसका दिवाला निकल जाए, शेयर मार्केट लुढ़क जाए तो वह आदमी भी लुढ़क जाए। अगर किसी कारण से उसको प्रेम करते हो तो तुमने उसको प्रेम किया ही नहीं, तुम तो किसी और चीज को प्रेम कर रहे थे। ठीक इसी प्रकार श्रद्धा और भक्ति भी अगर सकारण हैं तो वह वास्तविक श्रद्धा और भक्ति है ही नहीं।

भारत के बाहर जो धर्म पैदा हुए उनमें ईश्वर और शैतान की धारणा है, दो विपरीत शक्तियां। परमात्मा अर्थात शुभ, शैतान यानि अशुभ। गॉड कुलमिलाकर गुड का पर्यायवाची है। जो–जो अच्छा है वह भगवान का किया और जो–जो बुरा है वह शैतान का किया। भारत के धर्मों ने अद्भुत धारणा दी, उन्होंने ईश्वर और शैतान का विभाजन नहीं किया। उपनिषद के ऋषि, वेदों के ऋषि जिस त्रिमूर्ति की बात करते हैं ब्रम्हा, विष्णु, महेश उसमें सबकुछ समाया हुआ है। ब्रम्ह हैं जन्म देने वाले, विष्णु हैं सम्हालने वाले और महेश हैं संहार करने वाले। नष्ट करने वाला भी परमात्मा है, जन्म देने वाला भी परमात्मा है, सम्हालने वाला भी परमात्मा है।

किसी दार्शनिक ने लिखा है कि अंग्रेजी का वर्ड गॉड, जीओडी वह भी शार्ट फार्म है। जी फार जनरेटर पैदा करने वाला ब्रम्हा, ओ फार ऑपरेटर, सम्हालने वाला विष्णु और डी फार डिस्टक्टर, डिस्टायर, नष्ट करने वाला महेश। भारत में त्रिमूर्ति की धारणा है। यह सब परमात्मा के ही रूप हैं। तुम मृत्यु को जन्म से अलग करके मत देखो, तब जो श्रद्धा जन्मेगी वह ज्यादा गहरी होगी। और मैं तो चाहूंगा उससे भी आगे बढ़ो, ध्यान और समाधि में डूबकर, जिक्र में डूबकर ईश्वर की सत्ता का अनुभव करो। फिर वह श्रद्धा कभी नहीं डगमगाएगी। क्योंकि तब तुम जानोगे, अपने अनुभव से जानोगे कि वह है, फिर नहीं कहने का कोई उपाय ही नहीं रह जाता। तो मेरा जोर तो अनुभवगम्य श्रद्धा पर है। तुम्हारी श्रद्धा तो टूटनी ही थी, अच्छा हुआ टूटी, कम से कम सुहाना भ्रम तो टूटा, अब सत्य के प्रति जागो। सुनो यह प्यारा गीत–

सिलसिला मौतोजिंदगी क्या नजर का धोखा नहीं है,
न कभी कोई आया कहीं से, यहां से गया भी नहीं है।
जहां वह है वहां मैं नहीं, जहां मैं हूं तो वह नहीं है,
यहां तो बात बस एक की है, जहां में कोई दूसरा नहीं है।
खुदा के बंदे खुदा को पाते अपनी हस्ती खुद मिटा के,
खुद की ही तकमील करके देखें जो कहते हैं खुदा नहीं है।

तकमील यानि शून्य करना, मिटाना, फना हो जाना। खुद की ही तकमील, अपने अहंकार को मिटाकर देखो। तुम कह रहे हो कि ईश्वर में से मेरी श्रद्धा समाप्त हो गई है।

खुदा के बंदे खुदा को पाते अपने हस्ती खुद मिटा के,
खुदी की तकमील करके देखें जो कहते हैं कि खुदा नहीं है।
शून्य होना सीखो, उस शून्य का नाम ही ध्यान है, समाधि है।

आज का तीसरा प्रश्न है, पूछ रही हैं मां आनंद सरिता काठमाण्डू से। क्या ईश्वर की सत्ता को तर्क की कसौटी पर सिद्ध किया जा सकता है?

अगर सिद्ध किया भी जा सके तो भी वह व्यर्थ है। तर्क की कसौटी पर कोई भी चीज सिद्ध हो गई तब उसकी कोई कीमत नहीं रह जाती। वह रहस्य अनुभव गम्य है। और रहस्य ऐसा है कि जानकर भी उसकी रहस्यमयता समाप्त नहीं होती। यही उसकी जीवंतता का प्रमाण है। नहीं, किसी तर्क से सिद्ध नहीं होता। और कोई संत परमात्मा को सिद्ध करने की बात नहीं सिखाता। पंडित लोग तर्क करते हैं, पक्ष में विपक्ष में।

और याद रखना, विपक्ष वाले आज तक जीतते आए हैं। कोई आस्तिक परमात्मा को सिद्ध नहीं कर पाया, हमेशा नास्तिक जीता है। नास्तिक का तर्क ज्यादा मजबूत है। और तर्क तो दुधारी तलवार है, कहीं भी काट सकती है। कोई जीत गया तो उससे सिर्फ इतना ही सिद्ध होता है कि वह ज्यादा प्रतिभाशाली है, बुद्धिमान है बस। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि उसकी सिद्ध की हुई बात सच है। तर्क से तो कुछ भी सिद्ध हो जाएगा।

मैंने सुना है एक गांव का देहाती व्यक्ति के ऊपर कोर्ट केस चल रहा था। वकील ने उससे पूछा कि तुम्हारे कितने बच्चे हैं? उस देहाती ने कहा कि मेरे दस बच्चे हुए दो बार। वकली ने कहा कि क्या मतलब, तुम्हारे बीस बच्चे हैं? गांव के देहाती ने कहा नहीं, मैंने कहा दस बच्चे

दो बार। वकील ने कहा कि इसका यही अर्थ हुआ न कि बीस बच्चे हुए। देहाती ने कहा कि हद हो गई, आप पढ़े-लिखे आदमी हैं कि नहीं, कुछ समझते हैं कि नहीं, मैं कह रहा हूं दस बच्चे दो बार, पहले मेरे दस बच्चे थे तो एक मर गया तो नौ बचे, फिर एक और पैदा हो गया तो फिर दस हो गए, तो दो बार दस हुए कि नहीं।

तुम तर्क का भरोसा न करना, तर्क से कुछ भी सिद्ध हो जाता है, जो तुम सिद्ध करना चाहो वही हो जाता है। तर्क पर भरोसा नहीं करना, अनुभव पर मेरा जोर है।

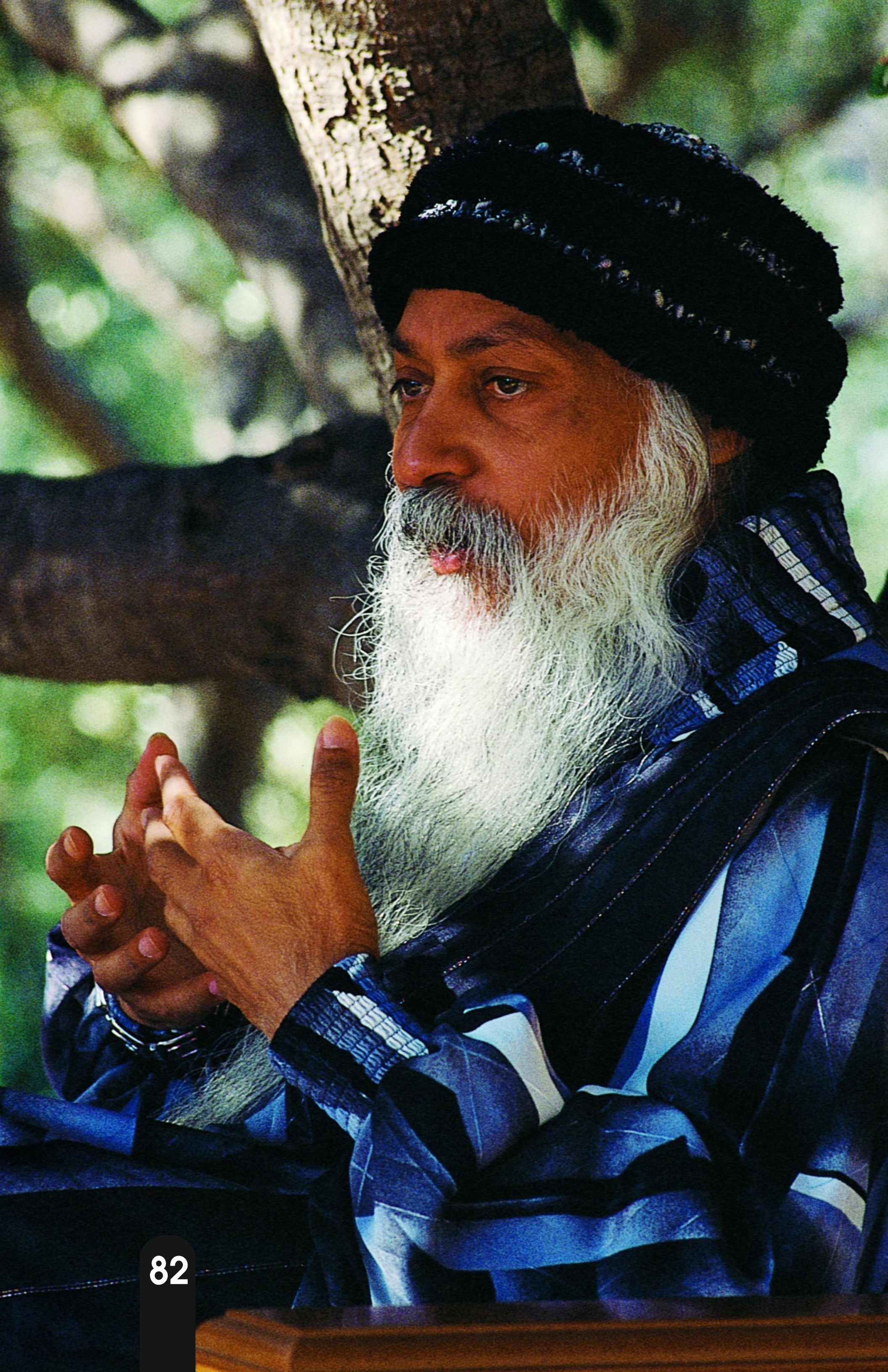

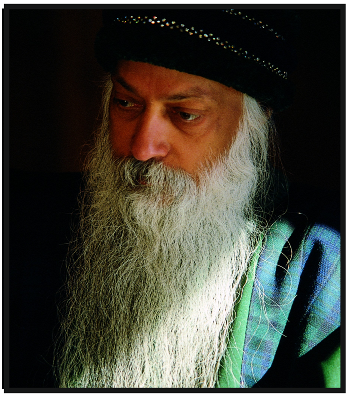

अध्याय–44

सुरति: अजपा जाप

प्रभु श्री, आज का पहला प्रश्न पूछा है मध्यप्रदेश सतना से दिनकर यादव जी ने, मैंने परमात्मा के संबंध में बहुत चिंतन–मनन किया किन्तु फिर भी प्रभु की सुरति नहीं सधती। कष्टों में स्मृति याद आती है, फिर भूल–भूल जाती है। प्रभु भी मुझे भूल जाता है और मेरी प्रार्थना नहीं सुनता क्या करूं?

दिनकर यादव, अगर प्रभु हमें भूल जाता तो हम होते ही नहीं। प्रभु का अर्थ समझते हो। ओशो परिभाषा करते हैं परमात्मा की, गॉड इज दैट व्हिच इज, परमात्मा वह है जो है। अस्तित्व का नाम परमात्मा है। हम इस अस्तित्व के हिस्से हैं। इससे स्पष्टरूप से सिद्ध होता है कि परमात्मा हमको भूला नहीं है वरना यह श्वांस कैसे चलती और यह हृदय कैसे धड़कता। हां, तुम जो कह रहे हो कि चिंतन–मनन बहुत करता हूं लेकिन उसकी याद नहीं सधती? तुमसे किसने कहा कि चिंतन–मनन के द्वारा याद सधेगी। चिंतन–मनन होता है मन से और याद सधती है चेतन से। चेतना के तल पर जाना होगा, साक्षी के तल पर पहुंचना होगा। वहां ओंकार की धुन को सुनो, उसमें डूबो फिर उसका स्मरण सधेगा, फिर सुरति सधेगी। उसके बिना सुरति कभी नहीं सध सकती।

कई लोग हरि सुमिरन करने की कोशिश करते रहते हैं, बिना ओंकार ज्ञान प्राप्त किए उनकी सारी कोशिश निष्फल जाती है। चिंतन–मनन के द्वारा संसार के बारे में जाना जाता है। हां, अगर तुम्हें विज्ञान का ज्ञान प्राप्त करना है, वैज्ञानिक ढंग से प्रकृति का अन्वेषण

करना है तो मन का उपयोग करना वहां पर तुम्हारा सोच–विचार काम आएगा। किन्तु अगर भीतर परमात्मा को जानना है वहां सोच–विचार काम नहीं आएगा। उल्टा है, सोच–विचार ही वहां बाधा है, निर्विचार चैतन्य का नाम है ध्यान। तो वहां तो शांत होना होगा, मौन होना होगा, सारा चिंतन–मनन छोड़ना होगा तब ओंकार की ध्वनि सुनाई पड़ेगी और फिर उसकी सुरति सदा–सदा बनी रहेगी। संतों ने उसी को अजपा जाप कहा है। एक जाप तो वह है जो हम मुंह से कहते हैं राम–राम–राम–राम या ओम–ओम–ओम यह तो जाप हुआ कंठ के द्वारा, होंठों के द्वारा। एक जाप मन ही मन हो सकता है कि हम किसी शब्द को मन ही मन दोहराएं लेकिन वह भी मानसिक जाप है, एक और जाप है जो बिना जपे अपने आप चल ही रहा है, उसको जानकर ही सुरति सधती है। सुनो ओशो की अमृतवाणी सुरति के संबंध में–

सुरति का अर्थ है अजपा जाप, सुरति का अर्थ है याद करनी न पड़े, याद रहे। जैसे श्वांस चलानी नहीं पड़ती, अपने आप रहे, सहज रहे। कृत्य न हो, हमारी चेष्टा न हो, हम भुलाना भी चाहें तो भुला न सकें, हम विस्मरण भी करना चाहें तो कोई उपाय न मिले, श्वांस–श्वांस में समा जाए, हमारी सहज भावदशा बन जाए ऐसा अर्थ है इस सुरति का।

सुरति शब्द आता है स्मृति से। बुद्ध ने स्मृति शब्द का उपयोग किया था, वही शब्द लोकभाषा में प्रचलित होते–होते सुरति बन गया। याद, लेकिन ख्याल रहे, शब्दों में नहीं, भाषा में नहीं, प्राणों में। शब्द में तो जो याद रहेगी वह तो कभी–कभी भूल जाएगी, उसकी धारा अखण्ड नहीं हो सकती। क्योंकि मन का एक नियम है कि एक साथ मन दो काम नहीं कर सकता। अगर धन की सोचोगे तो ध्यान चूक जाएगा, ध्यान की सोचोगे धन भूल जाएगा, घर की सोचोगे बाजार भूल जाएगा, बाजार की सोचोगे घर भूल जाएगा। मन एक साथ दो काम नहीं कर सकता। तो मन तो हजार काम में उलझा हुआ है, एक काम से दूसरा, दूसरे से तीसरा, मन का तो बड़ा व्यापार है।

अगर मन से ही परमात्मा की याद की तो कभी–कभी हो सकेगी और कभी–कभी की याद का कोई भरोसा नहीं। फिर तो तभी होगी जब जीवन में बड़ा दुख होगा, मतलब से होगी, हेतु होगा, कारण होगा। जब दुख आएगा तो याद आ जाएगी, मगर दुख के कारण आएगी और दुख के कारण जो याद आए वह दो कौड़ी की है, वह तो स्वार्थ से भरी है। दुख के कारण जो याद आए उसमें तो मतलब है कि परमात्मा की याद नहीं है, परमात्मा से कुछ काम करा लेने के लिए है, परमात्मा को भी सेवक बना लेने का इरादा है उस याद में कि मुझ पर दुख आया है तुम बैठे वहां क्या कर रहे हो। लेकिन जब सुख आएगा तो बिल्कुल भूल जाओगे। और ख्याल रहे, जिसने सुख में याद किया उसी ने पाया, दुख की याद तो झूठी है, व्यावसायिक है, सांसारिक है। जिसने सुख में याद किया वह होती है सुरति, लेकिन सुख में तो मन तरंगों से भरा होता है, सुख में तो मन ऐसा उड़ा–उड़ा होता है कि कौन फिक्र करता है परमात्मा की, सुख में तो मन इतना उलझा होता है हजार बातों में कि उसे निकलना मुश्किल होता है। दुख में तो इसलिए याद करना संभव हो जाता है क्योंकि दुख में उलझना मुश्किल है। दुख की एक खूबी है कि आदमी उससे बाहर निकलना चाहता है।

तेल को उडेलते एक बरतन से दूसरे बरतन में, उसकी अखण्ड धारा होती है। सुरति तेल की धार है जो चौबीस घंटे पर समा जाए, जागते तो बनी ही रहे, नींद में भी बनी रहे। शरीर सो जाए, मन सो जाए लेकिन सुरति न सोए, अखण्ड। तो पहली तो बात कि मन से यह काम न हो सकेगा, मन में तो कुछ भी अखण्ड नहीं होता, सब खण्ड–खण्ड होता है। यह बात तो मन के पार होकर ही हो सकेगी जहां मन विसर्जित होगा वहीं सुरति का जन्म होगा, जहां मन गया वहीं प्रभु आया। तो सुरति कोई मनन नहीं है,

क्योंकि मनन तो मन की प्रक्रिया है, यह कोई चिंतन नहीं है क्योंकि चिंतन भी मन की ही प्रक्रिया है। सुरति बड़ी अपूर्व घटना है।

दिनकर यादव, तुम कहते हो कि कष्टों में प्रभु की याद आती है, यह बात बड़ी गलत है। कष्ट में प्रभु की याद मत करना, अगर उसकी याद करना है तो सुख में याद करना। जब तुम्हारा मन प्रसन्न है, प्रफुल्लित है, आनंदित है, जब तुम प्रेमपूर्ण हो, शांत हो, उत्साह से भरे हो, अपने जीवन के विधायक पक्ष को परमात्मा से जोड़ना, कष्टों और दुखों में उसकी याद करने की जरूरत नहीं है। वह संभव भी नहीं। क्योंकि कष्ट है ही इसलिए कि हम उससे बहुत दूर हो गए हैं। ऐसा समझो कि एक आदमी सूरज की तरफ मुंह करके खड़ा है और एक आदमी सूरज की तरफ पीठ करके खड़ा है। जो व्यक्ति सूरज की तरफ मुंह करके खड़ा है अगर वह आंख खोले तो उसे प्रकाश के दर्शन होंगे। जो व्यक्ति उल्टी तरफ मुंह करके खड़ा है उसे अपनी छाया दिखाई देगी, अंधकार के दर्शन होंगे। तो दुख का अर्थ है कि हम परमात्मा से विमुख हैं, उस समय प्रकाश के दर्शन संभव नहीं, अपनी छाया नजर आएगी बस, अंधकार ही अंधकार होगा। और सुख का अर्थ है कि हम परमात्मा के सम्मुख हैं, उस समय परमात्मा से संबंध जुड़ सकता है। तो गलत समय तुमने अगर चुना ध्यान क लिए तुम बुरी तरह से चूकोगे।

संत कबीर साहब ने चेताया है– कहा है कि दुख में सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय, जो सुख में सुमिरन करे तो दुख काहे को होय। एक अन्य दोहे में उन्होंने कहा है कि सुख में सुमिरन न किया दुख में करता याद, कहे कबीर उस दास की कौन सुने फरियाद? सुख को परमात्मा की स्मृति से जोड़ो, वह सच्चिदानंद है। जब हमारा चित्त प्रफुल्लित हैं, आनंदित है तब हम उस परमानंद से जुड़ सकते हैं, जब हम दुखी हैं, उदास हैं, पीड़ा में हैं, निराश हैं तब सच्चिदानंद से जुड़ने का कोई उपाय नहीं है। तो अपने ध्यान का समय, सुरति का समय ऐसा चुनना जब तुम उर्जा, उत्साह, उमंग और आनंद से भरे हो फिर तुम्हारी प्रार्थनाएं उस तक पहुंचेंगी और उसके बरसते हुए आशीष तुम्हें महसूस होंगे।

आज का दूसरा प्रश्न है शिरसा से स्वामी प्रेम साक्षी जी का, इंसान को अपने विलपावर पर भरोसा करना चाहिए अथवा भाग्य पर?

मेरी दृष्टि में फिफ्टी–फिफ्टी परसेंट दोनों बातें। विलपावर यानि संकल्पशक्ति का अपना उपयोग है और समर्पण की भाग्यदशा, भाग्य पर भरोसा उसका अपना उपयोग है। दोनों बातें उपयोगी हैं। जब कर्म करने का समय हो तब अपने विलपावर पर भरोसा रखना और जब फल आए, परिणाम आए किसी चीज का तब किस्मत और भाग्य पर भरोसा

रखना। इसी बात को गौतमबुद्ध ने कहा है तथाताभाव। ठीक इसी बात को भगवान श्री कृष्ण ने कहा है निष्काम कर्म या फलाकांक्षा रहित कर्म। दोनों बातें उपयोगी हैं। कुछ लोग हैं अतिवादी, वे कहते हैं सबकुछ भगवान के भरोसे है। उसकी मर्जी के बिना पत्ता नहीं हिलता, फिर ऐसे लोग आलसी, काहिल और सुस्त हो जाते हैं।

हमारे देश में वही हुआ, हमारा आस्तिक देश आलसी हो गया। हमारी गरीबी, दरिद्रता, अशिक्षा, अवैज्ञानिकता इन सबका कारण ईश्वर पर भरोसा। तो हमारी आस्तिकता हमारे लिए बड़ी दुखदायी साबित हुई, हमारा दुर्भाग्य बन गई। हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे, हमने कुछ न किया। सब करने वाला परमात्मा है, कर्ता पुरुष वह है हमको क्या करना है। उसकी मर्जी के बिना पत्ता नहीं हिलता हम कैसे हिलेंगे। यह बात तो बड़ी गलत हो गई। इसका ठीक विपरीत पश्चिम के देशों में हुआ, उन्होंने अपने कर्म पर बहुत ज्यादा भरोसा किया और उसका दुष्परिणाम है वे बड़ी चिंता, फिक्र, तनाव से भर गए।

पश्चिम में मानसिक रोग बढ़ते जाते हैं, आत्महत्या की दर बढ़ती जाती है, पागलपन बढ़ता चला जाता है। बहुत ज्यादा तनाव को मस्तिष्क बर्दाश्त नहीं कर पाता। क्या एक बीच का मार्ग नहीं हो सकता, वही मैं आपको सुझाता हूं। और देखो ओशो ने तुम्हें कितना प्यारा नाम दिया है, स्वामी प्रेम साक्षी, इसमें दो विपरीत बातों का समन्वय उन्होंने कर दिया, प्रेम भक्ति का मार्ग है, साक्षी योग का मार्ग है। एक संकल्प का, एक समर्पण का मार्ग है। दोनों का समन्वय सर्वश्रेष्ठ है। जहां भी दो अतियां हों हमेशा याद रखना, अति हमेशा गलत होती है। संस्कृत में एक कहावत है, अति सर्वत्र वर्जयेत, आलवेज एवहइड द एक्सट्रीम। गौतमबुद्ध का मार्ग मध्यम मार्ग कहलाता है। बीच की डगर पकड़ना। जिंदगी बस ऐसी है, इस तरफ कुंआ उस तरफ खाई और बीच में पतली सी डगर है। उस पर बड़े सम्हल कर चलना होगा। कभी सरकस में नट को रस्सी पर चलते देखा, बस ऐसा ही संतुलन साधना होगा।

कल कोई मुझसे पूछ रहा था कि संत की क्या परिभाषा है? मैंने कहा, संत वह है जो संतुलन में है, ठीक बीच में, मध्य में टिका हुआ है। तुम पूछ रहे हो कि विलपावर पर भरोसा करूं कि भाग्य पर? आइदर आर, यह अथवा वह, नहीं, यह अतिवादी दृष्टिकोण हो गया। मैं तुम्हें बीच की बात बताना चाहता हूं। जब कुछ करने का समय आए उस समय अपने संकल्प और श्रम पर भरोसा करना और जब उस कर्म के परिणाम आएं, फल आएं तब किस्मत और भाग्य पर भरोसा करना। सुनो किसी गीतकार ने क्या लिखा है–

हमें ऐ दिल कहीं ले चल, बड़ा तेरा करम होगा,
हमारे दम से है हर गम, न होंगे हम न गम होगा।
खबर क्या थी बहार आकर, हमारे आशियाने पर,
नई बिजली गिराएगी, नया हम पर सितम होगा।
तमन्नाओं से न बदली है न बदलेगी कभी किस्मत,
लिखा है जो मुकद्दर में वहीं तेरा करम होगा।
हमारे दम से है हर गम, न होंगे हम न गम होगा,
हमें ऐ दिल कहीं ले चल बड़ा तेरा करम होगा।

नहीं, मैं इस गीतकार के बात से राजी नहीं हूं। यह कह रहा है कि तमन्नाओं से न बदली

है न बदलेगी कभी किस्मत, लिखा है जो मुकद्दर में वही तेरा करम होगा। यह तो बड़ी निराशावादी दृष्टिकोण हो गया। निगेटिव दृष्टिकोण नहीं, मैं इससे राजी नहीं हूं। तमन्नाओं से किस्मत बदली जा सकती है। हां, अकेली तमन्नाओं से नहीं, इच्छा के साथ श्रम हो, साधना हो। अकेला संकल्प ही नहीं, उसके साथ शक्ति भी जुड़े तब निश्चितरूप से किस्मत बदली जा सकती है। लेकिन फिर भी मैं कह रहा हूं कभी आशियाने पर बिजली गिर भी सकती है।

आशियाना तुम जरूर बनाना, फिर-फिर बनाना, माना कि कभी-कभार बिजली गिर जाती है इसलिए मैं कह रहा हूं कि भाग्य और किस्मत की बात से उसको भी सम्मिलित करके रखना अपने जीवन में। कभी-कभी बिजलियां गिरेंगी, इसका यह मतलब नहीं है कि आशियाना बनाना बंद कर देंगे। कभी-कभी भूकम्प आता है तो इसका क्या मतलब, क्या सारी दुनिया के लोग घर बनाना बंद कर दें? बच्चे पैदा होते हैं, बहुत बच्चे मर जाते हैं इसका क्या अर्थ? बच्चों को पैदा करना बंद कर दें? कर्म करते चलना और जब परिणाम आए तब किस्मत और भाग्य पर भरोसा रखना। जो हो उसको स्वीकार लेना, तब तुम्हारे जीवन में संतुलन होगा और तुम संत बन सकोगे।

अगला प्रश्न है, नागपूर से स्वामी आनंद दिवाकर जी पूछते हैं, आध्यात्मिक जगत में गुरु का इतना महत्व क्यों माना जाता है?

गुरु का महत्व इसलिए है कि भीतर की अंतर्यात्रा पर कोई मार्गदर्शक नहीं है। वहां कोई मील के पत्थर नहीं हैं, भीतर का कोई नक्शा नहीं है। सद्गुरु बाहर से कुछ इशारे कर सकता है, कुछ थोड़ी सी रूपरेखा नक्शे की बता सकता है, कुछ माइल स्टोन्स की तरफ संकेत कर सकता है। हैं तो नहीं वास्तव में कोई माइलस्टोन्स फिर भी थोड़ा-थोड़ा इशारा कर सकता है जो तुम्हारे लिए मददगार होगा। जाना तो तुम्हें बिल्कुल अकेले है, कोई तुम्हारे साथ नहीं जा सकता। लेकिन जो लोग अपने भीतर डूब चुके हैं उनकी बात सुनकर, उनसे कुछ समझकर तुम्हें अपने भीतर कुछ जाने में कुछ मदद मिलेगी। तो गुरु तुम्हारा हाथ पकड़कर तुम्हें भीतर नहीं ले जाएगा तुम्हारे किन्तु वह अपने जीवन के अनुभव तुमसे शेयर करेगा और वे तुम्हारे जीवन के बहुत काम आएंगे। अब उदाहरण के लिए अभी हमने कहा संकल्प और समर्पण, विलपावर और किस्मत दोनों पर एक साथ भरोसा। मैं अपने जीवन के अनुभव से कह रहा हूं। शास्त्रों में क्या लिखा है उसकी फिक्र छोड़ो, मेरी जिंदगी की किताब में यह लिखा है वही मैं तुम्हें बता रहा हूं। वह तुम्हारे लिए काम आ सकेगा।

तुम पूछ रहे हो कि गुरु का इतना महत्व क्यों है? इसीलिए महत्व है, परमात्मा का ज्ञान गुरु ही करा सकता है। कबीर साहब ने कहा है, बलिहारी गुरु आपकी जिन गोविंद दियो बताय। अपने भीतर स्वयं जाना बड़ा मुश्किल है। कभी हम गए नहीं, हमारी चेतना सदा-सदा से, हजारों-हजारों जन्मों से बहिर्मुखी रही है। भीतर बिल्कुल अंधकार है, वहां कुछ भी न सूझेगा। बहुत लोग जो बिना गुरु के ध्यान करने की कोशिश करते हैं, आध्यात्मिक साधना करते हैं उसका अंतिम परिणाम यह होता है कि कुछ सालों के बाद वे नास्तिक हो जाते हैं। भीतर मिलता कुछ भी नहीं, थोड़े दिनों बाद वे साधना करना बंद कर देते हैं और उनके मन में नास्तिकता आ जाती है कि शायद भीतर कुछ है ही नहीं। गुरु का बहुत महत्व है आध्यात्मिक

साधना में। आज तक जितने भी लोग अंतर्तम के मंदिर तक पहुंचे हैं, 99.9 प्रतिशत लोग गुरु के सहयोग से ही पहुंचे हैं। और जो रेयर, विरले लोग बिना गुरु के पहुंच गए याद रखना, उनके लिए पूरी जिंदगी ही गुरु थी। हो सकता है एक व्यक्ति विशेष से उन्होंने न सीखा हो लेकिन उनके भीतर सीखने की प्रवृत्ति है और वे जीवन की हर घटना से सीखते थे। उन्होंने मृत्यु से सीखा, उन्होंने जीवन से सीखा, उन्होंने विभिन्न घटनाओं से सीखा। उदाहरण के लिए हमारे परमगुरु ओशो स्वयं, उनका कोई गुरु न था, इसका यह मतलब नहीं समझना कि वह शिष्य न थे। वे सारे जीवन के ही शिष्य थे, पूरे जीवन से उन्होंने सीख लिया। जीसस का एक वचन है, सर्मंस आन द स्टोन्स, पत्थरों पर लिखे उपदेश जिस व्यक्ति को पढ़ना आता है उसे तो कण-कण में उपदेश और शिक्षाएं ही नजर आती हैं। तुम सीखने वाले बनो। और गुरु का महत्व बहुत है, हजार में से 999वे लोग गुरु के माध्यम से ही पहुंच सकेंगे।

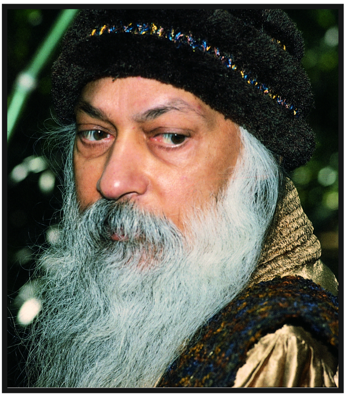

अध्याय–45

नियम क्यों नहीं

आज का पहला प्रश्न है, अतीत के ज्ञानियों ने अपने शिष्यों को आचरण के नियम दिए, ओशो ने यह परंपरा क्यों तोड़ दी? पूछा है स्वामी अंतर सर्वेश गोंदिया से।

अंतर सर्वेश, जैसे विज्ञान प्रगतिशील है वैसे ही अध्यात्म भी उन्नति करता है। पीछे जो ज्ञानी हुए निश्चितरूप से उन लोगों ने नियम दिए थे अपने शिष्यों को, कैसा आचरण और व्यवहार होना चाहिए, कैसे उठना, बैठना, क्या खाना–पीना चाहिए सारी बातें विस्तार से समझाई थीं। बौद्ध शास्त्रों में तेत्तीस हजार नियमों का उल्लेख है जो एक भिक्षु को पालन करना पड़ता था। तेत्तीस हजार याद रखने की तो छोड़ो, पढ़ना भी मुश्किल है। बहुत विस्तार से एक–एक चीज बताई गई थी कि क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए लेकिन वह प्रयोग असफल हुआ। तो ओशो ने अपने पिछले ज्ञानियों से सबक ग्रहण किया। विस्तार से नियम देने की कोई जरूरत नहीं, सिर्फ एक ही बात समझाओ वह है जागरण, उस जागरण में से जो आचरण उत्पन्न होगा वह शुभ होगा, सुंदर होगा।

एक ही नियम ओशो देते हैं वह है जागरण, होश, जागरूकता, ध्यान जो भी उसे तुम नाम दे दो। अगर तुम गैरध्यानपूर्ण हो तो जो कुछ भी करोगे वही गलत होगा और अगर तुम ध्यानपूर्ण हो सबकुछ तुम्हारे जीवन में सही होगा। इसलिए विस्तार से कहने की कोई जरूरत नहीं, वह प्रयोग हो चुका, अतीत के ज्ञानियों ने अपने शिष्यों को बहुत से नियम दिए लेकिन वे

काम नहीं आए। कुछ लोग बहुत मूढ़ थे उन्हें नियम ही देने पड़ते थे। मनुष्यता का भी विकास हुआ है, आज का मनुष्य ढाई हजार वर्ष पहले से ज्यादा प्रतिभाशाली है। तो महावीर और बुद्ध जिन लोगों से बात कर रहे थे ओशो उनसे बेहतर लोगों से बात कर रहे हैं, आगे आने वाले भविष्य में और भी ज्यादा प्रतिभाशाली लोग होंगे। छोटे बच्चे को डराना-धमकाना पड़ता है, प्रलोभन देना पड़ता है, जब कोई वयस्क हो जाता है तो समझदार को इशारा ही काफी है, बहुत बातें नहीं कहनी पड़ती। तो मनुष्य जाति प्रौढ़ हुई है एक कारण यह और दूसरा कारण ज्ञानी भी अपने पिछले जीवन के ज्ञानियों से शिक्षा ग्रहण करते हैं।

एक छोटा सा उदाहरण समझाऊं, बुद्ध ने कहा था अपने शिष्यों को कि जो भी तुम्हें भींख में भोजन मिले उसको स्वीकार कर लेना। बुद्ध का जोर था स्वीकारभाव पर, तथाताभाव पर ताकि भिक्षु ऐसा न करें कि अच्छा-अच्छा भोजन ले लें, अमीरों के यहां बस भिक्षा मांगें, गरीब आदमी भोजन दे तो उसे फेंक दें, उससे भोजन व्यर्थ जाएगा, नष्ट होगा, नुकसान होगा इसलिए उन्होंने कहा था कि सबकुछ प्रेमपूर्वक स्वीकार कर लेना जो भी तुम्हारे कटोरे में आ जाए उसे इंकार मत करना। बुद्ध का जोर था शाकाहार पर। एक दिन संयोग की बात ऐसा हुआ कि एक भिक्षु भींख मांगने जा रहा था वहां ऊपर से उड़ती हुई चील मांस का टुकड़ा लेकर जा रही थी, संयोग की बात चील के मुंह से मांस का टुकड़ा छूट गया और इस भिक्षु के कटोरे में आकर गिरा। अब तो बड़ी मुश्किल हो गई, बुद्ध तो मांसाहार के खिलाफ थे, हिंसा के खिलाफ थे, वे तो करुणा के मूर्ति थे स्वयं, अब यह भिक्षु क्या करे।

अगर वह मांस खाता है तो नियम टूटता है शाकाहार का और अगर इस मांस को फेंक देता है तो वह नियम भी टूट जाता है कि जो भी मिले उसे स्वीकार कर लेना, इस दुविधा को लेकर वह गौतमबुद्ध के पास आया और उसने कहा कि अब बताइए कि मैं क्या करूं? बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं, इस तरफ कुंआ उस तरफ खाई। कहते हैं बुद्ध ने भी दो मिनट आंख बंद करके सोचा, वरना बुद्ध हमेशा तुरंत उत्तर देते थे लेकिन इस मामले में उन्होंने भी सोचा कि क्या किया जाए। फिर उन्हें ख्याल आया कि यह तो संयोग की बात है ऐसा कोई रोज-रोज तो होगा नहीं कि चील मांस का टुकड़ा लेकर जाएंगी और भिक्षु के कटोर में गिराएंगी, हो सकता है लाखों-लाखों साल में कभी दुबारा ऐसा न हो तो उन्होंने कहा कि तुम नियम का पालन करो, जो भी तुम्हारे कटोरे में आ जाए उसे स्वीकार करो।

अब देखना कितनी छोटी सी घटना थी, बुद्ध सोच रहे थे कि इसका कभी रिपीटीशन होगा ही नहीं लेकिन बौद्धों ने रास्ता खोज लिया। बुद्ध ने कहा था कि यह तो मरे हुए जानवर का मांस है, तुमने तो हिंसा नहीं की, तुमने किसी की हत्या की नहीं अपने भोजन के लिए, यह तो मरे हुए जानवर का मांस है इसको खाने में कोई हर्ज नहीं, इसमें हिंसा नहीं है। बस बौद्धों ने रास्ता निकाल लिया कि मरे हुए जानवरों का मांस खाया जा सकता है। चीन में, जापान में, थाईलैंड में, वर्मा में, श्रीलंका में सारे बौद्ध देशों में सब मांसाहारी हो गए। और तर्क उनके पास क्या है, हम तो मरे हुए जानवर का मांस खाते हैं। हद हो गई, जैसे भारत में हलवाई की दुकान में लिखा रहता है कि शुद्ध घी से बनी मिठाई मिलने का एकमात्र स्थान ठीक वैसे ही बौद्ध देशों

में होटलों में लिखा रहता है कि यहां केवल मरे हुए जानवरों का मांस बेचा जाता है। अपने आप मरे हुए जानवर का मांस। आश्चर्य! इतने जानवर आकर उस होटल के सामने मरते हैं, अपने आप मर जाते हैं और केवल बौद्ध देशों में ही जानवर मरते हैं और दूसरे दूसरे देशों में कहीं नहीं मरते हैं। आदमी बड़ा बेईमान है, अगर उसको आचरण के नियम दो तो वह नियम में से कुछ न कुछ छिद्र निकाल लेगा, छिद्रान्वेशी वकील होते हैं न, उनका काम ही यह है कि कानून में से कहां से छेद खोजें, कहां से रास्ता निकालें। आदमी का मन बड़ा चालाक है इसलिए नियम देने से कोई फायदा नहीं। पुराने जमाने में देने पड़े क्योंकि लोग बहुत मूढ़ थे। सुनो ऐज धम्मो सनंतनों नामक प्रवचनमाला में गौतमबुद्ध की इस आचरण वाली बात को समझाते हुए ओशो ने क्या कहा–

'बुद्ध ने नियम दिए, नियम देने पड़ते हैं क्योंकि तुम्हारे पास होश नहीं है। अगर होश हो तो नियम व्यर्थ हो जाते हैं। और बुद्ध ने भी सारे नियमों के पीछे होश पर आग्रह किया, आनंद पूछता है कि कोई स्त्री दिखाई पड़ जाए तो क्या करें? बुद्ध ने कहा कि नीचे देखना, उधर देखना ही मत। फिर आनंद ने कहा कि और अगर ऐसी स्थिति आ जाए कि देखना ही पड़े तो क्या करें? तो बुद्ध ने कहा कि देखना मगर छूना मत। फिर आनंद ने कहा कि अगर ऐसी घड़ी आ जाए कि छूना ही पड़े तो क्या करें? तो बुद्ध ने कहा होश रखना। तो आखिर में तो होश ही है। देखना मत, छूना मत ऊपर–ऊपर हैं, अंतिम घड़ी में तो होश ही है।

आनंद ने ठीक किया कि वह पूछता ही गया। बुद्ध का असली अनुशासन ही क्या है फिर? देखना नहीं तो अंधे तो नहीं देख सकते, अंधे परमज्ञान को उपलब्ध हो जाएंगे। छूना मत, हाथ कटवा डालो, अब लूले लंगड़े परमज्ञान को उपलब्ध हो जाएंगे। नहीं, अंतिम सूत्र तो बुद्ध ने होश को ही दिया। लेकिन बुद्ध की बात साफ है, बुद्ध ने जो बात कही उन्होंने सब कोटियों के लिए कह दी। जो अत्यंत जड़बुद्धि हैं उनसे कहा कि आंख झुका लेना, यह जड़बुद्धियों के लिए हुआ। जो अत्यंत जडत्रबुद्धि वाले नहीं हैं उनसे कहा कि देख लेना मगर छूना मत लेकिन हैं यह भी जड़बुद्धि। अंतिम सूत्र असली सूत्र है क्योंकि उसके पार फिर कुछ नहीं, वह आखिरी अनुशासन है, स्मरण रखना, होश रखना।

मैंने दो सूत्र छोड़ दिए क्योंकि दो–ढाई हजार साल का अनुभव कहता है कि उनसे कुछ फलित न हुआ, मैं बुद्ध से ढाई हजार वर्ष बाद हूं तो ढाई हजार साल का कुछ अनुभव भी साथ है। ढाई हजार साल में जो घटा वह साफ है क्या हुआ। जो ऊपर के नियम थे वह तो टूट गए और जो ऊपर के नियमों में उलझे वे व्यर्थ ही परेशान हुए, नष्ट हो गए, जिन्होंने आखिरी सूत्र पकड़ा वही बचे। अंततः तो होश ही काम आएगा, बाकी कोई नियम काम न आएंगे इसलिए मैंने सारी विस्तार की बातें छोड़ दी क्योंकि मैं जानता ही हूं कि अगर तुम्हें तोड़ना है तो तुम तरकीब निकाल लोगे तो तोड़ने का भी तुमको कष्ट क्यों देना और तोड़ने से जो अपराध का भाव पैदा होता है वह क्यों पैदा करना। मैं तुम्हें कोई नियम ही नहीं देता ताकि तुम तोड़ ही न सको। मैं तुम्हें सिर्फ होश देता हूं, सम्हाल सको तो ठीक, न सम्हाल सको तो भी ठीक। लेकिन बेईमानी पैदा न होगी, पाखण्ड पैदा न होगा।'

अगला प्रश्न, ध्यान ठीक से लग रहा है या नहीं यह कैसे पता चलेगा? पूछा है स्वामी पूर्ण आनंद बुटवल नेपाल से।

अगर तुम किसी नदी की तरफ जा रहे हो जल सरोवर की तरफ तो हवाओं में शीतलता बढ़ने लगेगी, ठंडक का एहसास होने लगेगा कि जानना कि नदी निकट ही है, तालाब कहीं आसपास ही है। अगर तुम किसी बगीचे की दिशा में जा रहे हो तो जैसे–जैसे बगीचे के नजदीक पहुंचते जाओगे हवाओं में सुगंध को व्याप्त पाओगे, वह सुगंध पर्याप्त प्रमाण होगी कि तुम्हारी दिशा बिल्कुल ठीक है, बस बगीचे की तरफ ही जा रहे हो। ठीक ऐसे ही जो व्यक्ति ध्यान में डूबने लगता है समाधि की तरफ यात्रा करने लगता है, प्रभु की मंदिर के दिशा में जो चल रहा है उसके जीवन में शांति आने लगती है, तनाव मुक्ति घटित होने लगती है, एक आंतरिक स्वतंत्रता का एहसास होता है, उसके जीवन में प्रेम, कोमलता, दया और करुणा उत्पन्न होती है, उसके भीतर अहिंसाभाव जन्मता है, उसके भीतर शटरिपु विदा हो जाते हैं, निर्अहंकारिता फलित होती है, उसकी संवेदनशीलता, जागरूकता में वृद्धि होती है यह प्रमाण हैं। संक्षेप में समझ लो, शांति, प्रेम, आनंद, प्रफुल्लता अगर तुम्हारे भीतर यह क्रमशः बढ़ते जा रहे हैं तो आश्वस्त हुआ जा सकता है कि तुम ठीक दिशा में जा रहे हो, ठीक मंजिल की तरफ तुम्हारे कदम उठ रहे हैं। किसी गीतकार ने लिखा है–

कितने सुहाने यह दिन आ गए हैं पतझड़ के जाने के दिन आ गए हैं।

जब ध्यान की दिशा में तुम चले फूल खिलने के दिन आ रहे हैं, बसंत के दिन आने लगे।

कितने सुहाने यह दिन आ गए हैं पतझड़ के जाने के दिन आ गए हैं,
निकलने लगीं सूखी डाली पे कलियां, ऋतुराज छाने के दिन आ गए हैं।
बगिया में फिर ने अंगड़ाइयां ली, भौरों के गाने के दिन आ गए हैं,
लंबा चला था उदासी का आलम अब हंसने हंसाने के दिन आ गए हैं।
बहुत लड़ चुकी आंधी से अपनी नैया, किनारे लगाने के दिन आ गए हैं।

बस ऐसा ही एहसास होता है जब तुम परमात्मा के नजदीक पहुंचते हो। कितने सुहाने यह दिन आ गए हैं।

अगला सवाल, प्रभु के दया से शांति कब मिलेगी? विजय उपरे हैदराबाद से।

प्रभु के दया से नहीं मिलेगी, तुम्हें अपनी साधना से मिलेगी। अशांति के बीज तुमने बोए हैं, अशांति के कारण तुमने पैदा किए हैं ठीक उसके विपरीत तुम्हें करना होगा। तुमने कांटे बोए थे, तुम्हीं को फूल के बीज भी बोने होंगे। तुमने ही कड़वी नीम के बीज बोए थे अब वे फल आ गए तो तुम कह रहे हो कि प्रभु की दया से यह फल मीठे कब होंगे, यह फल मीठे कभी नहीं होंगे। तुम्हें दूसरे बीज बोने होंगे आम के तब मीठे फल आएंगे। इस कड़वे फल के वृक्ष को तुम्हें उखाड़ना होगा। बुद्ध और महावीर ने इसी लिए ईश्वर का नाम ही नहीं लिया लोग समझे कि नास्तिक हैं। नहीं, बुद्ध और महावीर नास्तिक नहीं हैं, उनसे बड़ा आस्तिक कोई हुआ ही नहीं। लेकिन वे भगवान का नाम नहीं लेते क्योंकि भगवान का नाम लेकर तुम इस प्रकार के सवाल पूछते हो कि वह हम पर दयालु क्यों नहीं हैं, कि उसकी कृपा कब होगी इसलिए बुद्ध और महावीर ने उसकी बात ही छोड़ दी। सीधे–सीधे तुम्हारी बात की कि अगर तुम अशांत

हो, तनावग्रस्त हो, परेशान हो तो इन परेशानियों का कारण खोजो। जैसे शारीरिक बीमारी कुछ होती है, समझो तुम्हें बुखार चढ़ा है तो डॉक्टर कारण खोजता है, जांच करता है, जांच करके पता लगाता है कि टीबी की बीमारी है, कि मलेरिया है, कि टायफाइड है, कि वायरल इन्फेक्शन है क्या है और जो बीमारी निकलती है उसके अनुसार ईलाज करता है। ठीक इसी प्रकार संत तुम्हारा ईलाज करते हैं, तुम्हें औषधि बताते हैं वह औषधि है ध्यान की, समाधि की, भक्ति की और तुम्हारी बीमारी है मूर्छा की। उस बीमारी को मिटाना होगा उसी से अशांति पैदा हो रही है। इंतजार न करो कि कभी प्रभु की दया होगी तो शांति मिल जाएगी।

मैंने सुना है कि नसरुद्दीन के आफिस में जो बॉस था उनकी पत्नी का नाम था श्रीमती शांति और उनकी सेक्रेटरी का नाम था मिस दया। एक बार संयोग की बात एक आदमी बाहर से आया आफीसर से मिलने उसको पता नहीं था कि मामला क्या है, उसने कुछ ऐसी बात कह दी कि आफीसर एकदम से बिगड़ गया, बहुत नाराज हो गया। उस अंजान आदमी ने कहा था कि प्रभु करे आपका काम शांति से ही चलता रहे, हमें तो बस आपकी दया चाहिए।

विजय ऊपरे, मैं तुमसे कहना चाहता हूं न उसकी कृपा से दया मिलेगी और न शांति मिलेगी, तुम्हें अपने कारण खोजने होंगे। तुम क्यों अशांत हो? गौतमबुद्ध का आष्टांगिक मार्ग आनंद प्रज्ञा में हम समझाते हैं एक-एक बिन्दु को आओ और यह तीन दिन का कार्यक्रम अटेंड करो आनंद प्रज्ञा। बुद्ध के आष्टांगिक मार्ग को समझो, शायद तुम्हारी नकारात्मक दृष्टि हो, शायद तुम संकल्पहीन हो, शायद तुम्हारे भीतर स्वीकारभाव नहीं है या तुम अहंकार के भूत से परेशान हो या तुम्हारी वाणी सम्यक नहीं, मधुर नहीं या तुम्हें ठीक संबंधित होने की कला नहीं आती या सम्यक कर्म की तुम्हें पहचान नहीं है। बुद्ध कहते हैं मुख्यरूप से आठ कारण हैं यह जो मैंने अभी गिनाए और इन सबकी मुख्य जड़ है वह है ध्यानपूर्ण न होना, मूर्छित होना। फिर औषधि भी समझना आसान होगा, औषधि है जागृति, बुद्ध उसे कहते हैं सम्मासती, सम्यक स्मृति। प्रत्येक काम को होशपूर्वक करो, न केवल कार्य को विचार को भी। फिर विचार से और भीतर चलो, सूक्ष्म भावनाएं हैं उनके प्रति जागरूक हो जाओ और फिर एक अद्भुत घटना घटती है जो व्यक्ति अपने कर्म, भाव और विचार के प्रति सजग हो गया एक दिन ऐसा आता है कि वह निर्विचार, भावातीत, निष्क्रिय जागरूकता का उपलब्ध हो जाता है।

बस वहां से आत्मरूपांतरण की घटना घटती है फिर शांति ही शांति है। तो किसी प्रभु की दया का इंतजार न करो, अपनी अशांति के कारण को ढूंढना होगा और उन कारणों का निवारण करना होगा। बुद्ध कहते हैं चार आर्यसत्य, पहला जीवन में दुख हैं, दूसरा दुख के कारण हैं, तीसरा इनसे निवारण के उपाय हैं और चौथा दुख मुक्ति की परमानंद की एक अवस्था है। बुद्ध जैसा वैज्ञानिक व्यक्ति नहीं हुआ। किसी हाइपोथिसिस को, ईश्वर की परिकल्पना को बीच में नहीं लाते, गौतमबुद्ध कोई आत्मविश्वास नहीं सिखाते, कुछ भी मानने की जरूरत नहीं सीधा-सीधा देखो। जीवन में दुख और अशांति है इससे कौन इंकार करेगा। तो फिर दूसरी बात भी समझनी आसान है कि जरूर इसका कोई कारण होगा, हर चीज का कारण होता है। फिर तीसरी बात समझनी आसान है, अगर कारण है तो निवारण का उपाय हो सकता है। और अगर निवारण हो जाएगा तो हम दुखमुक्ति की अवस्था में पहुंच जाएंगे। मैं उस दुखमुक्ति की अवस्था के लिए तुम्हें आमंत्रित करता हूं, आकर आनंद प्रज्ञा में तीन दिन भाग लो।

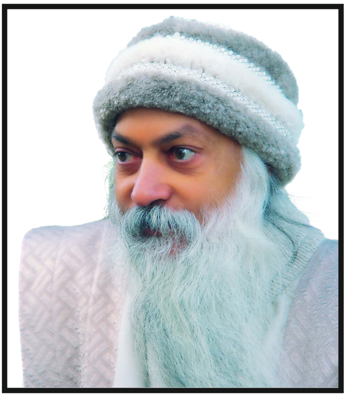

अध्याय–46

भजन फूल, सुरति इत्र

आज का पहला सवाल पूछा है श्री आर. प्रसाद जी ने जो नई दिल्ली से हैं, संत कबीर साहब कहते हैं कि साधो सहज समाधि भली गुरु प्रताप जा दिन से जागी दिन–दिन अधिक चली। हे गुरुदेव मैं साल भर से टेलीविजन पर आपके प्रवचन निरंतर सुनता हूं और आस लगाए बैठा हूं कि किसी न किसी दिन आपके प्रताप से मुझे भी सहज समाधि मिल जाएगी। वह सौभाग्य का दिन कब आएगा?

मुझे नहीं लगता कि तुम्हारी जिंदगी में वह सौभाग्य का दिन आएगा। अच्छा हुआ कबीर साहब के जमाने में टेलीविजन नहीं थे। टेलीविजन पर मैं जो कह रहा हूं, जो समझा रहा हूं तुम कुछ सुनते भी हो कि नहीं, अगर तुम नासमझ हो तो भाग्य को भी दुर्भाग्य में बदल लोगे। तुमसे कहा किसने कि सालों–साल टेलीविजन पर गुरुओं के प्रवचन सुनो। सारे प्रवचन एक बात की तरफ इशारा कर रहे हैं कि ध्यान में डूबो, मौन और शांति में डूबो। तुम अपना टीवी ही हमेशा आन किए रहोगे तो वह मौन का स्वर तुम्हें कभी भी सुनाई न देगा और उसी के लिए सारे प्रवचन थे। थोड़ा चौंको, जागो, मेरे प्रताप से तुम्हें समाधि नहीं मिलेगी, तुम्हें स्वयं अपने भीतर अंतर्तम में डूबना होगा, अंतर्यात्रा करनी होगी। तुम्हारे भीतर अनहद का नाद गूंज रहा है। कबीर साहब का जो वचन तुमने कोट किया उसके आगे वे कहते हैं–

शबद निरंतर में मन लागा मलिन वासना त्यागी,
ऊठत बैठत कबहूं न छूटे ऐसी तारी लागी,
साधो सहज समाधि भली।

बताते हैं कैसी सहज समाधि लगी, शबद निरंतर में मन लागा, एक ऐसा शब्द है जो निरंतर गूंज रहा है, वह शब्द तभी सुनाई देता है जब हम बिल्कुल निःशब्द हो जाए, जब हमारा मन निर्विचार हो जाए उस शांति में सन्नाटे की गूंज सुनाई देती है। जब उसमें चित्त रम जाता है, शबद निरंतर में मन लागा मलिन वासना त्यागी, तब सारी मलिन वासनाएं हमें त्यागकर चली जाती हैं और तब वह अद्भुत घटना घटती है। जब कबीर साहब कहते हैं गुरु प्रताप जा दिन से जागी, ऐसा नहीं सोचना कि कबीर साहब ने साधना नहीं की थी, बस गुरु की कृपा से सहज समाधि मिल गई। सहज समाधि साधने के लिए बहुत असहज साधनाएं करनी पड़ती हैं।

मुझे याद आता है कि ओशो ने कबीर साहब के इस वचन को समझाते हुए कहा और यही बात संत सरहपा तिलोपा के वचनों को समझाते हुए सहजयोग नामक प्रवचनमाला में कहा कि याद रखना, सहजता को पाने के लिए बहुत असहज मार्गों से होकर गुजरना पड़ता है, सहज समाधि मुफ्त में हासिल नहीं होती। हां, जब हासिल हो जाती है तब लगता है कि हमारे किए कुछ भी न हुआ, सब गुरु की महिमा से हुआ, प्रभु की कृपा स्वरूप हुआ। लेकिन संतों की वाणी सुनकर हम भ्रम में पड़ सकते हैं कि इनको गुरु की कृपा से मिला, इन्होंने कुछ किया ही नहीं। जरा गौर से समझना मेरी बात को, जरा सी गलतफहमी होगी और सारी बात चूक जाओगे। जब कोई संत कहता है कि उसने गुरु कृपा से, उसने परमात्मा के प्रसाद से समाधि को पाया तो उसे ऐसा समझना कि उसने अपना घड़ा सीधा रखा था, घड़े के छेद बंद कर दिए थे, घड़े को साफ-सुथरा कर दिया था, आकाश में बादल आए, वर्षा हुई और उसका घड़ा भर गया। वह कह रहा है कि बादलों की कृपा से मेरा घड़ा भरा, मैंने तो कुछ भी न किया। बादलों का बरसना प्रसाद स्वरूप है, हमारे घड़ा सीधा करने से बादल नहीं आते, घड़े के छेद बंद करने से बादल नहीं बरसते इसलिए हमारे किए हुए का परिणामस्वरूप वर्षा नहीं होती।

तो संत जब कहते हैं कि सबकुछ गुरु के प्रताप से हुआ इसमें उनकी निर्अहंकारिता प्रदर्शित हो रही है। लेकिन इतनी कृपा तो तुम्हें करनी होगी कि घड़े को सीधा करना होगा। बादल आकर तुम्हारे घड़े को सीधा नहीं करेंगे। अगर तुम्हारा घड़ छिद्रयुक्त है तो हवाएं आकर उसके छेदों को बंद नहीं करेंगी। और अगर तुम्हारा घड़ा कूड़े-कचरे से भरा हुआ है, जिस घड़े की मैं बात कर रहा हूं वह घड़ा तुम्हारी खोपड़ी है। अगर उसमें कूड़ा-कचरा भरा हुआ है तो फिर वर्षा भी होगी अमृत की तो यह जहर उसे बरबाद कर देगा। पूरा घड़ा भरा हो अमृत का और तुम कहो कि थोड़ा सा पोटेशियम सायनाइड इसमें मिला दें, बस वह थोड़ा सा पोटेशियम सायनाइड सब जहरीला कर देगा। जहर की एक खूबी है, उसकी बहुत कम मात्रा भी बहुत होती है। तो कबीर की बात सुनकर भ्रम में मत पड़ जाना, वह शबद निरंतर तुम्हारे भीतर गूंज रहा है। मेरे प्रवचन सुनकर या ओशो के प्रवचन सुनकर भ्रम में मत पड़ जाना और आस लगाए बैठे मत रह जाना कि अचानक तुम्हें सहज समाधि मिल जाएगी किसी दिन। अगर हमारी बात समझोगे तो जरूर मिल सकती है लेकिन उसके लिए तुम्हें साधना करनी होगी। हां, जब तुम सिद्ध हो जाओगे तब तुम कहोगे कि हमारी साधना से उपलब्धि नहीं हुई। जैसे तुम कहो कि हमारे घड़ा सीधा करने से बादल नहीं आए मानसून के यह बात बिल्कुल

ठीक है, इनमें कोई कार्यकारण का संबंध नहीं है। मेरे खिड़की खोलने से सूरज नहीं ऊगता लेकिन अगर मैं खिड़की नहीं खोलूंगा तो मेरे घर के अंदर अंधकार रहेगा चाहे बाहर सूरज ऊगा ही हो। तो खिड़की तो खोलनी होगी, उतना परिश्रम तो करना ही होगा। टीवी देखते–देखते वह खिड़की नहीं खुलेगी। तो कृपा करके टीवी बंद करो और अपने भीतर अंतर्दर्शन करो, यह दूरदर्शन बंद करो। जो निकट से निकटतम है उसका दर्शन करो, उस भीतर के शून्य में ओंकार की ध्वनि गूंज रही है। सुनो इस संबंध में ओशो की अमृतवाणी–

'भजन फूल जैसा, सुरति इत्र जैसी, फूल तो कुम्हला जाएंगे लेकिन इत्र बच सकता है। तो एक–एक भजन से इत्र को निचोड़ते जाना, शब्द को भूलते जाना, भाव को निचोड़ते जाना, कृत्य को भूलते जाना, समर्पण को पकड़ते जाना, एक दिन ऐसी घड़ी आ जाती है जब तुम्हारे हजार–हजार भजन का निचोड़ इकट्ठा हो जाता है, इत्र इकट्ठा हो गया, अब भजन करने की भी जरूरत न रही, अब तुम भजन हो गए। श्रुति का अर्थ है जब भक्त भजन हो गया। अब अभ्यास नहीं है। इसलिए कबीर ने कहा, उठूं, बैठूं, सो परिक्रमा। अब मंदिर नहीं जाता परिक्रमा करने, अब तो उठता हूं, बैठता हूं तो भी परमात्मा की परिक्रमा चलती रहती है। खाऊं पिऊं सो सेवा, अब मंदिर में जाकर भगवान को भोग नहीं लगाता, न मंदिर की घंटियां बजाता हूं, न पूजा का थाल सजाता हूं। खाऊं पिऊं सो सेवा, अब तो मैं जो भी खाता–पीता हूं वह भी उसी की सेवा है क्योंकि वही भीतर भी विराजमान है, वही बाहर भी विराजमान हैं।

इसको कबीर ने कहा है साधो सहज समाधि भली, मगर वह सहज समाधि ऐसे ही नहीं घट जाती। इस सहज के पीछे बड़ी प्रक्रियाएं हैं वर्षों की, जन्मों की प्रक्रियाएं हैं। इसलिए सहज का मतलब यह मत समझ लेना कि जो बिना कुछ किए घट जाती है। जब घटती है तो कुछ नहीं करना पड़ता लेकिन घटने के पहले बहुत कुछ करना पड़ता है। हजारों–हजारों भजनों के बाद कहीं एक बूंद इत्र, हजारों फिर से निचोड़कर कहीं एक बूंद इत्र निकलता है, इसलिए तो इत्र की कीमत होती है। सुरति है इत्र, तुम्हारे करने की बातें नहीं हैं, तुम तो भजन करो, तुम तो प्रार्थना करो, पूजा करो, दान करो, नाचो, उत्सव मनाओ। प्रभु को अनेक–अनेक अंगों में याद करो, अभी तो कृत्य होगा यह, अभी तो तुम्हारे करने से ही होगा, अभी तो तुम्हें बहुत पैडल मारने पड़ेंगे, अभी तो तुम्हें बहुत हाथ–पैर चलाने पड़ेंगे, अभी तुम तैराक नहीं हो। जब तुम बिल्कुल तैराक हो जाओगे तो हाथ–पैर भी नहीं हिलाने पड़ेंगे, फिर तो पानी की धार पर पड़े रहोगे, जरा भी न हिलोगे–डुलोगे, जल की धार ही तुम्हें सम्हाले रहेगी मगर वह तैरने की आखिरी अवस्था है।

सुरति आखिरी बात है नानक ने उसे अजपा जाप कहा है। जाप किया नहीं जाता, होता है। तुम्हारे भीतर होता है, तुम उसे सुनते हो। तुम करोगे तो जाप तुमसे नीचा होगा, तुम्हारा किया हुआ तुमसे बड़ा नहीं हो सकता। तुम जब सुनोगे, तुम्हारे भीतर जब गूंज उठेगी, तुम्हारे किए से नहीं, गूंज उठ रही है तुम तो द्रष्टा हो जाओगे, तुम देखोगे कि यह क्या हो रहा है, यह गूंज उठ रही है, यह तुम्हारे अंदर रोएं–रोएं में भरी है, यह किसी अज्ञात लोक से तुम्हारे अंदर प्रवेश कर रही है। तुम तो इसे डोल रहे हो, तुम पर यह वर्षा हो रही है। जिस दिन

तुम मात्र द्रष्टा रह जाओगे, कर्ता नहीं उस दिन सुरति। लेकिन सुरति की एक बूंद करोड़ों–करोड़ों भजनों का फल है। भजन से शुरू करो सुरति पर पहुंचना है, सुरति का स्मरण रखना, ऐसी स्थिति की अभीप्सा रखो जहां भजन करना न पड़े, हो। तुम उठो, तुम बैठो, तुम चलो, तुम आंख खोलो, आंख बंद करो तुम्हारा प्रत्येक कृत्य परमात्मा की स्मृति से भरा हो, तुम्हारा प्रत्येक कर्म उसकी अर्चना हो। वृक्ष को देखो तो वृक्ष में वह दिखाई दे, पहाड़ को देखो तो पहाड़ में वह छुपा मालूम पड़े, मनुष्यों को देखो तो मनुष्यों में उसी का दीया जलता हुआ मालूम पड़े, आंख बंद करो तो भीतर उसे पाओ, आंख खोलो तो बाहर उसे पाओ, जागो तो उसमें जागो, सोओ तो उसमें सोओ मगर यह बात आज तो न हो सकेगी, अभी तो न हो सकेगी। सुरति अनंत–अनंत भजनों का फल है।'

अगला सवाल है, क्या लौकिक प्रेम का असफल होना अनिवार्य है? प्रभु से प्रेम अर्थात भक्ति की क्या जरूरत है? पूछा है स्वामी शैलेन्द्र कुमार पटना से।

तुम जिसे लौकिक या सांसारिक प्रेम कहते हो असफलता उसकी अनिवार्य परिणति है। क्योंकि तुम स्वयं परिवर्तित हो रहे हो, दूसरा व्यक्ति तुम्हारा प्रेमपात्र परिवर्तित हो रहा है और तुमने किसी कारणों से उस व्यक्ति को प्रेम किया, वे कारण स्वयं ही परिवर्तनशील हैं। तुम किसी के सौंदर्य से प्रभावित होकर उसे प्रेम करने लगे लेकिन यह सौंदर्य तो ढल जाएगा, यह तो सदा रहने वाला नहीं। किसी व्यक्ति के अच्छे व्यवहार से तुम प्रभावित हो गए लेकिन व्यवहार तो परिवर्तनशील है। कल को वह व्यक्ति क्रोधित भी होगा, हमेशा मुस्कुराता ही न रहेगा। और अगर हमेशा मुस्कुराता रहे तो वह मुस्कुराहट भी नकली और प्लास्टिक की हो जाएगी, उसमें जीवंतता न होगी। जीवित व्यक्ति कभी प्रेमल होगा, कभी क्रोधित भी होगा, कभी मोहब्बत करेगा, कभी नफरत भी करेगा, उसकी जिंदगी में भी उतार–चढ़ाव होंगे। तुम जिस व्यक्ति के स्वास्थ्य को देखकर प्रभावित हुए थे वह भी बीमार पड़ेगा। वह व्यक्ति बदल रहा है, उसकी मनोदशा, भावदशा, शरीर सब बदल रहे हैं और न केवल वह बदल रहा है, तुम खुद बदल रहे हो।

तुम्हारी पसंद, नापसंदें बदल रही हैं। आज जो चीज तुम्हें पसंद है वह जरूरी नहीं कि कल भी पसंद हो, फिर कैसे तुम अपने प्रेम को स्थायी कर सकोगे। तुम्हें खुद पर ही भरोसा नहीं है और हो भी नहीं सकता क्योंकि तुम्हारी चित्तदशाएं तुम्हारे वश में नहीं इसलिए लौकिक प्रेम हमेशा असफल होगा। क्योंकि वह परकेन्द्रित है। भक्ति क्यों सफल होती है, क्योंकि भक्ति स्वकेन्द्रित है। भक्ति अकारण प्रेम है, दूसरे की वजह से नहीं, स्वयं के होने की दशा है। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि तुम अपने एकांत में जहां कोई न हो वहां भी प्रेमपूर्ण हो सको। छोटा सा प्रयोग करके कभी देखना, चुपचाप, शांत, मौन अकेले अपने कमरे में बैठे हुए, थोड़ा ख्याल करना कि क्या तुम्हारा होना प्रेमल हो सकता है। हो सकता है। इस प्रकार का प्रेम अगर तुम्हारे भीतर गहरी जड़ें जमाने लगे तो भक्ति का विकास होगा। भक्ति का अर्थ है अकेंद्रित प्रेम या कह लो स्वकेन्द्रित प्रेम या कह लो सर्वकेन्द्रित प्रेम। किसी खास व्यक्ति या स्थान के प्रति नहीं या कह लो सर्वात्मा के प्रति, परमात्मा के प्रति प्रेम। किसी गीतकार ने लिखा है–

दिल का मिलना मुश्किल है यूं आंख तो मिल ही जाती है,
अच्छी चीज मोहब्बत है पर रास किसी को आती है।
अपना लाख बनाओ लेकिन कौन किसी का बनता है,
बन जाती है जान पर उलटी रह–रह याद सताती है।
अच्छी चीज मोहब्बत है पर रास किसी को आती है।
किसके साथ बनी है इसकी, किसके साथ बनेगी इसकी,
दिल का चैन चुराकर भी जो रात की नींद उड़ाती है,
अच्छी चीज मोहब्बत है पर रास किसी को आती है।

हां, किसी–किसी को रास आती है लेकिन वह व्यक्ति कौन होते हैं, वही जो भक्त हो गए। जो आत्मकेन्द्रित प्रेम में, सर्वात्मा के प्रेम में, संपूर्ण अस्तित्व के प्रेम में जीने लगे उनका लौकिक प्रेम भी सफल हो जाता है। अद्भुत घटना घटती है, जो लोग लौकिक प्रेम के पीछे पड़े हैं उन्हें लौकिक प्रेम भी नहीं मिलता, अलौकिक प्रेम भी नहीं मिलता और जो प्रभु के प्रेम में, भक्ति में डूबते हैं उनका लौकिक प्रेम भी सफल हो जाता है। क्योंकि तब अपने प्रेमपात्र के भीतर ही परमात्मा का ही दर्शन होने लगता है।

जसवंत गोयल जी दिल्ली से पूछते हैं कि अच्छी–अच्छी बातें सिखाने वाले इतने सारे गुरु हैं फिर भी उनके चेले बिगड़ क्यों जाते हैं?

अक्सर तुम जिन्हें गुरु कहते हो वे गुरु ही नहीं हैं। बस अच्छी–अच्छी बातें सिखा रहे हैं जो किताबों में से पढ़ ली हैं और सुन ली हैं या किसी और से सीख ली, तोता रटंत दोहराने लगे। उनके जीवन व्यवहार को देखो तुम उसमें गुरु की महिमा न पाओगे।

मैंने सुना है एक स्कूल में दो बच्चे आपस में लड़ रहे थे और एक–दूसरे की पिटाई कर रहे थे। शिक्षक ने आकर कहा कि नालायकों, तुम्हें कितना समझाया कि दोस्तों से नहीं लड़ना चाहिए, न ही उन्हें मारना–पीटना चाहिए, क्यों अपने दोस्त को मार रहे हो? अगर तुमने इसको पीटना बंद नहीं किया तो मैं तुमको इतना पीटूंगा कि तुम्हारी हड्डियां टूट जाएंगी। प्रेम की शिक्षा देने चले और धमकी के द्वारा। इनके भीतर तो प्रेम नहीं है, ऊपर–ऊपर से नैतिक शिक्षा सिखा रहे हैं। इसलिए तुम जिन्हें गुरु कहते हो मैं उन सबको गुरु नहीं कहता, 99वे प्रतिशत तो उनमें से बिल्कुल ही झूठे हैं।

मैंने सुना है एक बच्चा रोते हुए घर आया, उसकी मां ने पूछा कि रो क्यों रहे हो बेटा? उसने कहा कि हमारे टीचर ने बहुत मारा है। मां ने कहा कि किस बात के लिए मारा है, तुमने क्या भूल की थी? बच्चे ने कहा कि मैंने कोई भूल नहीं की, मैं तो वर्गपहेली भर रहा था, शिक्षक ने ही दी थी वर्गपहेली भरने के लिए। उसकी मां ने कहा कि वर्गपहेली भरना तो अच्छी बात है, इससे बच्चों की बुद्धि तेज होती है, इस पर शिक्षक ने तुम्हें क्यों मारा? उस बच्चे ने बताया कि उसमें एक सवाल था कि सात अक्षर का ऐसा शब्द भरो, ऐसे जानवर का नाम जो जरा सी बात में आगबबूला हो जाता है, मैंने उसमें भर दिया टीचर। बहुत गुरु तो गुरु भी नहीं हैं और बहुत चेले, चेले भी नहीं हैं। कभी–कभी ऐसा होता है कि गुरु तो सचमुच में गुरु होता है किन्तु शिष्य नाममात्र को शिष्य होते हैं, वे सुनते ही नहीं कि क्या कहा जा रहा है। अभी देखा पहले प्रश्न, वे सज्जन कह रहे थे कि मैं सालों से टीवी पर आपके प्रवचन सुन रहा हूं,

ध्यान नहीं किया, ओंकार को नहीं सुना, मेरी बात को पकड़ा ही नहीं, वह आस लगाए बैठे हैं कि उनको घर बैठे टीवी देखते हुए सहज समाधि मिल जाएगी कबीर की तरह। अच्छा हुआ कबीर साहब के जमाने में टीवी नहीं था।

टीवी सौभाग्य बन सकता है अगर ध्यान का संदेश तुम तक पहुंच जाए, टीवी दुर्भाग्य बन सकता है सब कुछ तुम्हारे ऊपर निर्भर है गुरु की बात सुनना। तो पहला दोष तो उन लोगों पर लगाता हूं जो गुरु ही नहीं हैं, दूसरा वे शिष्य दोषी हैं जो सद्गुरु के निकट पहुंचकर भी गुरु की बात नहीं सुनते। तुम जिन्हें शिष्य कहते हो वे सब शिष्य भी नहीं हैं। एक तो सद्गुरु खोजना मुश्किल, दूसरा शिष्य खोजना मुश्किल। जब इन दोनों का मणिकांचन संयोग बन जाता है तब अद्भुत घटना घटती है, तब समाधि की ऊंचाइयां छुई जाती हैं। वरना लोग पहले से बिगड़े हुए हैं और बिगड़ते ही चले जाते हैं। वे सुनते ही नहीं, समझते ही नहीं, थोड़े जागरूक बनो और ध्यान में डूबने की कला सीखो।

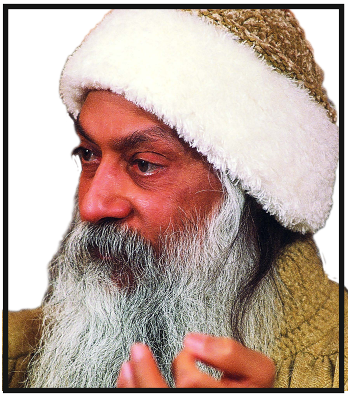

अध्याय–47

भोगवादी या त्यागवादी?

सद्गुरु के चरणों में नमन, आज का पहला प्रश्न पूछा है उदयफर के महेश प्रसाद शर्मा ने, ओशो की जीवन दृष्टि बुद्ध के पक्ष में है या चार्वाकवादी, मैं समझ नहीं पाता हूं। कभी–कभी वे घोर नास्तिक तो कभी महाआस्तिक जैसे प्रतीत होते हैं, ऐसा क्यों? वास्तव में वे भोगवादी हैं या त्यागवादी, कृपया समझाएं।

महेश प्रसाद, ओशो का कोई वाद नहीं। न वे भोगवादी हैं, न वे त्यागवादी हैं, किसी वाद को पकड़ना मत। जीवन को उसकी संपूर्णता में देखना। ओशो इसी बात के पक्ष में हैं कि जीवन को उसकी समग्रता में लो। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का पूर्वार्द्ध भोग का होना चाहिए, नास्तिक का होना चाहिए तब जीवन के उत्तरार्द्ध में त्याग और आस्तिकता अपने आप फलित होगी। जरा बुद्ध, महावीर, राम और कृष्ण इन सबके जीवन को देखो। निश्चितरूप से बुद्ध के जीवन में त्याग तो हमें दिखाई पड़ता है, महावीर जंगल चले गए राजमहल छोड़कर यह तो दिखता है लेकिन हम आधी बात को भूल जाते हैं। उनतीस साल तक बुद्ध राजकुमार की तरह जिए, एक भौतिकवादी की तरह उनका पूरा जीवन है। महावीर चालीस साल तक राजमहल के सुखों में, भोगों में जिए इस बात को हम बिल्कुल भूल ही जाते हैं कि उनके जीवन में भी दोनों चीजें हैं। पहले भोग की पराकाष्ठा को उन्होंने छुआ और तब त्याग स्वाभाविकरूप से उनके जीवन में घटित हुआ। राम को जब उनके पिता ने कहा जंगल जाने के लिए वह खुशी–खुशी चले गए। वह व्यक्ति जो राजमहल के सुख देख चुका है वही अपने माता–पिता के चरण स्पर्श करके

धन्यवाद भाव से जंगल जा सकता है। तब जंगल जाना भी एक प्रकार की लक्जरी है, सुपर लक्जरी। कृष्ण के जीवन में उल्लेख है जिंदगीभर संघर्ष, लड़ाइयां और संग्राम में जूझते रहे। अंत में मथुरा–वृंदावन छोड़कर दूर द्वारका में जा बसे, गुजरात में पहुंच गए।

कृष्ण के कई नाम हैं, उसमें एक नाम है रणछोर दास। प्यारा नाम है, जिंदगी भर का अनुभव अपने आप त्याग सिखा देता है। तो अनुभव से गुजरना जरूरी है। बुद्ध को देखकर जो लोग उनका अनुकरण किए और घर–गृहस्थी छोड़कर चल दिए उनके जीवन में वह गरिमा और महिमा प्रगट नहीं हुई। वे कच्चे ही भाग गए, जैसे किसी वृक्ष से तुम कच्चा फल तोड़ लो। पका हुआ फल तो अपने आप गिर जाता है। किसी वृक्ष ने फल का त्याग नहीं कर दिया, फल पक गया तो गिर गया। तो बुद्ध और महावीर का त्याग तुम वैसा देखना। तुम पूछते हो ओशो की दृष्टि क्या है, कभी वह घोर आस्तिक तो कभी महाआस्तिक जैसे प्रतीत होते हैं? प्रत्येक व्यक्ति को नास्तिकता से शुरूआत करनी चाहिए। तो यह डिपेंड करता है कि ओशो किसके प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं। वे कहेंगे शुरूआत करो साधना की नास्तिकता से, बिना किसी विश्वास के, ईश्वर को भी मानने की जरूरत नहीं। तुम खोजो, अन्वेषण में लगो, ध्यान में डूबो, समाधि को पाओ। हां, जब तुम अपने भीतर उस भगवत्ता को पा लोगे तब तुम आस्तिक हो जाओगे। तो ओशो की बातों में कहीं भी विरोधाभास नहीं है। नास्तिकता आस्तिकता की सीढ़ी है। नास्तिकता मार्ग है, आस्तिकता उसकी मंजिल है, इसमें विरोध कहां है? सुनो ओशो की अमृतवाणी, तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इसमें मिल जाएगा–

'मेरी तो दृष्टि यही है कि तुम भरपूर जियो, तुम ऐसे जियो कि जैसे बाढ़ आई नदी हो, तुम जीवन को उसकी त्वरा में जियो, तुम ऐसे जियो कि जैसे मशाल को किसी ने दोनों तरफ से जलाया हो, तुम जीने में कंजूसी मत करो। मैं तुमसे त्याग को नहीं कहता, मैं तुमसे कहता हूं कि तुम भोग में इतने गहरे उतरो कि भोग का अनुभव ही त्याग बन जाए। तुम ऐसे भोगो कि जान लो कि भोग व्यर्थ है और भोग छोड़ना न पड़े, तुम्हार ज्ञान ही भोग का छूटना हो जाए। तुम जीवन से भागो मत, भगोड़े मत बनो। तुम जीवन में जमकर खड़े हो जाओ ताकि जीवन से आंखें मिल जाएं और तुम जीवन को पूरी तरह से देख ही लो कि यह सपना है। फिर सपने को छोड़ना थोड़ी पड़ता है, सपना तो छूट ही गया। जो दिखाई पड़ते हैं कि व्यर्थ हैं वह गया। छोड़ने का अगर फिर भी सवाल रहे तो समझना अभी व्यर्थता दिखाई नहीं पड़ी, अभी थोड़ी सार्थकता दिखाई पड़ती है इसलिए छोड़ने का सवाल है। सार्थक को छोड़ना पड़ता है, व्यर्थ छूट जाता है।

तो मैं तुमसे कहता हूं कि जीवन को उसकी परिपूर्णता में जानो। तुम बहुत बार अनेक लोगों के प्रभाव में आ गए हो और कच्चे ही जीवन को छोड़कर भाग गए हो। तो मैं तुमसे कहता हूं भागना मत, जीवन को जानना है, जीना है। मैं कोई चार्वाक वादी नहीं हूं, मैं यह नहीं कह रहा हूं कि जीवन के पार कुछ भी नहीं है, मैं कह रहा हूं कि जीवन के पार कुछ है लेकिन पहले जीवन तो पार करो। जीवन के पार जो है वह तभी दिखाई पड़ेगा जब जीवन से पार हो जाओ, आधे से भाग गए, सीमा तक न पहुंचे और भाग गए तो तुम जीवन में भटकते रहोगे।

सीमा के पार ही अतिक्रमण संभव है कि मेरी दृष्टि भोग के माध्यम से त्याग तक जाने की है। और दूसरा कोई माध्यम इतना कारगर नहीं है। इसलिए बुद्ध तो होते हैं लेकिन कितने लोग उनके पीछे बुद्धत्व को उपलब्ध हो पाते हैं? न के बराबर। क्योंकि दिशाएं बड़ी भिन्न-भिन्न हैं। बुद्ध तो महल छोड़कर भिखारी होते हैं, दूसरा आदमी जो भिखारी था बुद्ध के पीछे हो लेता है। उन दोनों के अनुभव अलग हैं। बुद्ध के त्याग में तो भोग का अनुभव छिपा है, भिखारी के त्याग में तो कुछ भी नहीं। उसके पास कुछ त्यागने को था भी नहीं, उसका त्याग धोखा है। तो मैं तुमसे अतिरेक में जीने को कहता हूं, जीवन है जब तक उसे पूरा का पूरा जी लो, जीते ही तुम उससे मुक्त हो जाओगे।'

दूसरा प्रश्न, मुझे ओशो से बहुत लगाव है मगर संन्यास दीक्षा व ध्यान समाधि शिविर में भाग लेने का निर्णय नहीं कर पाता हूं, क्या करूं? पूछते हैं जालंधर से श्यामसुंदर जी।

एक बात अच्छी तरह से समझ लो, निर्णय न लेना भी एक प्रकार का निर्णय है, इनडिसीजन इज आल्सो ए डिसीजन। तुम चौराहे पर खड़े हो और कह रहे हो कि मैं तय नहीं कर पा रहा हूं कि पूरब जाउं कि पश्चिम, उत्तर जाउं कि दक्षिण बस इसी सोचविचार में यहां खड़ा हुआ हूं बहुत लंबे से, अभी मैंने तय नहीं किया। तुम भूल में हो, तुमने तय कर लिया है चौराहे पर खड़े रहने का। इस तथ्य को जरा देखो, तुम कह रहे हो कि अभी मैंने निर्णय नहीं किया कि कहां जाउं लेकिन निर्णय तो हो ही रहा है, निर्णय से हम बच ही नहीं सकते किसी भी हालत में। तुम कह रहे हो कि कई सालों से ओशो के प्रेम में हो मगर संन्यास दीक्षा लेने का निर्णय नहीं कर पा रहे हो। निर्णय तो हो गया, तुम गैरसंन्यासी ढंग से जीने का निर्णय कर लिए हो। तुम कह रहे हो कि मैं ध्यान समाधि शिविर में भाग लेने का निर्णय नहीं कर पा रहा हूं, निर्णय तो हो गया कि इतने साल तुम बिना ध्यान, बिना समाधि के जी रहे। निर्णय से बचने का कोई उपाय ही नहीं।

जब यह बात तुम्हें स्पष्ट हो जाएगी तब यह समझ में आ जाएगा कि जब निर्णय से बच ही नहीं सकते हम तो बेहतर है कि हम सचेतनरूप से निर्णय लें। फिर चौराहे पर न खड़े रहें। इससे कुछ लाभ न होगा। ठीक है, उत्तर की तरफ चलकर देख लें, कम से कम अनुभव तो आएगा। हो सकता है वह रास्ता कहीं न पहुंचाता हो लेकिन वो भी चलकर ही पता चलेगा कि मार्ग गलत है। कोई बात नहीं, फिर लौटकर चौराहे पे आ जाना और फिर दूसरे मार्ग पर चलकर देखना, अनुभव महत्वपूर्ण हैं, खड़े रहने से अनुभव भी नहीं होगा इसलिए डावाडोल होने की जरूरत नहीं, अनिर्णय में पड़े रहने की जरूरत नहीं। निर्णय करो। और ओशो की संन्यास दीक्षा ऐसी नहीं है कि तुम जिंदगी भर के लिए बंध गए, एक अवधिगत संन्यास। तुम प्रयोग करके देखो, तीन महीने, छः महीने के लिए ध्यान समाधि में डूबने का निर्णय करो।

मैं नहीं कहता कि पूरी जिंदगी का निर्णय कर लो, भविष्य को बांधना मत। अभी तुमको ठीक लग रहा है तो ठीक, तय कर लो कि तीन महीने में इसको जीकर देखूंगा, फिर तीन महीने बाद तय करना, अगर ठीक लगता है तो इसी राह पर और आगे चलना, अगर ठीक नहीं लगता है तो कोई बंधन नहीं, वापिस लौट आना। ओशो ने इसलिए संन्यास दीक्षा के

साथ सम्मान को नहीं जोड़ा है। परंपरागत रूप से जब कोई संन्यास लेता था बड़ी शोभायात्रा निकलतीं, फूलमालाएं पहनाई जातीं, बड़े बैण्ड–बाजे बजते, स्वागत सत्कार होता, समारोह होते, ओशो ने वह सब बंद कर दिया। उन्होंने कहा कि संन्यास लेना तुम्हारा निजी निर्णय है, यह तुम्हारा निजी संकल्प है, इसमें दूसरों को बीच में लाने की आवश्यकता ही नहीं है। और अगर लोग तुम्हें सम्मान देंगे संन्यास लेने पर तो याद रखना, संन्यास छोड़ने पर फिर वही लोग गालियां देंगे, अपमान भी करेंगे। इसलिए तथाकथित संन्यासी बुरी तरह बंध जाता है। चले थे मुक्ति की ओर, मोक्ष की तलाश में और बुरी तरह से बंध गए।

मैं बहुत से साधुओं को, मुनियों को, सन्यासियों को जानता हूं बुरी तरह से थक चुके हैं वे उस जीवनशैली से किन्तु लौटकर भी वे नहीं आ सकते। समाज, अपनी ही घर–गृहस्थी के लोग उन्हें स्वीकार नहीं करेंगे, उनका भारी अपमान करेंगे। वे जो लोग फूल–मालाएं पहना रहे थे वही जूतों की मालाएं पहनाएंगे, वे जो पैर छू रहे थे वे सिर पे पैर मारेंगे। बड़ा अपमान और बेइज्जती मिलेगी। यह तो और नया बंधन हो गया, संसारी भी इससे ज्यादा मुक्त है। ओशो का संन्यास इस प्रकार का संन्यास नहीं है, यह तुम्हारे निजी निर्णय की बात है और पूरी जिंदगी भर का निर्णय नहीं है। अभी ठीक लग रहा है तो अभी करके देखो, प्रयोगधर्मी बनो। आगे ठीक लगे तो जारी रखना, नहीं लगे तो छोड़ देना। इसमें सम्मान, अपमान का भी कोई सवाल नहीं है, दूसरों से कुछ लेना–देना ही नहीं है। तो मैं तुमसे निवेदन करूंगा कि अनिर्णय भी एक निर्णय है और जब निर्णय से बच ही नहीं सकते तो फिर निर्णय कर ही लो। सुनो यह प्यारा गीत–

खुदा की खोज में तुम भी चल सको तो चलो,
कदम–कदम पर है मुश्किल सम्हल सको तो चलो।
दीवारें रस्मोरिवाज की मिलती ही रहेंगी,
उनको तोड़कर आगे निकल सको तो चलो।
यह राहे इश्क तो इक आग का समुंदर है,
लपकती मौजों से अगर बच सको तो चलो।
तुम्हारी कश्ती घिरी है गमों के तूफां में,
इस रूखे तूफां को तुम बदल सको तो चलो।
यह कश्मकश का आलम था, है और रहेगा,
इसी कश्मकश में तय कर सको तो चलो।

दुनिया सदा से ऐसी थी, जीवन सदा से ऐसा था, यहां हमेशा ही कश्मकश थी, है और रहेगी, इसी कश्मकश में तय कर सको तो चलो। इसी में से हमें तय करना होता है। ऐसा मत सोचना कि सारी परिस्थितियां बदल जाएंगी, तुम्हारे अनुकूल हो जाएंगी तब तुम कुछ तय करोगे। मन कभी सौ प्रतिशत किसी चीज में नहीं होता, मन का स्वभाव ही खंडित होना है। पचास प्रतिशत से ज्यादा तुम्हारा मन जिस तरफ जाता हो उसका निर्णय कर लो। इस एक थम्बरूल को अपना लो, आधे से अधिक जिस तरफ तुम्हारा भाव हो उस काम को कर डालो फिर अनुभव से पता चलेगा कि आगे करना है कि नहीं करना। तो संन्यास तुम्हारी स्वतंत्रता है एक प्रकार का, बंधन नहीं। ध्यान और समाधि तुम्हारे अंतर की अन्वेषण, अंतर्यात्रा की

स्थिति है उसमें आनंद आए, प्रफुल्लता आए, शंति मिले तो आगे बढ़ना, वरना लौट जाना। कौन तुम्हें रोकता है?

अगला प्रश्न, पूछते हैं गणेश चन्द्र भण्डारी राजस्थान जयपुर से, क्या मृत आत्मा परिवार जनों से संपर्क स्थापित कर संवाद कर सकती है?

मरने के बाद संवाद कर पाओगे, बड़ा कठिन सवाल पूछ रहे हो। बेहतर होता तुम पूछते कि जीवित रहते कैसे संवाद हो? मैं जगह–जगह घूमता हूं, विभिन्न परिवारों में ठहरता हूं, हजारों लोगों के जीवन की समस्याएं देखता हूं तो एक मुख्य समस्या यही है कि आपस में कोई कम्युनिकेशन, संवाद ही नहीं हो पाता। बाप–बेटे के बीच में, कि भाई–भाई के बीच में, कि पति–पत्नी के बीच में संवाद नहीं है। मरने के बाद क्या, खाक संवाद करोगे। अभी जीते–जी संवाद की कला सीखो। जहां देखता हूं वहीं वाद–विवाद।

नसरुद्दीन सातवीं मंजिल का मकान ढूंढ़ रहा था। किसी ने उससे कहा कि आपके पास अच्छा खासा ग्राउण्ड फ्लोर का फ्लैट है, आप क्यों इतने ऊपर की मंजिल पर जाना चाहते हैं? नसरुद्दीन ने कहा कि जब भी मेरी बीबी से विवाद होता है वह फटाक से खिड़की से कूदकर के अपने मायके चली जाती है। तुम्हारी पत्नी यहां तुम्हारी बात सुनने के लिए तैयार नहीं और तुम सोच रहे हो कि मरने के बाद संपर्क स्थापित करोगे।

और मैंने सुना है सेठ चंदूलाल मारवाड़ी के बारे में, एक बीमा एजेंट चंदूलाल को समझा रहा था कि बीमा करवा लो, इसके इतने–इतने लाभ हैं। चंदूलाल मान नहीं रहे थे। अंत में उसने कहा कि सेठ जी देखिए, थोड़ी छोटी–छोटी सी किश्तें हैं जो आपको देनी हैं, जरा कल्पना करिए उस बड़ी धनराशि की जो आपके विदा होने के पश्चात आपकी पत्नी को मिलेगी? चंदूलाल और भी चिंतित हो गया। बीमा एजेंट ने कहा कि आप चिंतित क्यों हो गए? चंदूलाल ने कहा, मुझे इस बात की चिंता सता रही है कि मेरे मरने के बाद इतनी बड़ी धनराशि मेरी पत्नी को मिलेगी, वह फिजूलखर्ची औरत सब बर्बाद कर देगी। मैं उसको रोक भी नहीं पाउंगा, वह अभी कहां रुक रही है। तुम सोच रहे हो कि मरने के बाद वहां से संवाद करोगे कि फिजूलखर्ची न करो और वह तुम्हारी मानेगी। नहीं, व्यर्थ की बकवास में न पड़ो। हां, संवाद संभव है लेकिन वह बड़ी गहरी बात है।

जिन लोगों ने जीते–जी वाद–विवाद को छोड़कर संवाद की कला सीखी और न केवल भाषा से संवाद की, बिना भाषा के अपने विचार संप्रेषित करने की कला, जिसे टेलीपैथी कहा जाता है, जिस व्यक्ति ने टेलीपैथी की कला सीखी वे बड़ी साधना है, लंबा समय लेगी। वह व्यक्ति मरने के बाद भी अपने विचार और भाव दूसरों तक संप्रेषित कर पाएगा। क्योंकि मृत्यु के पश्चात यह शरीर नहीं होगा, कंठ और यह जिह्वा नहीं होगी इसलिए वाणी का तो उपयोग नहीं हो सकता, तुम बोल तो न सकोगे। अगर अपने विचार भाव सीधे, हार्ट टू हार्ट, एक हृदय से दूसरे हृदय में संप्रेषित करने की कला तुमने सीखी तब यह संभव होगा। वह बहुत महत्वपूर्ण और गहरी साधना की बात है। मैं नहीं चाहता कि आप उसमें उलझें, उसका कोई खास लाभ नहीं है। बेहतर हो आप अभी तो वाणी में और शब्दों में संवाद करने की कला को सीखें ताकि हमारा यह जीवन सुंदर हो। मेरी उत्सुकता नहीं है कि मरने के बाद क्या होगा और मरने के बाद क्या करना चाहिए, मरने के पहले क्या हो रहा है उसमें मेरी ज्यादा उत्सुकता है।

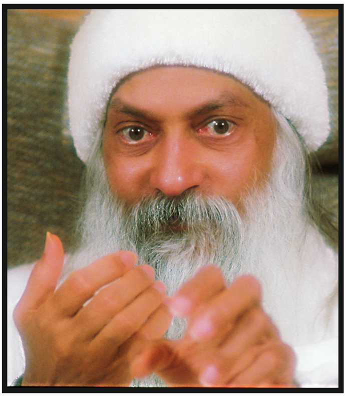

अध्याय–48

मैं कौन हूं

आज का पहला सवाल है हिन्दी साहित्य में डॉक्टरिट हासिल करके दर्शनशास्त्र का भी बहुत अध्ययन किया, सारे प्रश्नों के किताबी उत्तर मालूम हैं मगर जिंदगी में कोई समाधान नहीं मिला। वह कौन सा सवाल है जिसका जवाब पाकर प्राणों में संतोष व्याप्त हो जाएगा? पूछते हैं डॉक्टर ज्ञान चंद्र उपाध्याय इटारसी मध्यप्रदेश से।

अच्छा हुआ डॉक्टर ज्ञानचन्द्र उपाध्याय, किताब के ज्ञान से भीतर संतोष नहीं हुआ इस बात के प्रति तुम जागरूक हो। यह बड़ी बुद्धिमत्ता का लक्षण है। तुम्हारे माता–पिता ने तुम्हारा नाम रखा है ज्ञानचंद्र ठीक ही रखा। यह ज्ञान हो जाना कि भीतर ज्ञान नहीं है ज्ञान की शुरूआत है। मैं अज्ञानी हूं, मैं असंतुष्ट हूं, मैं अतृप्त हूं इस बात का एहसास परम संतोष की तरफ चलने के पहले कदम हैं। तो जो हुआ बिल्कुल ठीक हुआ, किताब काम न आई, दर्शनशास्त्र काम न आया, हिन्दी साहित्य की डाक्टरेट काम न आई। कबीर साहब ने कहा न, पोथी पढ़–पढ़ जगमुआ, पंडित भया न कोय। लेकिन बहुत कम पंडितों को यह बात समझ में आती है। एक आश्चर्य की बात आपसे कहूं, आपने शायद इस ढंग से कभी सोचा न हो,

भारत में इतने संत हुए, अवतार हुए, तीर्थंकर हुए, बुद्धपुरुष हुए लेकिन सबसे कम ब्राम्हणों में संत पैदा हुए। जबकि ब्राम्हणों ने सर्वाधिक अपने जीवन को किताबों पर न्यौछावर कर दिया। ग्रंथों में, शास्त्रों में, शास्त्रों में, सिद्धांतों में उलझे रहे। दर्शनशास्त्र का पूरा जंगल खड़ा कर लिया लेकिन आश्चर्य की बात कि ब्राम्हणों में संत नहीं उत्पन्न हुए। हिन्दुओं के सारे अवतार क्षत्रिय अवतार हैं, सिर्फ एक अपवाद हैं परसुराम, वह नाममात्र के ब्राम्हण हैं काम उन्होंने जिंदगीभर क्षत्रिय का ही किया। जिंदगी भर फरसा लिए घूमते रहे और क्षत्रियों की

गर्दन काटते रहे तो यह तो महाक्षत्रिय हो गए। तो बस एक मात्र ब्राम्हण वही हैं जो कि जातिगत ब्राम्हण हैं, कर्मगत ब्राम्हण वह भी नहीं हैं। तो हिन्दुओं के सारे अवतार क्षत्रिय हैं, जैनों के सारे तीर्थंकर क्षत्रिय हैं, बुद्ध और उनके पिछले जन्मों की सारी कहानी क्षत्रियों की कहानी है। बुद्ध के बाद भी उनकी धारा में अनेक-अनेक ज्ञानी उत्पन्न हुए। वैश्यों में ज्ञानी उत्पन्न हुए, शूद्रों में ज्ञानी उत्पन्न हुए। कबीर दास जी जुलाहे हैं, चरणदास किसान हैं, संत रैदास चमार हैं बिल्कुल साधारण जन जिन्होंने कभी किताब पढ़ी ही न थी, जिनको दस्तखत करना भी नहीं आता था उन्होंने परमज्ञान, आत्मज्ञान पा लिया। एक बहुत ही आश्चर्य की बात है कभी किसी ने शायद इस पर चिंतन-मनन नहीं किया कि ब्राम्हण क्यों चूक गए। होना तो यह चाहिए था कि सबसे ज्यादा ज्ञानी ब्राम्हणों में होते। एक आदि शंकराचार्य हैं और एक संत सुंदरदास हैं, यह दो नाम हैं अपवाद स्वरूप। इससे केवल नियम ही सिद्ध होता है। कबीर ने ठीक ही कहा, पोथी पढ़-पढ़ जगमुआ पंडित भया न कोय। तुम्हें इस बात का एहसास हुआ, खूब सुंदर।

अब तुम पूछते हो कि वह कौन सा सवाल है जिसको जानकर प्राणों में संतोष व्याप्त हो जाएगा? वह सवाल है मैं कौन हूं, हू एम आई? किताबों में जो ज्ञान मिला वह दूसरों के बारे में है। वस्तुओं के बारे में, व्यक्तियों के बारे में, बाहर के जगत के बारे में, दुनिया के बारे में। एक ज्ञान भीतर घटित होता है जिसमें हम स्वयं ही स्वयं को जानते हैं। जे कृष्णमूर्ति कहा करते हैं- व्हेन द आब्जर्बर बिकम्स द आब्जर्व्ड, जब द्रष्टा ही दृश्य हो जाता है, निरीक्षण करने वाला स्वयं का ही निरीक्षण करता है तब जो घटित होता है उसका नाम है आत्मज्ञान। और जब तक वह न हो जाए कहां संतोष, कहां की शांति। बाहर का ज्ञान प्राप्त कर-कर के तो अशांति बढ़ सकती है, सिर भारी हो सकता है, तुम्हारा सिर पूरी लाइब्रेरी ढो सकता है भीतर किन्तु उससे शांति न मिलेगी, शायद अशांति ही बढ़ जाए। एक मात्र शांति, संतोष और तृप्ति स्वयं के जानने पर होती है। इस संबंध में एक छोटा सा प्रवचनांश ओशो की अमृतवाणी में आपको सुनाना चाहूंगा, आपके प्रश्न का उत्तर उसमें मिल जाएगा-

'एक ही बात स्मरण करने जैसी है, एक ही प्रश्न जगाने जैसा है कि मैं कौन हूं? एक ही बोध उठने लगे सब तरफ से कि मैं कौन हूं, एक ही प्रश्न गूंजने लगे प्राणों में कि मैं कौन हूं धीरे-धीरे इसी प्रश्न की चोट पड़ते-पड़ते भीतर के द्वार खुल जाते हैं। यह चोट तो ऐसी है जैसे कोई हथौड़ी मारता हो। मैं कौन हूं, मैं कौन हूं, उत्तर मत देना क्योंकि उत्तर बाहर से आएगा। अगर तुमने जल्दी से पूछा कि मैं कौन हूं और फिर जल्दी से कह दिया कि अहं ब्रम्हास्मि, आ गया उपनिषद बीच में। तुम उत्तर मत देना, तुम तो केवल पूछते ही चले जाना फिर एक ऐसी घड़ी आएगी कि प्रश्न भी गिर जाएगा। और जहां प्रश्न गिर जाता है वहीं उत्तर है। फिर तुम ऐसा कहते नहीं हो कि अहं ब्रम्हास्मि, ऐसा तुम जानते हो, ऐसा तुम अनुभव करते हो। शब्द नहीं बनते, निःशब्द में प्रतीति होती है। देखे को अनदेखा कर दे, अनदेखे को देखा। अभी तो तुम जिसे देख रहे हो उसी में उलझे हो और जो दिखाई पड़ रहा है वही संसार है। दृश्य संसार है और जो देख रहा है, जो द्रष्टा है वह तो अदृश्य है, वह तो बिल्कुल छिपा है। देखे

को अनदेखा कर दे, अनदेखे को देखा, क्षर लिख–लिख तू रहा निरक्षर, लिखने–पढ़ने से कुछ भी न होगा। हम लिखते तो हैं और जिसको लिखते हैं उसको कहते हैं अक्षर। कभी तुमने सोचा, अक्षर का मतलब होता है कि जो मिटाया न जा सके। लिखते तो क्षर हो और कहते हो अक्षर, कैसा धोखा देते हो, किसको धोखा देते हो। तुमने जो भी लिखा है सब मिट जाएगा, लिखा हुआ सब मिट जाता है। शास्त्र लिखो, खो जाएंगे, पत्थरों में नाम खोदो, रेत हो जाएंगे। यहां तुम कुछ भी लिखो, नदी के किनारे रेत पर लिखे हस्ताक्षर जैसा है, हवा का झोंका आया और खो जाएगा। शायद इतना भी नहीं है, पानी पर लिखे जैसा है, तुम लिख भी नहीं पाते और मिटना शुरू हो जाता है।

क्षर लिख–लिख तू रहा निरक्षर, अपढ़, अज्ञानी, मूढ़ क्षर को लिख रहा है और भरोसा कर रहा है अक्षर, समय में लिख रहा है और शाश्वत की आकांक्षा कर रहा है, क्षुद्र को पकड़ रहा है और विराट की अभिलाषा बांधे है। क्षर लिख–लिख तू रहा निरक्षर अक्षर सदा अलेखा। और तेरी इस लिखावट में ही, इस क्षर में उलझे होने में ही अक्षर नहीं दिखाई पड़ता। अक्षर तेरे भीतर है। थोड़ी देर लिख मत, थोड़ी देर पढ़ मत, थोड़ी देर कुछ कर मत, थोड़ी देर दृश्य को विदा कर, थोड़ी देर अपने में भीतर आंख खोल सुरति में। सूफियों के पास ठीक शब्द है सुरति, वे इसको कहते हैं जिक्र। जिक्र का भी वही अर्थ होता है जो सुरति का, उसी का अर्थ होता है स्मरण या याददाश्त कि चलो बैठें प्रभु का जिक्र करें, उसकी याद करें। जिसको हिन्दू नामस्मरण कहते हैं।'

अगला सवाल है कि महर्षि रमण बार–बार कहते हैं कि स्वयं से पूछो कि मैं कौन हूं, ओशो ने भी इसे आत्यांतिक प्रश्न बताया है, इसका उत्तर क्या है समझाने की कृपा करें? पूछते हैं स्वामी धर्मानंद भारती पंजाब से।

इसका उत्तर अगर कोई समझा पाता तब यह प्रश्न आत्यांतिक न रह जाता। यह प्रश्न ऐसा है कि जिसका उत्तर प्रत्येक को स्वयं ही खोजना होगा, इसका उधार ज्ञान नहीं हो सकता, नगद ज्ञान चाहिए। तुम स्वयं ही जान सकते हो बस, अगर कोई दूसरा तुम्हें बता दे कि तुम कौन हो तब वह ज्ञान फिर उधार हो गया, दूसरे से मिली हुई सूचना हो गया, उससे प्राणों में संतोष व्याप्त नहीं होगा। इसलिए तुम पूछो, पूछते ही जाओ। तुम्हारी भीतर कई उत्तर होंगे, कभी वेद बोलने लगेगा, कभी गीता का उत्तर आ जाएगा, कभी बुद्ध के वचन आ जाएंगे उन सबको इंकार कर देना कि नहीं, यह मेरा ज्ञान नहीं है। यह बुद्ध की वाणी है, यह महावीर का वचन है, यह गीता का श्लोक है। कभी भीतर से आने लगा अहं ब्रम्हास्मि तो कहना कि यह उपनिषद के ऋषि का वाक्य है, यह मेरा वचन नहीं है, तुम तो बस खोजते जाना, खोजते जाना, खोजते जाना। इसको एक ध्यान की विधि बना लो कि मैं कौन हूं, शब्दों में नहीं पूछना या शुरूआत कर सकते हैं शब्दों से लेकिन धीरे–धीरे बिना शब्द के केवल भाव रह जाए।

तो शब्दों का उपयोग करना, एक–दो–तीन मिनट के लिए फिर शब्दों को छोड़ देना, केवल एक प्रश्न चिन्ह भीतर रह जाए कि मैं कौन हूं? उस प्रश्न के साथ जीना, लिव विद दैट क्वश्चन और अद्भुत घटना घटेगी, तुम्हारे भीतर सुपर कांससनेस अतिचैतन्यता का उद्भव होगा। उस चैतन्यता में तुम स्वयं का साक्षात्कार करोगे। जब मैं कहता हूं कि साक्षात्कार तो

ऐसा नहीं समझना कि तुम किसी से मिलोगे और वह कहेगा कि अच्छा, मैं ही वह जिसे तुम ढूंढ़ रहे थे स्वामी धर्मानंद भारती। साक्षात्कार कहने के लिए कह रहा हूं क्योंकि कोई शब्द नहीं है क्या कहूं, भीतर के उस अनुभव को व्यक्त करने के लिए भाषा कमजोर है, तुम स्वयं ही स्वयं को जानोगे, किसी दो का मिलन नहीं होगा। उस मैं को जानकर ही जीवन में संतोष और आनंद घटित होता है। सुनो यह चार पंक्तियां–

अपनी मर्जी से कहां अपने सफर के हम हैं,
रुख हवाओं का जिधर है उधर के हम हैं,
पहले हर चीज थी अपनी मगर अब लगता है,
अपने ही घर में किसी दूसरे घर के हम हैं।
वक्त के साथ है मिट्टी का सफर सदियों से,
किसे मालूम है कौन किधर के हम हैं,
चलते रहते हैं चलना है मुसाफिर का नसीब,
सोचते रहते हैं किस राह गुजर के हम हैं।

सोचो–विचारो और इस प्रश्न को भीतर छिदने दो।

किसे मालूम है कौन किधर के हम हैं,
सोचते रहते हैं किस राह गुजर के हम हैं।
ढूंढ़ो, तलाशो और तुम पा जाओगे।

अगला प्रश्न, प्रभु से जो भी मांगा वह मिला तो मगर उतना नहीं मिला जितना मांगा था, भगवान के घर में यह कंजूसी कैसी? पूछते हैं पूर्ण प्रसाद सापकोटा बुटवल नेपाल से।

एक चुटकुला तुम्हें सुनाता हूं शायद उससे तुम्हें उत्तर मिल जाएगा। मुल्ला नसरुद्दीन एक भिखारी को जब भी मिला करता था सौ रुपए दिया करता था। फिर थोड़े दिनों बाद पचास रुपए देने लगा, फिर कुछ महीनों बाद पच्चीस रुपए देने लगा और कुछ साल बाद सिर्फ दस रुपए देने लगा। एक दिन भिखारी बिगड़ गया, उसने कहा साहब आप क्या कर रहे हैं, पहले सौ रुपए देते थे, फिर पचास, फिर पच्चीस और अब दस, किसी चीज की हद होती है, कुछ तो ख्याल करिए मेरा? नसरुद्दीन ने कहा कि देखो भाई, पहले मैं कुंवारा था, बिल्कुल अकेला था तो सौ रुपए देता था। फिर हमारी शादी हो गई तो हम एक से दो हो गए तो मैं पचास रुपए देने लगा। फिर मेरा एक बच्चा हो गया तो पच्चीस रुपए देने लगा।

फिर एक बेटी और पैदा हो गई तो अब दस रुपए देने लगा। भिखारी बहुत नाराज हो गया, उसने कहा कि हद हो गई, तुम अपना पूरा परिवार मेरे पैसों से पाल रहे हो। पूर्ण प्रसाद सापकोटा, तुम जरा सोचो परमात्मा बेचारे की। साढ़े छः अरब आदमी हैं, एक–दो बेटा–बेटी होते तो भी चल जाता और फिर आदमी ही थोड़ी हैं, पशु–पक्षी हैं, मछलियां हैं, पेड़े–पौधे हैं, कीड़े–मकोड़े, वैक्टीरिया और वायरस हैं उसको तो सबका ख्याल रखना है, तुम्हारे हिस्से में जितना पड़ता है उतना तुम्हें मिल जाता है, शिकायत न करो।

एक कहानी और मैंने सुनी, एक बार चंदूलाल एक मंदिर में जाकर प्रार्थना कर रहे थे कि हे प्रभु बड़ी गरीबी आ गई है, एक हजार रुपए मिल जाएं तो बड़ी कृपा हो। बारम्बार प्रार्थना

करने पर एक दिन जब वे मंदिर से बाहर निकल रहे थे संयोग की बात 950 रुपए रास्ते में पड़े हुए मिल गए, चंदूलाल ने उस पैसे को उठाया और कहा कि लो, बीच में मनियार्डर वाले ने अपना कमीशन पहले ही काट लिया। तुम कह रहे हो कि प्रभु से जितना मांगा था मिला लेकिन उतना नहीं मिला जितना मांगा था, भगवान के घर में कंजूसी कैसी? एक तो इतनी बड़ी दुनिया है तो भगवान को सबका ख्याल रखना पड़ता है और दूसरा बीच में कमीशन एजेंट हैं। चेक और ड्राफ्ट से भी अगर वे भेजे तो भी बैंक वाले इतना कमीशन काट लेते हैं, तुम्हें कट-पिट के जो मिलता है उसमें संतोष करो। भीतर जो मिला हुआ है उस पर नजर करो, बाहर जो मिलेगा वह तो बंटकर ही मिलेगा। सारी संपत्ति तुम्हें नहीं मिल सकती, सारी जमीन तुम्हें नहीं मिल सकती औरों को भी तो परमात्मा को देखना है, उनका भी पेट चलाना है। लेकिन भीतर पूरा का पूरा परमात्मा मिला हुआ है प्रत्येक को, जरा भी कमी नहीं।

कबीर साहब ने कहा है, कहे कबीर मैं पूरा पाया। तुम्हारा नाम है पूर्ण प्रसाद सापकोटा, तुम्हारे अंदर भी पूर्ण, पूरा परमात्मा पूर्ण का पूर्ण विराजमान है, जरा भी कमी नहीं है। ऐसा नहीं सोचना कि कबीर साहब को पूरा मिल गया तो स्टाक खत्म हो गया कि आउट आफ स्टाक हो गया। जब तुम पहुंचे निर्वाण में परलोक में मोक्ष के द्वार पर संत्री ने लौटा दिया कि बुद्ध, कबीर, नानक वगैरह पहले ही आकर सब ले जा चुके हैं, अब परमात्मा बचा ही नहीं, आउट आफ स्टाक है। उपनिषद के ऋषि कहते हैं कि पूर्ण में से पूर्ण भी निकालो तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है। अपने भीतर नजर मोड़ो, बाहर से नजर हटाओ, बाहर से संतोष कर लो जो है सो बहुत है। यूं तो बहुत से भी काम नहीं चलता, भीतर नजर करो।

भीतर पूर्ण विराजमान है, तब तुम अहोभाव से भरोगे, धन्यवाद भाव से भरोगे। कैसे उस तक हम पहुंचे चलो उसका एक छोटा सा प्रयोग करते हैं। मैं कौन हूं का प्रयोग, पहले हम जोर-जोर से बोलेंगे मैं कौन हूं और फिर भीतर मौन होकर इस प्रश्न को जिएंगे।

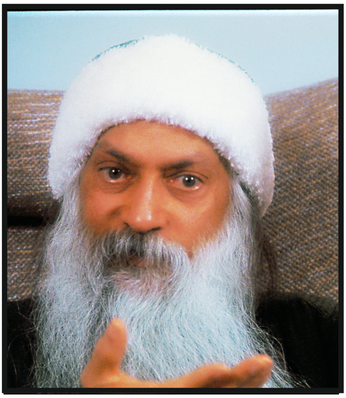

अध्याय–49

बेचैनी से मुक्ति

परम श्रद्धेय सद्गुरु के चरणों में प्रणाम, आज का पहला प्रश्न पूछ रहे हैं नारयण शर्मा पोखरा नेपाल से, कहते हैं कि मुझे छोटी–छोटी परेशानी में घबराहट की बीमारी है, जरा में नर्वस ब्रेक डाउन हो जाता है, चित्त की चंचलता से बेचैन रहता हूं, इसी कारण कार्य में सफलता भी नहीं मिल पाती है। क्या ध्यान व साधना करने से घबराहट से मुक्ति मिलेगी?

घबराहट की इस बीमारी को समझना होगा। इसका मूल स्रोत अलग–अलग जगह हो सकता है और उसके अनुसार ही इस रोग का इलाज करना होगा। हमारे होने के चार तल हैं– एक हमारा तन, दूसरा हमारा मन, तीसरा हमारा हृदय और चौथी हमारी आत्मा। आत्मा तो सदा ही स्थिर है, वहां तक कोई चंचलता कभी नहीं पहुंचती। किन्तु तन, मन और हृदय के तल पर अलग–अलग कारणों से घबराहट, बेचैनी, चंचलता हो सकती है। सबसे पहले तन के तल पर समझ लें, हमारा शरीर केमिकल रसायनों से संचालित होती है। यदि किसी व्यक्ति का नर्वस ब्रेक डाउन हो जाता है, संभव है कि उसके भीतर थायराइड हार्मोन की अधिकता हो, संभव है उसके भीतर एड्रेनेलिन हार्मोन जरूरत से ज्यादा हो, संभव है उसके भीतर दूसरी रासायनिक गड़बड़ियां हों, इनकी दवाई लेने से नरवस होने की वह बीमारी ठीक हो जाएगी। तो सबसे पहले तो शरीर के कारणों का पता लगाना, बेहतर हो कि आप अपनी थायराइड की जांच करवाएं।

जो लोग हाइपर थायराइड से पीड़ित होते हैं उन्हें इस प्रकार की घबराहट की बीमारी होती है। उनके हाथों में कंपन होता है, उनकी मांसपेशियां कांपती रहती हैं। यह तो ध्यान

साधने से ठीक नहीं होगी, यह तो मेडिकल चिकित्सा कराने से ठीक होगी। बीटाब्लाकर्स नाम की एक दवाइयां एलोपैथी में होतीं हैं जो हमारे नर्वस सिस्टम को कूल डाउन करतीं हैं। सिप्लार और एण्डेलार नाम कीं दवाइयां आतीं हैं, आप अपने डॉक्टर से सलाह लेकर जांच कराकर इन दवाइयों का प्रयोग कर सकते हैं। अगर शारीरिक कारण है तब वह कारण दूर हो जाएगा।

दूसरी बात आती है मन की, मन विचारों का केन्द्र है। अगर किसी व्यक्ति के विचार बहुत तेजी से चल रहे हैं, उंची-उंची कामनाएं हैं उसकी, महत्वाकांक्षा से भरा हुआ मन है, दूर के सपने देखता है और लगातार भविष्य की तरफ छलांग लगाता रहता है ऐसा व्यक्ति भी नर्वस होगा। जितनी ज्यादा कामनाएं, जितने ज्यादा विचार, जितनी ज्यादा सफलता की आकांक्षा उतना ही डर भी लगेगा कि क्या पता, सफल हो पाउं कि न हो पाउं। तो अगर तुम्हारा मन कारण है तो अपने मन को समझना होगा। मैं आपको सलाह दूंगा कि गौतमबुद्ध का आष्टांगिक मार्ग समझें। जीवन के आठ पहलुओं के बारे में भगववान बुद्ध चर्चा करते हैं। उनकी समझ आपके मन को ज्यादा विवेकपूर्ण, ज्यादा प्रज्ञावान बनाएगी और तब आपका मन शांत हो सकेगा। तो अगर आपके विचार, आपकी महत्वाकांक्षाएं, आपकी सफलता की कामनाएं आपको परेशान कर रही हैं तब मन के तल पर ही उस बीमारी को ठीक करना होगा।

तीसरा हमारा तल है ह्रदय की भावनाओं का। कुछ लोग होते हैं भावुक किस्म के, बड़े उहापोह में जीते हैं। उनके भीतर भावनाओं के ज्वार-भाटे आते हैं। अगर तुम्हारी बेचैनी उस वजह से है तो तुम्हें कुछ और करना होगा। तब न तो शारीरिक इलाज काम आएगा, न ही मन की समझ काम आएगी, बल्कि अपनी भावनाओं के प्रति तुम्हें सजग होना होगा, भावनाएं बहुत ज्यादा अचेतन हैं। जब मैं कहता हूं मन और ह्रदय तो दूसरे शब्दों में उसको ऐसा भी कह सकते हैं कि मन यानि चेतन मन और ह्रदय यानि हमारा अवचेतन मन। यह जरा और गहरा मामला है, अपने भीतर गहरी डुबकी साधनी होगी, इन भावनाओं के प्रति सजग होना होगा। वे भावनाएं क्यों हैं, उनके पीछे कारण क्या है उस खोजबीन में जब तुम लगोगे तुम्हारी सजगता बढ़ेगी। और जैसे-जैसे तुम सजग होते जाओगे एक नई घटना घटेगी, तुम अपने चैतन्य में स्थित होते जाओगे जहां भावनाओं के उहापोह नहीं पहुंचते।

तो हमारा चौथा तल जहां तक भाव नहीं पहुंचते वह है हमारी चेतना, हमारी आत्मा। वह तो परमसाक्षी है। तन, मन और ह्रदय के तल पर लहरें उठती हैं, गिरती हैं, आंधी-तूफ़ान आते-जाते हैं किन्तु भीतर के केन्द्र को छूते भी नहीं, उसे स्पर्श भी नहीं कर सकते, वह केन्द्र सदैव जल में कमलवत होता है। देखते हो न कमल को कि कीचड़ में खिलता है किन्तु उसे कीचड़ छूती भी नहीं। ठीक इसी प्रकार हमारी चैतन्य आत्मा है।

आपने पूछा है कि क्या ध्यान साधने से घबराहट से मुक्ति मिलेगी? निश्चितरूप से मिलेगी, क्योंकि ध्यान आपको चैतन्य में स्थित कर देगा, सचमुच में स्वयं में स्थित वही स्वस्थ होना है। जब आप अपने चैतन्य में साक्षी बनकर स्थित हो जाते हैं, जीवन की सारी घटनाओं के प्रति, अपने ही तन, मन, ह्रदय के प्रति साक्षी हो जाते हैं तब आप अडोल स्थिति

में पहुंच जाते हैं, निष्कंप अवस्था उत्पन्न हो जाती है। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है, ऐसा व्यक्ति स्थितप्रज्ञ हो जाता है। स्थितप्रज्ञ का अर्थ है कि एक ऐसा दीपक जिसकी लौ कांपती नहीं। जैसे किसी बंद कमरे में दीपक जल रहा हो, जहां खिड़की-दरवाजे नहीं खुले, बाहर की कोई हवाएं आती नहीं और चेतना की लौ बिल्कुल स्थिर होकर जलती है। अगर आप ध्यान में स्थित होना सीख गए तब आप स्थितप्रज्ञ हो जाएंगे। योग की अवस्था में आरूढ़ हो जाएंगे और तब तन, मन और हृदय के उफहापोह से अप्रभावित रहना सीख जाएंगे। तो इन चार तलों पर खोजें, ध्यान तो केन्द्रिय तल पर काम करता है। तो उसका प्रभाव तो बाकी सब पर पड़ेगा किन्तु अगर कोई शारीरिक या मानसिक बीमारी है तो आप शरीर के डॉक्टर या मन के डॉक्टर से मिलें और उसके अनुसार इलाज कराएं।

मुझे याद आता है, मैं कुछ साल तक एक आर्केस्ट्रा को कंडक्ट किया करता था। जो कलाकार थे रिहर्सल के दौरान तो वे बहुत अच्छा गाते थे लेकिन जब मंच पर खड़े होते थे जनता के सामने तब कई लोगों का नर्वस ब्रेक डाउन हो जाता। किसी का गला सूख जाता, किसी को गीत ही भूल जाता, पैरों में कंपन आ जाता, हाथ में पकड़ा हुआ माइक कांपने लगता। ऐसे लोगों को मैंने बीटाब्लाकर्स की दवाई देनी शुरू की, प्रोग्राम के आधा घंटे पहले एक दस मिलीग्राम की गोली प्रोप्रेनेलोल की और मैंने पाया कि उन लोगों का नर्वस ब्रेक डाउन समाप्त हो गया। तब वे बड़े विश्वास के साथ स्टेज पर अपना गीत प्रस्तुत कर पाए। तो हमारे यह चारों तल आपस में जुड़े हुए हैं। कहने के लिए मैंने आपको समझाया चार हिस्सों में लेकिन वास्तव में सब चीजें आपस में संयुक्त हैं, एक छोर से छुओ तो दूसरे छोर तक उसका प्रभाव पड़ता है। अगर कोई व्यक्ति केवल ध्यान ही साधे तब उसके तन, मन और हृदय भी उससे प्रभावित होते हैं। लेकिन जो व्यक्ति नर्वस ब्रेक डाउन में है वह ध्यान से शुरूआत नहीं कर पाएगा। वह अपने केन्द्र तक नहीं पहुंच पाएगा। तो शुरूआत वहां से करना जहां बीमारी का मुख्य स्रोत है।

मुझे याद आता है बुद्ध की प्रसिद्ध किताब धम्मपद पर बोलते हुए ओशो ने एक सूत्र का उल्लेख किया। बुद्ध कहते हैं कि विषयों में रस न लेने वाला व्यक्ति उस निष्कंप अवस्था को प्राप्त हो जाता है और मार उसे वैसे ही नहीं मार पाता, नहीं डिगा पाता जैसे आंधी-तूफान किसी पर्वत को नहीं हिलाते-डुलाते। मार, बौद्ध शब्दावली का एक खास शब्द है जिसे हम कह लें मन, जिसे दूसरी शब्द में कहा जाता है शैतान। अलग-अलग शब्द हैं उनका भाव पकड़ना, जो व्यक्ति स्वयं की चेतना में स्थित हो गया उसने चैतन्य के शैल शिखर को उपलब्ध कर लिया। और तब संसार के आंधी-तूफान उसे हिला-डुला नहीं पाते। इस पर बोलते हुए परमगुरु के अमृत वचनों को सुनो-

'आंधी आती है जाती है, कोई हिमालय उसे दिखता नहीं। पर तुम्हारे भीतर हिमालय की सीमित दशा होनी चाहिए। हिमालय एक प्रतीक है, बहुमूल्य। अर्थ केवल इतना है कि तुम जब भीतर अडिग हो, जब तुम्हें कुछ भी डिगाता नहीं, जब तुम ऐसे थिर हो जैसे शैल शिखर। आंधी आती है चली जाती है, तुम वैसे ही खड़े रहते हो जैसे पहले। तब तो ऐसा होगा कि

आंधी तुम्हें और स्वच्छ कर जाएगी, गिराना तो दूर, तुम्हारी धूल झाड़ जाएगी। तुम्हें और नया कर जाएगी, ताजा कर जाएगी। इसे ऐसा समझो कि तुम राह से गुजरते हो और एक सुंदर युवती पास से गुजर गई। इस सुंदर युवती ने जीवन की एक तरंग तुम्हारे पास से गुजारी। अगर तुम्हारी ऐसी चित्त की दशा है कि रस विषय में तो तुम कंप जाओगे, तो यह स्त्री का गुजर जाना या पुरुष का गुजर जाना तुम्हें ऐसे कंपा जाएगा जैसे कि कोई सूखे हुए वृक्ष को आंधी कंपा जाए। गिरने को हो जाए या गिर ही जाए। तब तुम पाओगे कि यह घटना दुर्भाग्यपूर्ण हो गई। लेकिन अगर तुम संयत हो, अगर तुम शांत हो, अगर तुम मौन हो और अडिग हो, अगर ध्यान की तुम्हारे जीवन में थोड़ी भी किरण उतरी, अगर तुमने थोड़ा सा भी जाना है कि चैतन्यता शांत हो जाना क्या है।

तुमने अगर अपने भीतर बैठने और खड़े होने की कला थोड़ी सी भी सीखी है और उस घड़ी में जब एक सुंदर युवती पास से निकली या एक सुंदर युवक पास से निकला अगर तुम अपने भीतर ध्यान में खड़ रहे तो तुम पाओगे कि उस स्त्री का सौंदर्य वह जीवन की धारा तुम्हें निखार गई, तुम्हें ताजा कर गई, तुम्हें प्रफुल्लित कर गई। जैसे आंधी निकल गई हो और वृक्ष पर जमी हुई धूल वर्षों की झड़ गई हो, वृक्ष और ताजा हो गया। जीवन के देखने के ढंग पर सबकुछ निर्भर है। अगर तुम्हारे देखने का ढंग गलत है तो जीवन तुम्हारे साथ जो भी करेगा वह गलत होगा, तुम्हारा देखने का ढंग सही है तो जीवन तो यही है, कोई और दूसरा जीवन नहीं है। लेकिन तब तुम्हारे साथ जो भी होगा वही ठीक होगा।'

आज का दूसरा प्रश्न है, क्या आत्महत्या करना पाप है? मेरी एक सहेली कहती है कि जिसके जीवन में सारी दिशाओं से निराशा, अंधेरा छाया होता है उसे जीवित रहने के बजाय मर जाना ही सुकून देता है। दुनिया वालों को भी शांति मिलेगी, फिर इसमें गलत क्या है?

निरंजना, तुम गलती में हो। जिसे तुम आत्महत्या कह रही हो वास्तव में वह आत्महत्या नहीं केवल देह की हत्या है। फिर पुनर्जन्म मिल जाएगा, फिर वही कहानी शुरू हो जाएगी, कुछ लाभ न होगा, सिर्फ समस्याएं स्थगित हो जाएंगी, अगले जन्म में फिर उन्हीं समस्याओं से जूझना होगा। तो बेहतर है कि अपनी समस्याओं को अभी सुलझाना सीखो, स्थगित करने से कोई भी लाभ नहीं। किसी कवि ने लिखा है–

कहीं से मौत को लाओ कि गम की रात कटे,
मेरे ही शोक मनाओ की गम की रात कटे।
करे न पीछा मेरा जिंदगी को समझा दो,
यह राह उसकी भुलाओ कि गम की रात कटे।
कहीं बहार में अब शाखे दिल न होगी हरी,
खिजां की गीत सुनाओ कि गम की रात कटे।
कहीं से मौत को लाओ कि गम की रात कटे।

लेकिन यह कवि भूल में है, मौत भी आ जाएगी लेकिन गम की रात नहीं कटेगी, अगले जन्म में फिर लगातार रहेगी। समस्याओं को पीछे धक्का मारने से कुछ लाभ नहीं, बेहतर हो कि आज ही सुलझा लो। ताकि अगला जन्म अगर हमारा हो तो और भी सुलझा हुआ हो। अगर

आत्महत्या ही करना है तो तुम्हारी सहेली को बताना, निर्वाण को उपलब्ध करना असली आत्महत्या है, उसमें आत्मा सदा–सदा के लिए परमात्मा में विलीन हो जाती है, मुक्ति होती है फिर इस शरीर में आवागमन नहीं होता। तो मैं सच्ची आत्महत्या सिखाता हूं, वह आत्मरूपांतरण के द्वारा प्राप्त होती है। और तुम कह रही हो कि तुम्हारी सहेली कहती है कि मर जाने से सुकून मिलेगा, नहीं मिलेगा। भूत–प्रेतों की कहानियां नहीं सुनी, मर गए लेकिन सुकून कहां मिला, अभी भी वही कहानी चल रही है, बिना शरीर के भी लोगों को सताने में लगे हुए हैं। और तुम्हारी सहेली कहती है कि इससे दुनिया वालों को शांति मिलेगी, वह बड़ी भ्रम में है। उसको जरा समझाना, जगाना। दुनिया सदा–सदा से अशांत है और ऐसी ही अशांत रहेगी। यह भी तुम्हारा अहंकार है कि तुम्हारे कारण लोग अशांत हैं, दुखी हैं, तुम विदा हो जाओगी तो बड़ी शांति हो जाएगी, यह भी तुम्हारा अहंकार है। नहीं, अपने आपको इतना महत्व न दो, दुनिया तुम्हारे होने–न होने से अशांत नहीं होती।

अगला सवाल पूछने वाले हैं स्वामी बोध यात्री काठमाण्डू नेपाल से, पूछते हैं कि प्रभु प्राप्ति का कौन सा मार्ग सरलतम है? साधना के मार्ग पर एक बार अहंकार विलीन हो जाने पर क्या पुनः वापिस आ सकता है?

क्या बात है, आज कल सारे सवाल नेपाल के लोगों के ही हैं? बोधयात्री, एक बार मैं नेपाल काठमाण्डू से पोखरा जाने के लिए एयरपोर्ट में था। एक शराबी नशे में धुत्त बाहर खड़ा हुआ था, एक वर्दीधारी युवक सामने से गुजरा। उस शराबी ने आवाज लगाई, कहा कि ऐ ड्राइवर, टैक्सी लेकर आओ, पोखरा जाना है। वह युवक गुस्से में आकर बोला कि दिखता नहीं, शराब पिए हो क्या, मैं टैक्सी ड्राइवर नहीं, पायलट हूं। वह शराबी मुस्कुराकर बोला कि यार, नाराज क्यों होते हो, पायलट हो तो चलो एक हवाई जहाज ही लाओ। अगर तुम्हारा लक्ष्य तय है कि कहां तुम्हें पहुंचना है तन, मन और हृदय के तल से भीतर चेतना के केन्द्र में पहुंचना है तो फिर हवाई जहाज भी काम करेगी और टैक्सी भी काम करेगी, सब मार्ग काम करेंगे।

मुख्यरूप से सात प्रकार के मार्ग हैं। कर्मयोग, तंत्रयोग, हठयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, राजयोग और सांख्ययोग। अगर तुम्हें लगता है कि सात बहुत ज्यादा हो गए बोधियात्री, तो तुम्हें यात्रा के लिए आसान करके समझा देता हूं, मुख्य रूप से दो मार्ग हैं– साक्षी का मार्ग और प्रेम का मार्ग। दूसरे शब्दों में योग का मार्ग और भक्ति का मार्ग। बस इन दो मार्गों से चले चलो। एक जमीन का मार्ग है और एक आकाश का मार्ग है। अगर तीव्र गति से पहुंचना है तो भक्ति मार्ग से पहुंच जाओगे, जरा धीरे–धीरे चलना है तो उसका अपना मजा है। काठमाण्डू से पोखरा टैक्सी से जाओ तो रास्ते के सुंदर दृश्य दिखाई देते हैं, हवाई जहाज से जाओगे तो सारे दृश्य न दिखाई देंगे। और तुमने पूछा है कि क्या साधना के मार्ग पर एक बार अहंकार विलीन हो जाने से पुनः दुबारा आ सकता है? नहीं, अहंकार एक भ्रम है, भ्रम टूटा तो सदा–सदा के लिए टूटा।

मैंने सुना है एक दार्शनिक महोदय पत्र लिख रहे थे, लिफाफे पर एड्रेस लिख रहे थे और तभी अचानक बड़े चिंतित हो उठे। उनकी पत्नी ने पूछा कि आप अचानक चिंतित क्यों हो गए? दार्शनिक महोदय ने कहा कि अभी–अभी मेरी जीभ पर था और अब गायब हो गया। पत्नी ने

कहा कि कोई बात नहीं, भूल गए कोई चीज तो फिर याद आ जाएगी, एक–दो मिनट रिलैक्स हो जाओ। दार्शनिक महोदय ने कहा कि नहीं, कोई बात नहीं थीं, वह तो लिफाफे में चिपकाने की टिकिट थीं। एक बार गायब हुआ सो हुआ, वह अब वापिस आने वाला नहीं। ठीक इसी प्रकार अहंकार एक बार मिटा सो मिटा।

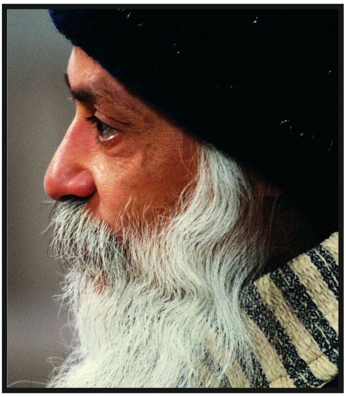

अध्याय–50

स्वर्ग-नर्क: मनस्थितियां

आज का पहला प्रश्न है, शास्त्रों में वर्णित स्वर्ग–नर्क के विषय में ओशो का क्या मंतव्य है? पूछ रहे हैं स्वामी वीत बस्ती उत्तर प्रदेश से।

जिस स्वर्ग–नर्क की चर्चा है वह कोई भौगोलिक स्थिति नहीं, बल्कि हमारी मानसिक अवस्था का नाम है। कभी हम स्वर्ग में होते हैं कभी हम नर्क में होते हैं। जब हम नकारात्मकता में जीते हैं तब हम नर्क में पहुंच जाते हैं, जब हम विधायक भावदशा में होते हैं हम स्वर्ग में पहुंच जाते हैं। ऐसा नहीं सोचना कि मरने के बाद स्वर्ग नर्क मिलते हैं। मरने के पहले भी स्वर्ग नर्क मौजूद ही हैं। और यह कोई फिक्स्ड पोजीशन नहीं है, एक फलैक्सिबल स्थिति है। जरा–जरा में बदल जाती है। ओशो के प्रवचन में एक झेनफकीर की कहानी आती है, एक सम्राट ने आकर उससे पूछा कि स्वर्ग नर्क के बारे में आपका क्या कहना है? उस फकीर ने कहा कि सैद्धांतिक उत्तर दूं या प्रेक्टिकली, व्यवहारिकरूप से ही बता दूं?

सम्राट ने कहा कि सिद्धांत से क्या लेना–देना, कुछ अनुभव ही करा दीजिए, प्रेक्टिकल कोई बात बताइए? उस फकीर ने कहा कि तुम्हारे जैसा मूर्ख और कुरूप इंसान मैंने आज तक नहीं देखा। अचानक यह वक्तव्य सुनकर सम्राट तो बौखला गया। वह आया है बड़ी उंची बात पूछने स्वर्ग–नर्क के बारे में, परलोक के बारे में और यह फकीर की हिम्मत तो देखो, यह कह रहा है कि तुम्हारे जैसा कुरूप और मूर्ख इंसान कभी नहीं देखा। सम्राट को क्रोध आ गया और उसने तलवार निकाली और बस फकीर को मारने ही वाला था कि फकीर ने कहा कि रुको,

यह देखो, यह है नर्क का द्वार। सम्राट ने आंख बंद की, अपने भीतर गुस्से की अग्नि को देखा। फकीर ने कहा कि जिस नर्क का वर्णन शास्त्रों में है कि नर्क में आग जलती है वह यही क्रोध की आग है जो तुम्हें अभी जला रही है, यह है नर्क। सम्राट को बात समझ में आई कि फकीर ने बड़ी कृपा की, प्रेक्टिकली दिखा दिया कि नर्क क्या होता है। वह धन्यवाद भाव में फकीर के चरणों में झुका, तलवार वापस की, उसके चरण स्पर्श किए, जब वह अहोभाव से झुक रहा था झेन फकीर ने कहा कि यह है स्वर्ग का द्वार। स्वर्ग–नर्क हमारी अंतर्दशाएं हैं। सामान्यतः लोग कहते हैं कि स्वर्ग है ऊपर आकाश में, नर्क है कहीं नीचे पृथ्वी में, पाताल में, यह बात गलत है लेकिन प्रतीकात्मकरूप से ठीक है।

हमारी उर्जा का जब उर्ध्वगमन होता है, सहस्त्रार के अंतर्आकाश में शक्ति पहुंचती है जीवन की तब हम स्वर्ग में होते हैं और जब हमारी उर्जा का अधोगमन होता है तब हम नर्क में पहुंचते हैं। तो ऊपर और नीचे वाली बात भी काव्यात्मक ढंग से लेना। मुझे याद आता है गीता की सोलवें अध्याय की शुरूआत में कृष्ण गिनाते हैं असुरी और देवींय संपदाएं। अर्जुन से कहते हैं कि सुन, देवींय संपदाएं क्या हैं और असुरीय संपदाएं क्या–क्या हैं? देवींय संपदा वाला व्यक्ति स्वर्गासीन होता है आसुरी संपदा वाला व्यक्ति नर्क में जीता है। देवींय संपदाओं में वह गिनाते हैं अभय, अंतःकरण का शुद्धिकरण, ज्ञानयोग में दृढ़ स्थिति, दान, इन्द्रिय दमन, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शांति, किसी की निंदा नहीं, दया भावना, करुणा, अलोलुपता, कोमलता, तेज, क्षमा, धैर्य की भावना, किसी से द्वेष नहीं, व्यर्थ कर्मों का अभाव और अंत में निर्अहंकारिता। यह हैं दिव्य गुण, डिवाइन क्वालिटीज। भगवान कृष्ण कहते हैं, जो व्यक्ति इनमें स्थित होता है वह स्वर्ग में जीता है और इसके ठीक विपरीत जो गुण हैं वे हैं असुरीय गुण। उनमें जीने वाला व्यक्ति नर्क में पहुंच जाता है। पहुंच नहीं जाता, नर्क में जीता है। भगवान श्रीकृष्ण के इन वचनों को समझाते हुए ओशो ने जो कहा वह जरा गौर से सुनो, तुम्हारे प्रश्न का उत्तर उसमें मिल जाएगा–

'जिन नर्कों की चर्चा है शास्त्रों में, जिन स्वर्गों का का उल्लेख है वे दो भौगोलिक स्थितियां नहीं हैं, मानसिक दशाएं हैं। नर्क भी प्रतीक है, स्वर्ग भी प्रतीक है। शास्त्रों में शैतान की और भगवान की जो चर्चा है वे केवल आपके ही दो छोर हैं। न तो शैतान कहीं खोजने से मिलेगा और न ही भगवान कहीं खोजने से मिलेगा। भगवान आपसे अलग होता तो खोजने से मिल सकता था, शैतान भी अलग होता तो खोजने से मिल जाता, वे दोनों ही आपकी संभावनाएं हैं। चाहें तो शैतान हो सकते हैं, कोई भी रुकावट नहीं है और चाहें तो भगवान हो सकते हैं, इसमें भी कोई रुकावट नहीं है। और जिस दिन आप शैतान हो जाएंगे तो कोई शैतान आपको नहीं मिलेगा, आप ही अपने को मिलेंगे, जिस दिन आप भगवान हो जाएंगे तो भी कोई साक्षात्कार नहीं होगा, कोई परमात्मा की प्रतिमा नहीं होगी। आप ही परमात्मा हो गए हो। शैतान और भगवान आपकी संभावनाएं हैं। और जो बुरे से बुरा आदमी है उसके भीतर परमात्मा की संभावना उतनी ही मात्र है जितनी भले से भले आदमी के भीतर शैतान होने की संभावना है। परमसाधु एक क्षण में परमअसाधु हो सकता है। विपरीत भी सही है।

परमअसाधु के लिए क्षण भर में क्रांति घटित हो सकती है क्योंकि दोनों ही बातें दूर नहीं हैं, हमारे भीतर मौजूद हैं। जैसे हमारे दो हाथ हैं, जैसे हमारी दो आंखें हैं ऐसे ही हमारे दो यात्रा पथ हैं और उन दोनों के बीच हम हैं, हमारा फैलाव है।

स्वामी वीत संदेह, तुमने कहानी सुनी होगी बाल्याभील की। नारद मुनि की छोटी सी बात से प्रभावित होकर जो ऋषि बाल्मीकि बन गया। तुमने कहानी सुनी होगी महाहत्यारे अंगुलिमाल की, जो गौतमबुद्ध के संपर्क में आकर बौद्ध भिक्षु बन गया। पहले नर्क में जी रहा था अचानक स्वर्ग में पहुंच गया। तो स्वर्ग नर्क को बाहर मत देखना, परलोक मत समझना, वह हमारा अंतसलोक है। और हम पर निर्भर है कि हम कहां जाना चाहते हैं, हम वहीं पहुंच सकते हैं। कोई हमें भेज नहीं रहा है, हमारी समझ हमें स्वर्ग में ले जाएगी, हमारी नासमझी हमें नर्क में गिरा देगी।

दूसरा सवाल है श्याम कुमार जयपुर से जो आएं हैं वह पूछ रहे हैं, मेरे दिल का दर्द इस गीत में अभिव्यक्त हुआ है–

किस्मत बिगड़ी दुनिया बदली फिर कौन किसी का होता है,
ऐ दुनिया वालो सच तो कहो क्या प्यार भी झूठा होता है?
जब बुरा जमाना आता है साया भी जुदा हो जाता है,
वही दिल पर चोट लगाता है जो दिल को प्यारा होता है।
दुनिया में वफा का नाम नहीं, दुनिया में जफा का काम नहीं,
सब जिसको मोहब्बत कहते हैं, नादान वह धोखा होता है।
तूफान से कश्ती बच निकली, साहिल पे पहुंचकर डूब गई,
भगवान तुम्हारी दुनिया में, अंधेर यह कैसा होता है?

श्यामकुमार, तुम्हारे गीत में तुम्हारा दर्द तो व्यक्त हो रहा है किन्तु उसका कारण इसमें स्पष्ट नहीं है। प्यार में धोखा नहीं है, धोखा तुम्हारे भीतर है। तुम्हारा मन एक प्रोजेक्टर है और दूसरे व्यक्ति के ऊपर, प्रेमपात्र के ऊपर वह कुछ प्रोजेक्ट कर रहा है, कुछ चित्र प्रक्षेपित कर रहा है और तुम्हें वही दिखाई दे रहा। रात टाकीज में फिल्म देखते हो, वह पर्दा तो दिखाई नहीं देता जो वास्तव में है किन्तु प्रोजेक्टर से जो चित्र पर्दे पर पड़ रहा है वही हमें दिखाई देता है। पर्दा छिप जाता है ठीक ऐसे ही हम अपने आसपास के लोगों पर, व्यक्तियों पर, वस्तुओं पर, परिस्थितियां पर अपने मन का प्रक्षेपण करते रहते हैं, वह व्यक्ति तो हमें पता ही नहीं चलता कि वह कौन है, वह क्या है, हमें अपने सपने, अपनी कल्पनाएं ही नजर आती हैं, वे ही दिखाई देते हैं।

निश्चितरूप से बीच बीच में यथार्थ प्रगट होगा, सपना टूटेगा। और तब तुम परेशान होओगे कि किसी ने धोखा दे दिया। यह व्यक्ति पहले तो ऐसा न था, अब ऐसा क्यों हो गया बेवफा। नहीं, कोई बेवफा नहीं है। वह व्यक्ति पहले भी ऐसा ही था लेकिन तुम उसको देख ही नहीं रहे थे। तुम अपना सपना प्रोजेक्ट करके देख रहे थे, तुम चाहते हो कि वह व्यक्ति कैसा हो, तुम उसका प्रक्षेपण उस पर कर रहे थे, तुम अपनी ही फिल्म को देख रहे थे, उस व्यक्ति को नहीं। तो चौको, जागो और प्रक्षेपण करना बंद करो। कोई किसी को धोखा नहीं दे रहा है लेकिन हम खुद ही धोखा खाने में उत्सुक हैं और धोखे का कारण दूसरे में नहीं, हमारे भीतर है। जब तक तुम कामना और वासना से भरे हो, तुम चाहते हो कि ऐसा हो तब तक तुम अपने

सपने प्रोजेक्ट करते ही रहोगे। हालत ऐसी है प्रेम संबंधों की कि जैसे दो भिखारी आमने-सामने कटोरा लिए खड़े हों, दूसरे ही दूसरे में वह सम्राट को देख रहे हैं कि कोई उन्हें कुछ दे देगा, वे शोषण करने में उत्सुक हैं एक-दूसरे का। दोनों ही उत्सुक हैं उसी में, कि दूसरे से कुछ मिल जाए। यह भिखमंगापन प्रेम नहीं है, तुम कुछ देने के भाव में नहीं हो। अभी-अभी मैंने कहा न भगवान कृष्ण का वचन, देवीय संपना है दान। दान यानि बांटने की भावना। लेकिन कौन दे सकेगा, जिसके पास हो। जिसके भीतर आनंद और शांति का खजाना है, जिसके भीतर प्रेम, करुणा और दया है वही दूसरे को दे सकता है।

लेकिन हम तो दूसरे से मांगने चले। और हालत यह है कि दूसरा भी हमसे मांगने आया है। उसको हमारा कटोरा दिखाई नहीं दे रहा है और हमको उसका कटोरा नहीं दिखाई दे रहा है। दोनों धोखे में पड़ जाएंगे लेकिन यह धोखा टूटेगा जब दूसरे से मिलेगा नहीं लंबे समय तक फिर सपना टूटेगा। फिर बड़ी मुश्किल खड़ी होगी। तो धोखे को समझो, प्यार में धोखा नहीं है, प्यार तो बहुत पवित्र भावना है लेकिन वह सच्चा प्यार हमारे भीतर है ही नहीं। क्या तुम्हारे भीतर दूसरों को देने का भाव है। वह तो तभी घटित होगा जब तुम ध्यान में डूबो, जब तुम शांत हो जाओ, प्रफुल्लित हो जाओ, तुम्हारा जीवन परमानंद से लबालब हो, सच्चिदानंद से ओतप्रोत हो तब तुम्हारे भीतर से कुछ बाहर बहेगा।

जैसे फूल खिलता है तो उसकी खुशबू चारों तरफ हवाओं में बिखर जाती है, ठीक ऐसे ही जब भीतर चैतन्य का फूल खिलता है ध्यान और समाधि घटित होती है। उस समाधि के सुमन की सुवास है प्रेम। बुद्ध ने तो ध्यान के साथ अनिवार्य रूप से करुणा की चर्चा की। सच पूछो तो प्रेम और करुणा कसौटी हैं ध्यान की। अगर ध्यान वास्तव में फलित हुआ है तो प्रेम झरेगा। जैसे दीपक के जल जाने पर प्रकाश चारों तरफ फैलता है, ठीक वैसे ही अगर भीतर ध्यान का दीया जल गया तो प्रेम का प्रकाश चारों ओर फैलेगा। उस प्रेम में तुम्हें स्थित होना है, उस प्रेम को जानना है, उसे पाना है, उसे जीना है और उसके लिए तुम्हें साधना करनी होगी। तो तुम्हारा दर्द तो व्यक्त है लेकिन उसका कारण अगर तुम समझ जाओ तो फिर दूसरे पर दोष नहीं लगाओगे, दूसरे पर तुम नाराज नहीं होओगे बल्कि अपने भीतर साधना में डूबोगे। चलो अच्छा हुआ, इस परिस्थिति का उपयोग कर लो। और तुमने अरशद भोपाली जी के जिस गीत का जिक्र किया है उसकी आखिरी पंक्ति तुमने छोड़ दी, वही तुम्हारे काम की है। मैं तुम्हें सुनाता हूं वह-

नेकी का नतीजा नेकी है, अंजाम बुराई का है बुरा,
कानून यही है कुदरत का, कोई कुछ भी कहे क्या होता है।

प्रकृति एक नियम से चल रही है, कुदरत के कानून को समझो। यहां तुम जो देते हो वही तुम्हें मिलता है। अक्सर मैंने देखा है कि प्रेमी-प्रेमिका एक-दूसरे को खूब धोखा देते हैं, औपचारिकता, दिखावट, रंगरोगन, मेकअप, दूसरे को खूब धोखा दिया जा रहा है, दोनों ही धोखा दे रहे हैं। बदले में फिर वही मिलेगा। काश, तुम प्रामाणिक रूप से प्रेम कर सको तब तुम्हें प्रामाणिक रूप से प्रेम मिलेगा।

अगला प्रश्न है, भगवान बुद्ध सम्यक वाणी को आष्टांगिक मार्ग में

गिनते हैं, वाणी का इतना महत्व क्यों माना जाता है? मां आनंद प्रज्ञा काठमाण्डू से पूछ रहीं हैं।

गौतमबुद्ध मध्यम मार्ग के पक्षपाती हैं। दो अतियां हैं, दोनों के ठीक बीच में आ जाओ। वाणी के संबंध में भी वही बात है। बाहर हैं स्थूल कर्म, भीतर हैं सूक्ष्म विचार और भाव, दोनों के बीच में है वाणी। वाणी अर्थात प्रगट हो रहे विचार और विचार अर्थात अप्रगट वाणी। तो किसी भी चीज की शुरूआत भीतर विचार और भाव से होती है लेकिन वह तो बड़ा सूक्ष्म है, उसके प्रति जागरूक होना भी बड़ा कठिन है। फिर वह बनता है वाणी, हमसे बाहर प्रगट होता है और वाणी के बाद बनता है कर्म।

समझो आपको क्रोध आया, तो क्रोध एक सूक्ष्म भाव है, फिर आपने अपशब्द बोलना शुरू किया, अब वाणी में प्रगट होना शुरू हुआ और इसके बाद फिर कर्म आया, मारपीट हो गई, लड़ाई–झगड़ा हो गया, तलवारें निकल आईं। कर्म बहुत स्थूल हैं लेकिन कर्म से वापिस लौटना भी संभव नहीं। तुमने पिस्तौल का ट्रेगर दबा दिया, गोली चल पड़ी तो अब बहुत मुश्किल है, अब गोली वापिस नहीं लौट सकती। अब तो इसके प्रतिकर्म और प्रतिक्रियाएं ही होंगी। अब तुम एक बुरे जंजाल में फंसे। वाणी से वापिस लौटा जा सकता था, जब गोली नहीं चली थीं, सिर्फ बोली चली है, तुमने कुछ अपमान जनक शब्द कहे हैं तो तुम क्षमा भी मांग सकते हो। यहां से रिवर्स गियर पासिबल है।

वाणी के प्रति जो जागरूक हो गया वह ध्यान में स्थित होना शुरू हो गया और धीरे–धीरे वाणी के साथ–साथ विचारों की जागरूकता बढ़ती चली जाएगी, क्योंकि विचार और वाणी जुड़े हैं इसलिए वाणी का बहुत महत्व है। अगर तुम्हारी वाणी सम्यक हो जाए तुम जिंदगी की 99वे प्रतिशत उलझनों से बच जाओगे। इसलिए गौतमबुद्ध ने आष्टांगिक मार्ग में सम्यक वाणी को गिनाया। किसी कवि ने यह प्यारे दोहे लिखे हैं सुनो–

चाहे गीता वाचिए या पढ़िए कुरान,
तेरा मेरा प्यार ही हर फस्तक का ज्ञान।
छोटा करके देखिए जीवन का विस्तार,
आंखों बस आकाश है, बाहों बस संसार।
सबकी पूजा एक सी अलग–अलग है रीत,
मस्जिद जाए मौलवी कोयल गाए गीत।

कोयल की गीत जैसी ही तुम्हारी वाणी हो। सम्यक वाणी, मधुर वाणी। और तब तुम पाओगे कि जीवन की बहुत सी उलझनों से बच गए और अंतर्यात्रा बड़ी सुगम हो गई।

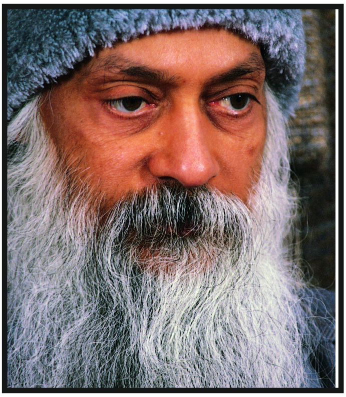

अध्याय–51

ओशो व कृष्ण का संन्यास

पहला प्रश्न स्वामी ध्यान सत्यार्थ नेपाल से पूछते हैं, संन्यास दीक्षा के बारे में बुद्ध और महावीर का मार्ग अति कठिन है, संसार छोड़ना पड़ता है। जनक और कृष्ण का संन्यास बहुत सरल है, सिर्फ फलाकांक्षा को त्यागना है। संन्यास के संबंध में ओशो की क्या दृष्टि है, कृपया समझाइए?

तुम्हारे प्रश्न पूछने में भूल है, तुम बात को ठीक से समझ नहीं पाए ध्यान सत्यार्थ। कृष्ण और जनक का मार्ग है कठिन, फलाकांक्षा को त्यागना बहुत कठिन है। कर्म को और संसार को छोड़ना कौन नहीं चाहता इसलिए तो बुद्ध और महावीर को इतने अनुयायी मिल गए। उनके जीवन काल में ही चालीस हजार, पचास हजार लोग उनके पीछे चल रहे थे, उन्होंने संसार को त्याग दिया, भिक्षा मांगने लगे। कृष्ण को अनुयायी नहीं मिला, अष्टावक्र को सिर्फ एक ही अनुयायी मिला जनक, दूसरा नहीं। अब तुम समझ लो किसका मार्ग कठिन है? कौन आदमी है जो संसार छोड़कर नहीं भागना चाहता, कौन है जो पत्नी और बच्चों से परेशान नहीं हो गया है, संसार के कर्तव्य निभाते–निभाते थक नहीं गया है।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने आकर उससे कहा कि सुनो जी, मैं डेंटिस्ट के यहां दांत उखड़वाने जा रही हूं तुम जरा बच्चों को सम्हालना। नसरुद्दीन एक दम से उठकर खड़ा हो गया, कोट पहन लिया और बोला कि देवी जी, बच्चों को तुम सम्हालो दांत मैं उखड़वा के आता हूं। बच्चों को सम्हालना, घर–गृहस्थी चलाना, समाज के उत्तरदायित्व निभाना बहुत कठिन काम हैं। कर्म को छोड़ना तो हम सभी चाहते हैं। कृष्ण बड़ी कठिन बात

कह रहे हैं, वे कह रहे हैं कर्म मत छोड़ो, केवल फल की आकांक्षा का त्याग करो। इस संबंध में गीता में जब वे संन्यास की चर्चा करते हैं तो वे कहते हैं कि विलक्षण हैं वे पुरुष। विलक्षण शब्द का प्रयोग ही बताता है कि कृष्ण की स्वयं की मनसा क्या है। इसे वे सर्वश्रेष्ठ कहते हैं। लेकिन ऐसे लोग विरले ही होते हैं, कभी–कभार। गीता पर बोलते हुए ओशो ने संन्यास की इस धारणा को बड़े विस्तार से समझाया है, एक छोटा सा प्रवचनांश सुनो–

कृष्ण कहते हैं कि कितने ही पंडित जन काम और कर्मों के त्याग को संन्यास कहते हैं और कितने ही विलक्षण पुरुष सब कर्मों फल के त्याग को त्याग कहते हैं। लेकिन कृष्ण कहते हैं कि ऐसे भी विलक्षण पुरुष हैं, इनको विलक्षण कहते हैं। वह कहते हैं कि इनको बड़ी अनूठी दृष्टि उपलब्ध हुई है। इनकी दृष्टि अनूठी है, साधारणतः समझ में न आएगी। पहले तरह के जो लोग हैं उनकी बात साधारणतः समझ में आ जाती है, अड़चन नहीं है। जरूरत की बात करो, फालतू की बात छोड़ दो। इसलिए पहले तरह के पुरुषों का भारी प्रभाव पड़ा है। महावीर, बुद्ध सभी पहली तरह के पुरुष हैं। दूसरी तरह के पुरुष तो कृष्ण हैं, जनक हैं, बड़े विलक्षण लोग हैं। वह कहते हैं कुछ छोड़ने की जरूरत नहीं है, छोड़ना पकड़ना क्या है, सिर्फ फल त्याग कर दो। वह कहते हैं कि फल की आकांक्षा बस न हो तो फिर तुम राज्य भी बनाना हो बनाए चलो जाओ, कोई हर्ज नहीं लेकिन फल की आकांक्षा न हो, पाने का कोई ख्याल न हो। लेकिन यह बात बहुत कठिन है।

तुम सारी दुनिया को धोखा दे सकते हो लेकिन अपने को कैसे दोगे। और असली सवाल अपना है, अपने भीतर तुम जरा भी देखोगे तो साफ पाओगे कि धोखा दे रहे हो, क्योंकि काम–फल तुम्हारे भीतर गूंजता ही रहेगा। वस्तुतः दुकान पर बैठे लोग, दुकान पर बैठना नहीं चाहते, मजबूरी है, फल पाने के लिए बैठना पड़ता है। अगर उन्हें भी कोई मिल जाए कि दुकान पर न बैठो, यह ताबीज ले लो इससे बिना कुछ किए फल की प्राप्ति होगी तो वह भी पहाड़ जाने को तैयार है। कौन नासमझ दुकान में बैठने का रस ले रहा है, लेकिन बिना दुकान में बैठे फल नहीं मिलता। बड़ा मकान बनाना है तो वह नहीं बनता, पहाड़ में बैठने से नहीं बनेगा इसलिए मजबूरी में वह काम में लगे हैं। अगर तुम बाजार में इस तरह हो सको जैसे तुम एकांत में होओ, तुम काम इस तरह कर सको जैसा कि फलाकांक्षी करता है बिना फलाकांक्षा के तो तुमने बड़ी विलक्षण दृष्टि पा ली, सबकुछ छोड़ने की जरूरत नहीं है। तब तो इतना ही समझना काफी है कि फल उसके हाथ में है, कर्म मेरे हाथ में है, करना मुझे है और फल देना न देना उसकी मर्जी है। फिर वह जो तुम्हें दे दे तुम उससे ही तृप्त हो, न दे तो न देने से तृप्त हो, छीन ले तो छिन जाने से तृप्त हो, फिर तुम्हारी तृप्ति को कोई नहीं तोड़ सकता इसको तुम कसौटी समझ लो। अगर तुम्हारी तृप्ति में अंतर पड़ता हो, दुकान में लाभ होता हो तो तुम्हारे पैर प्रसन्नता से चलते हों जिससे तुम तृप्त मालूम होते हो, हानि होती हो तो तुम उदास हो जाते हो, दीनहीन हो जाते हो, पैर लड़खड़ाने लगते हैं तो फिर मत समझना कि तुमने फलाकांक्षा का त्याग कर दिया है। बुद्ध और महावीर का मार्ग सरल है, जनक और कृष्ण का बहुत कठिन है। इसलिए वह कहते हैं कि कोई विलक्षण पुरुष, बहुत अनूठा व्यक्ति ही इसको साध पाता है।

ध्यान सत्यार्थ, एक बात तुम और जान लो, जब ओशो ने नवसंन्यास दीक्षा की शुरूआत की थीं वह शुरूआत भी तभी हुई थी जब हिमालय की गोद में मनाली में 1970 में ध्यान शिविर चल रहा था और ओशो भगवान श्रीकृष्ण की जीवन दृष्टि पर बोल रहे थे। तो याद रखना, कृष्ण की दृष्टि समझाते-समझाते इस नव संन्यास का आरम्भ हुआ था। तो निश्चितरूप से तुम पूछते हो ओशो की क्या दृष्टि है, ओशो की दृष्टि कृष्ण से मिलती-जुलती है। बल्कि मैं तो कहूंगा कि ओशो ने कृष्ण के इस कठिन मार्ग को सरल बनाया। कृष्ण सिर्फ इतना कहते हैं कि फलाकांक्षा का त्याग कर दो, निष्काम भाव से भर जाओ लेकिन कैसे भर जाओ इसकी विधि नहीं दी स्पष्ट रूप से। ओशो ने वह विधि हमें दी, ओशो कहते हैं वर्तमान के क्षण में जियो, वर्तमान के क्षण का आनंद लो, यह है टेकनीक। फलाकांक्षा परिणामस्वरूप घटित होगी, तुम सीधा फलाकांक्षा का त्याग साध नहीं सकते। कृष्ण की बात सुनने में कितनी ही अच्छी लगे और अष्टावक्र से तुम कितने ही प्रभावित हो जाओ फिर भी तुम उसे साध न पाओगे।

ओशो की बात साधी जा सकती है, जो व्यक्ति वर्तमान क्षण का आनंद लेने लगा, अभी जो कर्म कर रहे हैं हम उसी में हम खुश हैं, आनंदित हैं, प्रफुल्लित हैं तो निश्चितरूप से कौन फल की फिक्र करता है। अगर हमें बीज बोने में ही मजा आ रहा है, पानी सींचने में, खाद डालने में, बागवानी करने में हमें मजा आ रहा है तब फल की चिंता कौन करता है। फल तो अपने आप आएंगे, पेड़ अपने आप बड़ा होगा। वृक्ष को खींच-खींच कर बड़ा थोड़ी करना पड़ता है और फलों को निकालना थोड़ी पड़ता है पेड़ में से, पेड़ अपने आप फल देता है। तो फलाकांक्षा का त्याग कैसे हो ओशो ने इस विलक्षण बात में और भी विलक्षणता जोड़ दी, उन्होंने हमें टेकनीक दी निष्काम होने की। और वह है वर्तमान के क्षण में सुखी हो जाओ, क्षण-क्षण जियो, एक-एक क्षण का पूरा रस निचोड़ लो। तब भविष्य से मुक्त हो जाओगे। केवल दुखी मनुष्य ही भविष्य के सपने देखता है, भविष्य की आकांक्षा करता है, सारी कामनाओं का जड़ वर्तमान का दुख है। काश, वर्तमान में आने की कला आ जाए, वही ओशो का नवसंन्यास है।

दूसरा प्रश्न, क्या भगवान केवल भक्तों पर दया करते हैं? सभी पर समानरूप से क्यों नहीं करते? यह प्रश्न है जसवंत गोयल जी का दिल्ली से।

गोयल जी, भगवान तो सब पर एक सी दया करता है, उसकी तरफ से कम और ज्यादा जैसा कोई पक्षपात नहीं है। लेकिन ग्रहण करने वाले की तरफ से भेद हो सकता है। वर्षा तो सर्वत्र एक सी होती है बादलों से किन्तु पहाड़ जो अपने आपसे भरे हैं ठसाठस वे खाली रह जाते हैं और गड्ढे जो स्वयं से रिक्त हैं, शून्य हैं वे झीलें बन जाते हैं। सारा पानी अंततः सागरों में पहुंच जाता है तो तुमने कभी सोचा कैसे? क्योंकि सागर जो हैं वे धरती के सबसे बड़े गड्ढे हैं। प्रशांत महासागर पांच मील गहरा गड्ढा है। दुनिया में कहीं भी पानी गिरेगा अंततः वह सागर में पहुंच जाएगा। ठीक इसी प्रकार प्रभु की कृपा तो सब पर एक सी होती है लेकिन रिसीव करने वाला व्यक्ति उसकी कितनी पात्रता है उसके अनुसार ही वह ग्रहण कर

पाता है। तो भक्त जब चर्चा करते हैं कि उन पर भगवान की कृपा हुई तो तुम ऐसा नहीं सोचना कि तुम पर नहीं हो रही है, सब पर एक सी हो रही है। किन्तु भक्त उसका एहसास कर पा रहे हैं, उसे ग्रहण कर पा रहे हैं।

मैंने सुनी है एक सूफी फकीर की कहानी, एक युवक बारम्बार उसके पास आता था और कहता था कि मुझे कुछ ध्यान घटित नहीं होता, आनंद नहीं मिलता, ईश्वर की कृपा मुझपर क्यों नहीं होती? उस फकीर ने कई-कई तरीके से समझाया किन्तु उस युवक को समझ में नहीं आता था। वह फिर - फिर पूछता कि मुझे उसका कर्म हासिल नहीं होता, कुछ उपाय बताएं? उस फकीर ने कहा कि चल मेरे साथ कुएं पर लेकिन एक बात याद रखना, मुझसे कोई सवाल नहीं पूछना बीच में। उस युवक ने कहा कि ठीक है, चलता हूं। उस फकीर ने कहा कि बस वहीं तुझे उत्तर मिल जाएगा, पूछना भर मत, चुपचाप देखते जाना। वह फकीर चला, एक बाल्टी अपने साथ ले चला, बाल्टी में छेद ही छेद थे। उस युवक को थोड़ी हैरानी हुई कि वह छेद वाली बाल्टी से क्या करने जा रहा है फिर भी शर्त यह थी कि सवाल बस नहीं पूछना है इसलिए कुछ नहीं पूछा। वह फकीर कुएं पर पहुंचा, बाल्टी में रस्सी बांधी और नीचे बाल्टी लटका दी कुएं में, बड़ी आवाज हुई जोर की।

भीतर झांक कर देखा तो बाल्टी पानी में डूबी हुई थी, लग रहा था कि बाल्टी में पानी भरा है, धीरे-धीरे उसने रस्सी खींचनी शुरू की, बाल्टी के छेदों से पानी नीचे गिरता गया, जब तक बाल्टी ऊपर आई बिल्कुल खाली थी। फकीर ने कहा कि अरे बाल्टी तो खाली है और फिर बाल्टी डाल दी। वह युवक चुपचाप देखता रहा, जब तीन-चार बार ऐसा रिपीट हो चुका तब उसने कहा कि क्षमा करें, अब मुझसे रहा नहीं जा रहा है, यह बाल्टी तो कभी नहीं भरेगी, कभी आप पानी न खींच पाएंगे। उस फकीर ने कहा कि तुम बोल पड़े बीच में, तुमसे कहा था चुपचाप देखते रहना, मैं तुम्हें पिछले बीस साल से देख रहा हूं, तुम भी इसी बाल्टी की तरह हो, तुममें कभी कुछ न भरा जा सकेगा।

जब तुम्हें लगे कि तुम पर प्रभु की कृपा नहीं हो रही है तो तीन बातों का स्मरण रखना- या तो तुम अहंकार से ठसाठस भरे हो पहाड़ की तरह, तब तुम कभी झील नहीं बन पाओगे या फिर तुम बिना पेंदी के लोटे हो, कि छेद वाली बाल्टी हो, तुम्हारे पात्र में छेद ही छेद हैं। जिन्हें षट्रिपु कहा जाता है काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार यह हमारे छेद हैं। प्रभु की कृपा बरसती है तो इन छेदों में से सब बह जाती है। कुछ इकट्ठा नहीं हो पाता। या फिर तीसरा कारण है तुमने अपना घड़ा उल्टा करके रखा है। मेघ बरसते हैं सावन-भादों के फिर भी तुम रिक्त रह जाते हो, रूखे-सूखे रह जाते हो, पानी तुममें भर नहीं सकता। याद रखना, मेघों की कृपा सब पर एक सी हो रही है। लेकिन तुम अपना घड़ा यदि सीधा न करोगे तो वर्षा का जल तुममें न भर सकेगा। तो तीन बातों का ख्याल रखना- अहंकार से मुक्त हो जाना, अपने छेदों को भर लेना अर्थात षट्रिपुओं से मुक्त हो जाना और घड़े को सीधा कर लेना।

हम जिसको ध्यान कह रहे हैं, भक्ति कह रहे हैं, प्रार्थना कह रहे हैं, साधना कह रहे हैं वह कुछ और नहीं, केवल घड़े को सीधा करने का नाम है। ताकि प्रभु की कृपा का एहसास

तुम्हें भी हो सके, वह सब पर हो रही है। तुम भक्त हो जाओ ताकि तुम्हें भी प्रभु की कृपा का एहसास हो सके। किसी शायर ने एक गजल लिखी है–

उम्र जलवे में बसर हो यह जरूरी तो नहीं,
हर सबे गम की शहर हो यह जरूरी तो नहीं।
जिंदगी सबको मिली हो यह जरूरी तो नहीं,
सबके होठों पे हंसी हो यह जरूरी तो नहीं।

अगर हम उल्टे खड़े हैं तो फिर हम पर कभी भी हंसी न आ सकेगी, मुस्कुराहट हमारे जीवन का हिस्सा न बन सकेगी।

ऐसे कुछ लोग हैं जो याद बहुत आते हैं,
उनको महसूस कमी हो यह जरूरी तो नहीं,
नींद तो दर्द के बिस्तर में भी आ जाती है,
उनकी आगोश में सिर हो यह जरूरी तो नहीं।

प्रभु की गोद में ही हम सबका सिर है, मुश्किल यह है कि हम सपने देख रहे हैं और हम दर्द के बिस्तर में पड़े हैं सपनों में, वास्तव में प्रभु के अतिरिक्त हमारा होना कहीं और है नहीं। जरा आंख खोलो, सपने तोड़ो।

लोग करते हैं मस्जिद में खुदा को सजदे,
उनके सजदे में असर हो यह जरूरी तो नहीं,
सबने ईसा को चढ़ते हुए सूली देखा,
सबकी आंखों में नमी हो यह जरूरी तो नहीं।
सबकी साकी पे नजर हो यह जरूरी है मगर,
सब पे साकी की नजर हो यह जरूरी तो नहीं।

गोयल जी, साकी की नजर सब पे है वरना जिंदगी की इस मधुशाला में हम होते ही नहीं। उसने हमें निमंत्रण दिया है पीने के लिए लेकिन हमारा पात्र टूटा–फूटा है, छिद्र से भरा है या पात्र ही नहीं है, ठसाठस पहले से ही भरा है। उसमें मदिरा ढाली नहीं जा सकती। मत कहो कि सबकी साकी पे नजर हो यह जरूरी है मगर, सब पे साकी की नजर हो यह जरूरी तो नहीं। उसकी नजर सब पर है। तुम उस तरफ थोड़ी नजर उठाओ।

आज का अंतिम प्रश्न, रागिनी मल्होत्रा अमृतसर से पूछती हैं, क्या कोई ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर आपके पास भी नहीं? मैं आपसे वही सवाल पूछना चाहती हूं?

बड़ा कठिन सवाल तुमने पूछ लिया, एक सवाल ऐसा है जिसका कोई तुम्हें उत्तर नहीं दे सकता, पता हो तो भी उत्तर नहीं दे सकता और वही असली आध्यात्मिक सवाल है, उसकी खोज तुम्हें स्वयं ही करनी होगी। और बाकी के जितने उत्तर दिए जा सकते हैं तो जानना कि वह सवाल ही महत्वपूर्ण नहीं है। सारे दर्शनशास्त्र गोल–गोल घूमते हैं।

मैंने सुना है कि एक बड़े पुलिस अफसर के घर के सामने एक बड़ा सा बगीचा था। उसमें एक गाय और बछड़ा भीतर घूम रहे थे, पेड़ों को चर रहे थे। संयोग की बात एक छोटा सा लड़का वहां से गुजरा, इंस्पेक्टर बाहर आया और कहा कि सुनो, तुमको पता है कि यह गाय–बछड़े किसके हैं? उसने कहा कि सर, आधी बात का मुझे पता है, आधी बात नहीं पता।

गाय किसकी है यह नहीं मालूम, बछड़ा किसका है यह मालूम है। उस पुलिस अफसर ने कहा कि चलो यही बताओ कि बछड़ा किसका है? उस लड़के ने कहा कि बछड़ा गाय का है। सारे राजनीतिज्ञ प्रश्नों के उत्तर बस ऐसे ही हैं। बछड़ा गाय का है लेकिन गाय किसकी है यह नहीं पता। असली सवाल तो बस एक है, वह सवाल है मैं कौन हूं, हू एम आई।

कोई दूसरा तुम्हें इसका उत्तर नहीं दे सकता, तुम्हें स्वयं अपने भीतर तलाशना होगा। किन्हीं शास्त्रों में लिखा नहीं, किन्हीं ज्ञानियों ने इसका जवाब दिया नहीं। ऐसा नहीं है कि लोगों को मालूम न था, उन्हें मालूम था किन्तु फिर भी यह बात बताई नहीं जा सकती। तुम्हें स्वयं ही खोजनी होगी। तुम्हें श्रम करना होगा, साधना करनी होगी, तुम्हें पात्र बनना होगा, तुम्हें भक्त बनना होगा, अपने भीतर ज्ञान की ज्योति जगानी होगी, वह जगती है ध्यान से। वह जगती है फलाकांक्षारहित कर्म से, वह जगती है निष्काम भाव से। अपने भीतर ध्यान में डूबो और तब तुम जानोगी तुम कौन हो, वही असली उत्तर है समस्त धर्मों का सार, संन्यास का लक्ष्य, समस्त अध्यात्म का सार सूत्र।

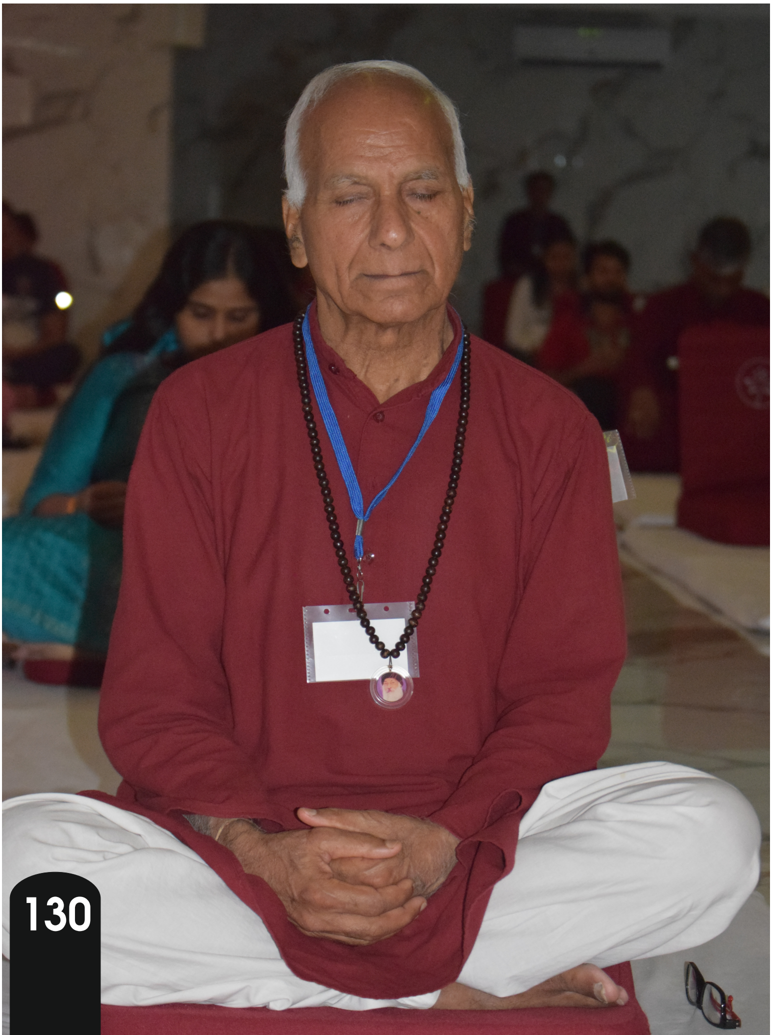

अध्याय–52

साधना की जरूरत

आदरणीय सद्‌गुरु, मां हसीना काठमाण्डू से पूछती हैं कि अष्टावक्र कहते हैं कि साधना की आवश्यकता नहीं, आप लोग सुरति साधना पर जोर देते हैं। कौन सी बात मानूं?

यह प्रश्न महत्वपूर्ण है। याद रखना, अष्टावक्र राजा जनक से बात कर रहे थे। जनक की स्थिति ऐसी थी जैसे किसी की नींद पूरी हो गई हो, जरा सा हिलाओ, ऊलाओ, थोड़ी सी आवाज दो और वह व्यक्ति उठकर बैठ जाए। इससे ठीक विपरीत स्थिति अर्जुन की थी। कृष्ण उसको बहुत जोर–जोर से हिला–डुला रहे किन्तु फिर–फिर वह सो–सो जाता। तो कृष्ण की गीता में और अष्टावक्र की गीता में फर्क समझना–

कृष्ण साधना करने पर जोर दे रहे हैं, अष्टावक्र कुछ न करने पर जोर दे रहे हैं। वे कह रहे हैं बस आंख खोलो, उठ जाओ, जागो और जनक जाग गए। जनक ने तुम्हारे जैसा सवाल नहीं पूछा कि कौन सी बात मानूं, कि मैं उलझन में पड़ गया हूं। कि यह सच कि वह सच। अष्टावक्र ने कहा जागो और जनक ने कहा कि अहो प्रभु, आपकी बड़ी कृपा कि आपने जगाया। अष्टावक्र ने कहा कि तू ब्रम्ह है, तू शांत है, तू शाश्वत है। जनक ने अपने पैर छू लिए, कहा कि अहो, मेरा मुझको नमस्कार। आश्चर्य! मैं शांत हूं, मैं ब्रम्हस्वरूप हूं। अभी तक मैं कैसे भटकता रहा, सपनों में खोया रहा। जनक ने सवाल नहीं पूछा कि क्या करूं। तो संदर्भ याद रखना कि अष्टावक्र ने उपदेश किसको दिया, भगवान कृष्ण ने उपदेश किसको दिया। अर्जुन जागना ही नहीं चाहता था, वो बहुत गहरी नींद में था। उसे जगाने की कोशिश की, सब प्रकार

के योग उसको समझाए, विषाद योग से लेकर सांख्य योग तक अठारह अध्याय गीता के। भांति–भांति से झकझोरा तब कहीं जाकर अर्जुन की नींद टूटी। तो गुरु क्या कहता है वह इस पर निर्भर करता है कि सामने शिष्य कौन है, कितना तैयार है। दोनों बातें ठीक हैं, साधना करनी भी पड़ती है, साधना छोड़नी भी पड़ती है और कभी–कभी साधना की कोई जरूरत ही नहीं होती। एक छोटी सी आवाज और तुम्हें अपनी याद आ जाती है।

तुमने जो सवाल पूछा है सुरति के बारे में, तो सुरति का अर्थ है स्मृति, सुमिरन, स्मरण, अपनी याद आ जाए। सोवियत रूस के जार्ज गुरुजियफ नामक एक संत कहा करते थे, सेल्फ रिमेंबरिंग, जिसको बुद्ध ने कहा है सम्मासती। अपनी याद आ जाए। हम भूल गए हैं संसार के दृश्यों में। हम आंख भी बंद करते हैं तो बाहर के ही दृश्य सपने बनकर भीतर तैरते रहते हैं। पुरानी यादें, भविष्य की योजनाएं, हमारा चित्त हमेशा दृश्य से भरा हुआ है या तो बाहर के वास्तविक दृश्य या आंतरिक काल्पनिक दृश्य से। यदि दृश्य से हमारी आंखें खाली हो जाएं तब हमें अपनी याद आती है या उसका उल्टा भी सच है, अगर अपनी याद आनी शुरू हो जाए, द्रष्टा का स्मरण होने लगे तो दृश्य विदा हो जाता है, सपना टूट जाता है। अब तुम पूछते हो कहां से शुरू करूं? नहीं, उलझन की कोई भी जरूरत नहीं है, तुम्हें यहीं से शुरू करना होगा सुरति साधना, अपनी याद से भरो। यही ज्यादा सरल है। कुछ विरले लोगों के लिए यह विधि काम आ सकती है कि बाहर के जगत को माया मानकर चलो। वह भी एक विधि है। याद रखना, यह कोई सैद्धांतिक सत्य नहीं है।

लोग इस पर विवाद करते हैं कि संसार सत्य है, कि माया। इसमें विवाद की जरूरत नहीं है। अगर तुम ऐसा मान सको तो ठीक, यह भी एक विधि की तरकीब की तरह है, तब जगत से तुम्हारी ऊर्जा वापिस स्वयं पर लौटने लगेगी। अगर जगत को स्वप्न मानने लगो तो सारी शक्ति खुद पर वापिस आ जाएगी और द्रष्टा का बोध होगा। या द्रष्टा के स्मरण से भरो कि मैं कौन हूं और तब अचानक दृश्य पर से तुम्हारी ऊर्जा हट जाएगी। तुम जिसे देखते हो वह तुम्हारे लिए सत्य हो जाता है। उलझन में पड़ने की कोई भी जरूरत नहीं। जो भी तुम कर सको अलग–अलग व्यक्तित्व के लोग हैं। हम सुरति साधना पर निश्चितरूप से जोर देते हैं क्योंकि हमारा मानना है कि अधिकांश लोग इसी विधि से अपने भीतर जा सकेंगे। स्वयं ओशो ने इस बात को समझाते हुए बड़ा प्यारा उदाहरण दिया है, एक प्यारी कविता सुनाई है जरा गौर से सुनो–

अष्टावक्र की देशना इतनी ही है कि जरा सी समझ, जरा सी पलक का खुलना और सब जैसा होना चाहिए वैसा है ही, कुछ करने को नहीं है, कहीं जाने को नहीं है, कुछ छुपाने को नहीं है।

खुले नयन से सपने देखो, बंद नयन से अपने,
अपने तो रहते हैं भीतर, बाहर रहते सपने।
नाम रूप की भीड़ जगत में, भीतर एक निरंजन,
सुरति चाहिए अंतर्द्रव को, बाहर द्रव को अंजन।
देखे को अनदेखा कर दे, अनदेखे को देखा,
क्षर लिख, लिख तू रहा निरक्षर, अक्षर सदा अलेखा।

समझो, खुले नयन से सपने देखो, बंद नयन से अपने। अपने तो रहते हैं भीतर बाहर रहते सपने। जो भी बाहर देखा है सपना है, अपने को देखना है तो भीतर। जो भी बाहर देखा

उसे अगर पाना चाहा तो बड़ी दौड़ दौड़नी पड़ेगी फिर मिलता कहां है। दौड़ पूरी हो जाती है हाथ कुछ भी नहीं आता। संसार का स्वभाव समझो, दिखता है सब लेकिन मिलता कुछ भी नहीं, लगता है यह रहा, जरा ही चलने की बात है, थोड़ा प्रयास और, जैसे क्षितिज छूता है, लगता है मील का बस फासला है दौड़कर पा जाएंगे, आकाश और जमीन जहां मिलती है वह जगह खोज लेंगे। फिर वहां से आकाश में चढ़ जाएंगे, लगा लेंगे सीढ़ी, स्वर्ग की सीढ़ी लगा लेंगे, मगर कभी वह जगह मिलती नहीं जहां आकाश पृथ्वी से मिलता है, बस दिखता है कि मिलता है, आभास। जिसको हिन्दुओं ने माया कहा है। प्रतीत तो बिल्कुल होता है कि यह दिखाई पड़ रहा है आकाश मिलता हुआ, होगा दस-पंद्रह मील, बीस मील, थोड़ी ही यात्रा है, लेकिन तुम जितना ही क्षितिज की ओर जाते हो उतना ही क्षितिज तुमसे दूर होता जाता है। दिखता सदा मिला-मिला लेकिन मिलता कभी नहीं। खुले नयन से सपने देखो, बंद नयन से अपने, अपने तो रहते हैं भीतर बाहर रहते सपने।

बाहर लगता है मिल जाएगा और मिलता कभी नहीं और भीतर लगता है कैसे मिलेगा और मिला ही हुआ है। ठीक संसार से विपरीत अवस्था है भीतर की। संसार देखना हो तो आंखें खोलो, सत्य देखना हो तो आंखें अपने भीतर खोलो। बाहर से आंख बंद करने का कुल इतना ही अर्थ है कि भीतर देखो। नाम रूप की भीड़ जगत में भीतर एक निरंजन, सुरति चाहिए अंतर्द्रव को बाहर द्रव को अंजल। बाहर ठीक-ठीक देखना हो तो आंख में हम काजल आंजते हैं। भीतर देखना हो तो भी बूढ़ों ने एक काजल इजाद किया है उसको कहते हैं सुरति, स्मृति, जागृति, समाधि। नामरूप की भीड़ जगत में भीतर एक निरंजन, सुरति चाहिए अंतर्द्रव को बाहर द्रव को अंजन। बाहर देखना हो तो आंज लो आंख ठीक-ठीक दिखाई पड़ेगा। भीतर ठीक-ठीक देखना हो तो एक ही अंजन है, निरंजन ही अंजन है। वहां तो एक ही बात स्मरण करने जैसी है, वहां तो एक ही प्रश्न जगाने जैसा है कि मैं कौन हूं।

एक अन्य प्रश्न में स्वामी भोलेनाथ मोरांग नेपाल से पूछते हैं, परमसंत मीराबाई गाती हैं- जो मैं ऐसा जानती प्रीत करे दुख होय, नगर ढिंढोरा पीटती प्रीत न करियो कोय। क्या प्रभु के प्रेम में इतना दुख मिलता है? अंसुअन जल सींच-सींच प्रेम बेर बोई, तो फिर भक्त विरह में जलना क्यों चुनते हैं?

भक्त की स्थिति को तीन खण्डों में बांटकर समझना- एक तो स्थिति है जब बाहर के दृश्यों से, बाहर के सपनों से मोह और राग बना हुआ है। फिर दूसरी स्थिति है बाहर से वैराग्य पैदा हो गया लेकिन अभी भीतर का राग, परमात्मा से प्रेम जन्मा नहीं। एक संक्रमण काल, एक ट्रांजिसनल फेज है उसमें बड़ा विरह सताता है। और फिर तीसरी स्थिति है भीतर स्वयं से मिलन हो गया, जीवात्मा और परमात्मा एक हो गए, भक्त भगवान स्वरूप हो गया। तब परमराग की अवस्था पैदा होती है। तो निश्चितरूप से जो तुम कह रहे हो कि भक्त विरह में जलते हैं, आंसू बहाते हैं, रोते हैं, तड़फते हैं, एक ट्रांजिसनल फेज से गुजरना होता है। बाहर के दृश्य को जिसे यथार्थ जान रखा था, जिसको सच मान इतने लंबे समय तक, जन्मों-जन्मों तक जीते रहे अचानक उसकी असत्यता का आभास होता है, तब बड़ी पीड़ा,

बड़ी जलन पैदा होती है। फिर एक दूसरी स्थिति आती है, बीच–बीच में आत्मस्मरण सधने लगता है, बीच–बीच में हरि का सुमिरन होने लगता है लेकिन थोड़े क्षणों के बाद वह फिर खो जाता है। एक आनंद की झलक मिलती है फिर विलीन हो जाती है तब बड़ी पीड़ा पैदा होती है। मीराबाई के आंसू देखकर तुम धोखे में नहीं पड़ जाना कि वे दुख में हैं, उन्हें महासुख की झलकें मिल रही हैं किन्तु उन झलकों के बाद छोटा सा दुख भी बहुत बड़ा दुख जान पड़ता है। संसारी क्या खाक दुख को जानेगा, आनंद की अनुभूति होने के बाद फिर महादुख का अनुभव होता है।

तुमने कभी गौर किया, रात अंधेरी सड़क पर तुम जा रहे हो फिर भी कुछ–कुछ तो दिखाई देता ही है तभी तो चल पाते हो। फिर अचानक सामने से तेज रोशनी वाला ट्रक गुजर जाता है, ट्रक के गुजर जाने के बाद अंधेरा बड़ा घना हो जाता है। अब तुलना हो गई, ट्रक तो गुजर गया लेकिन अगले एक–दो मिनट तक तुम्हें कुछ भी दिखाई न देगा, घनघोर अंधेरा हो गया। अंधेरा तो वहीं का वहीं है, बीच में थोड़ा सा प्रकाश आने पर अंधेरे की अनुभूति और सघन हो गई। ठीक ऐसे ही जब आनंद मिलता है तब महादुख का, पीड़ा का, विरह का एहसास होता है, बड़ी तड़फ पैदा होती है। सुनो यह गीत–

जिन्दा हूं इस तरह कि गमे जिंदगी नहीं,
जलता हुआ दिया हूं मगर रोशनी नहीं।
वह मुद्दतें हुई हैं किसी से जुदा हुए,
लेकिन यह दिल की आग अभी तक बुझी नहीं।

एक बार परमात्मा से मिलन होने लगे तो और–और विरह की आग जल उठती है।

आने को आ चुका था किनारा भी सामने,
खुद उसके पास मेरी ही नैया गई नहीं।

कई बार लगता है भक्त बिल्कुल पहुंच गया भगवान के नजदीक किन्तु फिर–फिर छिटक जाता है। बिल्कुल उस पार पहुंचना हो गया था फिर नाव भटक–भटक जाती है। यह ट्रांजिसनल फेज है।

होंठो पे आज आए हंसी क्या मजाल है,
दिल का मामला है कोई दिल्लगी नहीं।
यह रात, यह हवा, यह शमां सब है मांद–मांद,
जो तू नहीं तो इसमें कोई दिलकशी नहीं।

यह स्थिति बनती है कि जब परमात्मा नहीं फिर कोई भी रस जीवन में नहीं बचता। जो तू नहीं तो इनमें कोई दिलकशी नहीं। बड़ी पीड़ा होती है। लेकिन यह आधी कहानी है। तुमने मीराबाई का वचन तो कोट किया लेकिन वह आधा, अंसुअन जल सींच–सींच प्रेम बेल बोई, बाकी का आधा वचन तुमने छोड़ दिया, अब तो बेली फैल गई आनंद फल होई। यह बाद की अवस्था है, जब भगवान और भक्त दोनों एक हो जाते हैं।

तुमने कहानी सुनी होगी न, वृन्दावन के मंदिर में मीराबाई कृष्ण की मूर्ति में समा गई। वस्तुतः ऐसा हो नहीं सकता किन्तु फिर भी यह कहानी तथ्य न होते हुए भी सत्य है, भक्त

भगवान में समा जाता है।

तीसरा प्रश्न है, श्रीमती सीता काठमाण्डू से, पूछती हैं कि प्रिय गुरुवर एक बार मैं आपका शिष्यत्व ग्रहण कर लूं तब क्या आप मेरा हाथ कभी नहीं छोड़ेंगे?

मैं बिल्कुल गारंटी देता हूं, जरूर तुम्हारा हाथ छोड़ दूंगा। गुरु हाथ पकड़ता भी है और छोड़ता भी है। जैसे एक मां अपने बच्चे को खड़े होना और चलना सिखाती है तो पहले सहारा देती है, अपनी अंगुली पकड़ाती है लेकिन जब बच्चा चलना सीख जाता है, आत्मनिर्भर हो जाता है, उसके पैर मजबूत हो जाते हैं, उसका आत्मविश्वास जाग जाता है, वह खुद चलने लगता है तब मां अपनी अंगुली छुड़ाती है। अगर कोई मां अपनी अंगुली न छुड़ाए तब वह करुणावान न हुई। इस बच्चे को अपने बलबूते चलाना होगा, शुरू में सहारा ठीक था। उसे खुद पर भरोसा न था, मां पर भरोसा था। ठीक वही शिष्य की अवस्था होती है, उसे अपने पर श्रद्धा नहीं होती, गुरु पर श्रद्धा होती है। तो यह एक बीच का समय है जब गुरु सहारा देता है, हाथ पकड़ाता है किन्तु धीरे–धीरे जैसे–जैसे तुम अपने पैरों पर खड़े होने लगोगे गुरु अपना सहारा खींच लेगा।

मत पूछो इस प्रकार का सवाल कि क्या आप मेरा हाथ कभी न छोड़ेंगे। लेकिन यह सवाल भी उठता है शिष्य के मन में, उस छोटे बच्चे के मन में भी उठता होगा कि मां मुझे सहारा दे रही है कहीं मुझे छोड़ न दे, भय भी लगता होगा, इसलिए झूठा आश्वासन तो मां को देना ही पड़ेगा, मैं भी तुम्हें दे सकता हूं लेकिन प्रश्नकर्ता की तरफ मेरा ख्याल है, अब उनका सहारा हटाने का समय आ रहा है, अब अपने पैरों पर खड़े होओ, मेरा हाथ छोड़ो, अपने पैरों से चलो। अध्यात्म की साधना एक प्रकार की इलेक्ट्रिक चेयर ही है, यहां तुम्हारा अहंकार जलेगा, गलेगा। अंसुअन जल सींच–सींच प्रेम बेल बोई।

तुम्हें मिटना होगा, पिघलना होगा, समाप्त होना होगा और जो गुरु तुम्हें सहारा दे रहा है याद रखना, वह तुम्हें ऊपर–ऊपर से दिखाई दे रहा है कि है, वास्तव में वह भीतर से मिट चुका है, शून्य हो चुका है। यह हाथ जो तुम्हें सहारे जैसे लग रहे हैं बस आभास मात्र हैं, गुरु स्वयं ही मिट चुका है और वह तुम्हें भी मिटाने की ओर ले जा रहा है। तुम मिट सको ताकि परमात्मा हो सके।

ओशो आशि

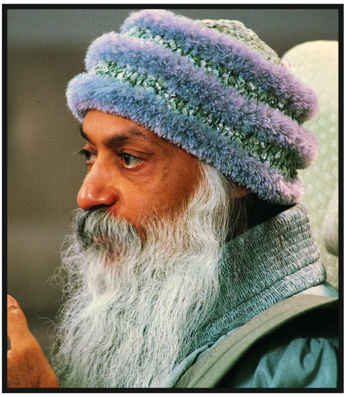

अध्याय–53

पात्रता, प्रतीक्षा, मौन

सद्‌गुरु जी, आज का पहला प्रश्न मां धर्म चेतना मुरादाबाद से पूछती हैं कि मैली चादर ओढ़ के कैसे द्वार तुम्हारे आउं, यही सोचकर ध्यान साधना करने से रुक जाती हूं। हे पावन परमेश्वर मेरे, मन ही मन शरमाउं?

तुम बहुत ही विचित्र बात कह रहे हो, जैसे कोई आदमी कहे कि मैं तो अभी भूखा ही हूं, पेट में जलन हो रही है भूख के मारे तो अभी कैसे खाना खाउं? तो और कब खाना खाओगे, जब भूख लगी है तभी तो खाना खाना होगा। कोई कहे कि अभी तो मैं बीमार हूं, अभी डॉक्टर के पास कैसे जाउं, बड़ी शर्म आ रही है बीमारी के कारण। एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन बीमार था तो मुझसे कह रहा था कि डॉक्टर के पास जाना है। फिर दूसरे दिन मिला तो मैंने पूछा कि तुम डॉक्टर के पास गए? वह बोला नहीं। मैंने कहा कि क्यों नहीं गए? वह बोला कल मेरी तबियत खराब थी, थोड़ा स्वस्थ हो जाउं फिर जाउफंगा। अगर ऐसे इंतजार करते रहे तो मर जाओगे, इलाज नहीं हो पाएगा। नहीं, यह व्यर्थ का तर्क छोड़ो कि ध्यान साधना से इसलिए रुक जाते हो कि मैली चादर ओढ़ के कैसे द्वार तुम्हारे आउं?

ओशोधारा ड्राइक्लीनिंग सेंटर है आत्मा का, तुम्हारी मैली चादर धोने के लिए ही तो हम बैठे हैं, स्वागत है तुम्हारा, आओ। याद रखना, सामान्यतः साधु, संत, महात्मा तुम्हारी मैली चादर की निंदा करते हैं। परमगुरु ओशो की कृपा से एक बात स्पष्ट हो गई है कि निंदा की

कोई भी जरूरत नहीं। ठीक है जीवन से गुजरते हुए धूल–धमास जमती है। जैसे रोज स्नान करके तुम शरीर की धूल–धमास झाड़ देते हो ठीक वैसे ही मनोस्नान भी संभव है, आत्मा को भी साफ किया जा सकता है। पहले से भी ज्यादा उज्वल किया जा सकता है। तो यह बहाने छोड़ो, चादर और कहां साफ कराओगे। अगर चादर साफ हो ही गई तो फिर यहां आने की जरूरत भी क्या है। तुम तो ऐसी बात कह रहे हो कि जब मन पूर्ण शांत हो जाएगा, एकदम से समाधिस्थ हो जाएगा तब आएंगे आपके पास ध्यान करने। फिर जरूरत ही क्या बचेगी?

मुझे याद आता है संत कबीर साहब का वचन एक बार ओशो कोट कर रहे थे, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया, बड़े जतन से ओढ़ी चदरिया। तो किसी ने इस पर सवाल उठाया कि क्या कबीर साहब कुछ अतिशयोक्ति नहीं कर रहे, क्या यह संभव है कि जीवन की इस चादर को ज्यों का त्यों वापिस कर दिया जाए, जैसी हमें मिली थी साफ–सुथरी? ओशो ने कहा कि कबीर साहब कुछ बढ़ा–चढ़ाकर बात नहीं कर रहे हैं, बल्कि बड़े विनम्रभाव से अण्डरस्टेटमेंट कर रहे हैं, सच पूछो तो उन्होंने चादर को और भी सुंदर, और भी उज्वल करके वापिस लौटाया है। सुनो ओशो की अमृतवाणी–

'बुद्ध भी इसी पृथ्वी से गुजरते थे, तुम भी इसी पृथ्वी से गुजरते हो, यही चांद–तारे हैं, यही आकाश है, यही फूल हैं लेकिन एक के जीवन में रोज पवित्रता बढ़ती चली जाती है, एक रोज–रोज निर्दोष होता चला जाता है, निखरता चला जाता है और दूसरा रोज–रोज दबता चला जाता है, बोझिल होता जाता है, धूल से भरता जाता है, अपवित्र होता जाता है, गंदा होता जाता है। मृत्यु जब बुद्ध को लेने आएगी तो वहां तो पाएगी मंदिर की पवित्रता, वहां तो पाएगी मंदिर की धूप, मंदिर के फूल, वहां तो पाएगी क्वांरापन जिसको कुछ भी विकृत न कर पाया। जैसा कबीर ने कहा है ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया। तो बुद्ध तो चादर को वैसा का वैसा ही रख देंगे। मुझे तो लगता है कि कबीर ने जो कहा वह थोड़ा अण्डरस्टेटमेंट है, वह अतिशयोक्ति तो है ही नहीं। सत्य को भी बहुत धीमे स्वर में कहा है कि मेरी दृष्टि ऐसी है कि जब बुद्ध चादर को लौटाएंगे तो वह और भी पवित्र होगी, उससे भी ज्यादा पवित्र होगी जैसी उन्होंने पाई थी। होनी ही चाहिए, क्योंकि जैसे अपवित्रता बढ़ती है और विकासमान है वैसे ही पवित्रता भी बढ़ती है और विकासमान है।

जो पवित्रता बुद्ध को बीज की तरह मिली थी बुद्ध उसे एक बड़े वृक्ष की तरह लौटाएंगे। नहीं, कबीर ने जो कहा है वह अतिशयोक्ति नहीं है, उन्होंने सत्य को बड़े धीमे स्वर में कहा है– ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया। बुद्धों ने चदरिया को और भी निखार कर लौटाया है, जो बीज था उसको फूल की तरह लौटाया है। पवित्रता बढ़ती है, प्रतिपल पवित्रता बढ़ती है। तुम जिसे सम्हालोगे वही बढ़ने लगता है। जीवन में कोई भी चीज रुकी हुई नहीं है, सभी चीजें गतिमान हैं, जीवन एक प्रवाह है। या तो पीछे की तरफ जाओ या आगे की तरफ जाओ, रुकने का कोई उपाय नहीं है। जो जरा भी रुका वह भटका।' यह पंक्तियां ध्यान से सुनो–

जुस्तजुए मंजिल में एक जरा जो दम लेने काफिले ठहरते हैं, राह भूल जाते हैं। इस जिंदगी की राह पर जरा दम लेने को भी जो ठहरते हैं वह राह भूल जाते हैं। जो रुका वह

भूला, जो जरा ठहरा वह भटका। क्योंकि जो आगे न गया वह पीछे गया, जो बढ़ा नहीं वह गिरा, जो चला नहीं वह पीछे सरका क्योंकि जीवन गति है, यहां ठहराव नहीं है। एडिन्टल का बहुत प्रसिद्ध वचन है कि मनुष्य की भाषा में रेस्ट शब्द, ठहराव शब्द सबसे ज्यादा झूठा शब्द है क्योंकि ऐसी कोई घटना कहीं नहीं है, कोई भी चीज ठहरी हुई नहीं है।

एक छोटी सी कहानी तुमसे कहना चाहूंगा, ईसामसीह अपने प्रवचनों में अपने शिष्यों को अक्सर यह कहानी सुनाया करते थे। एक अमीर आदमी था, बडी जमीन–जायदाद उसके पास थीं। उसके तीन बेटे थे लेकिन तीनों जुड़वा। तो उम्र के हिसाब से तय नहीं किया जा सकता था कि किसको वह अपना उत्तराधिकारी चुने। उसने एक परीक्षा लेने की सोची। उसने तीनों बेटों को बुलाया और कहा कि मैं तीर्थयात्रा पर जा रहा हूं, हो सकता है एक साल लग जाए, दो साल लग जाए। क्योंकि पुराने जमाने में तीर्थयात्रा बड़ी कठिन हुआ करती थीं। कई लोग तो लौटकर ही नहीं आ पाते थे। तो उसने कहा कि मैं तीर्थयात्रा पर जा रहा हूं, कुछ चीज तुमको देकर जा रहा हूं उसको सम्हालना और जब मैं वापिस आउं तो मुझे वापिस लौटाना।

उसने कुछ बीज उन तीनों बेटों को दिए, एक–एक पोटली तीनों को दी और कहा कि जब मैं वापिस लौटूं तो मैं वापिस चाहूंगा इन बीजों को। अब वह राजा चला गया, कोई तीन साल बाद वापिस लौटा। पहले बेटे ने सोचा कि पता नहीं पिताजी कब लौटेंगे, यह बीज तब तक बचेंगे कि नहीं बचेंगे तो ऐसा करें कि इनको बाजार में बेच दें, जब पिताजी आएंगे तो उन्हीं पैसे से बीज खरीदकर उनको लौटा देंगे। उसने बीज लौटाए पिता को। पिता ने कहा कि नहीं, यह तो वह वाले बीज नहीं हैं जो मैंने दिए थे। तुम परीक्षा में असफल हुए। दूसरे बेटे ने सोचा था कि पिताजी के दिए बीज सम्हालकर रखूं सुरक्षित रूप से तो उसने अपने मोटी लोहे की तिजोड़ी में बीज रखकर उसमें ताला लगा दिया था। उसने पिताजी से कहा कि चलिए, मैंने आपके बीज सुरक्षित रखे हुए हैं लेकिन जब तिजोड़ी खोली तो उसमें से दुर्गंध आ रही थी सड़े हुए बीजों की। बीज में कीड़े लग गए थे, सब सड़ गए थे। पिताजी ने कहा कि तुमने तो बीजों को नष्ट कर दिया, तुम भी योग्य साबित न हुए।

तीसरे बेटे से पूछा कि तुम्हारे बीज कहां हैं, उस बेटे ने कहा कि चलिए बाहर, वह ले गया खेत में और कहा कि यह देखिए पौधों के रूप में मौजूद हैं। यह जो फूल खिले हैं मैंने आपके दिए हुए बीज बो दिए थे अब वह वृक्ष बन गए हैं, फूल लग गए हैं, बस जल्दी ही पुनः बीज आएंगे तो मैं आपको आपके बीज लौटा दूंगा और कईगुना ज्यादा करके लौटा दूंगा। बाप बहुत प्रसन्न हुआ, उसने कहा कि तुम योग्य हो, तुमने पिता की संपदा को बढ़ाया, तुम्हारे हाथ में मैं अपनी जमीन–जायदाद सौंपता हूं। इन तीन बेटों में से हम अक्सर पहले और दूसरे जैसा व्यवहार करते हैं, बहुत कम लोग तीसरे बेटे जैसा व्यवहार करते हैं। जीवन भी एक संभावना है बीज के समान विकासमान है। अगर तुम अवसर दो ठीक–ठीक परिस्थिति का उपयोग करो जिंदगी का तो सारी चीजें विकसित होंगी। तो जितनी उज्वल चादर तुम लेकर आए थे उससे भी ज्यादा चमकदार करके प्रभु को लौटा सकते हो। शर्माने की कोई जरूरत नहीं कि हे पावन परमेश्वर मन ही मन शर्माउं। गिल्टफीलिंग, अपराधबोध छोड़ो, मैं तुम्हें आत्मनिंदा नहीं

सिखाता, वह ओशो की धारणा में फिट नहीं बैठती बात। आत्मसम्मान से भरो, जो मिला है तुम्हें उसे विकसित करने की सोचो, वहीं आध्यात्मिक साधना है।

आज का दूसरा प्रश्न है कुमारी रीना मेहता का महाबलेश्वर से, कहती हैं कि सांसारिक प्रेम में बहुत तड़पी हूं, प्रतीक्षा करते–करते थक गई हूं, अब परमात्मा के अलौकिक प्रेम में पड़कर भी तड़प रही हूं। ओशो कहते हैं कि प्रार्थना में अनंत धैर्य चाहिए, डर लगता है कि कहीं यह प्रतीक्षा भी व्यर्थ न चली जाए?

नहीं, यह प्रतीक्षा व्यर्थ नहीं जाएगी। परमात्मा के प्रति प्रेम सदा ही फलदायी होता है। हां, संसार का प्रेम असफल होने को बाध्य है। और ठीक उसका उल्टा है परमात्मा के प्रति प्रेम हमेशा सफल होता है। तुमने ठीक दिशा चुनी। और अच्छा ही हुआ कि लौकिक प्रेम असफल हुआ और उससे तुमने एक शिक्षा ग्रहण की और अपने भीतर अंतर्मुखी हुई। आजतक जो व्यक्ति भी अंतर्मुखी हुआ है वह तभी तो होता है जब बहिर्मुखता की व्यर्थता उसको नजर आ जाती है। बिल्कुल ठीक हुआ, धन्यवाद भाव से भरो, तड़पो इस प्रेम में, जलो इस प्रेम में, दग्ध हो जाओ, तुम बचो ही न, अहं के विदा हो जाने पर ही ब्रम्ह प्रगट होता है। तो तुम्हारा जलना, तड़पना, तुम्हारे आंसू बहना तुम्हें गलाएगा, पिघलाएगा। जो हो रहा है शुभ हो रहा है, सुंदर हो रहा है। किसी कवि ने लिखा है–

कैसे बताउं उनसे इस दिल को प्यार क्यों हैं,
जिसने भुलाया उनका अब इंतजार क्यों है।

उसने तो लिखा होगा साधारण प्रेम के बारे में किन्तु परमात्मा के प्रेम के बारे में भी यही बात लागू होती है।

मालूम क्या था आंसू पर्दे में हैं हंसी के,
किसको खबर थी यूं दिन बदलेंगे जिंदगी के,
इक बेवफा की खातिर खोया करार क्यों है,
जिसने भुलाया उनका अब इंतजार क्यों है।

भक्त को भी कई बार लगता है कि शायद परमात्मा ने अब उसे भुला दिया है, मैं उसका सुमिरन करता हूं लेकिन उसे मेरी सुरति नहीं है। कई बार ऐसा लगेगा लेकिन धीरज न खोना। परमात्मा ने हमें नहीं भुलाया, अगर वह हमें भुला देता तो हम होते ही क्यों, हमारा अस्तित्व ही न होता। निश्चितरूप से वह भी हमें प्रेम करता है तभी तो हम हैं। हमारा होना ही प्रमाण है कि वह भी हमें प्रेम करता है। जिसने भुलाया उनका हमें अब इंतजार क्यों है। नहीं, उसने नहीं भुलाया, तुम इंतजार करो वह मेहमान आता ही होगा।

बतलाओ ऐ बहारो, बोलो तो ऐ नजारो,
मैं तुमसे पूछता हूं चुप क्यों हो रे सितारो,
काली है क्यों चांदनी, उजड़ी बहार क्यों है,
जिसने भुलाया उनका अब इंतजार क्यों है।
कैसे बताउं उनसे इस दिल को प्यार क्यों है।।

अगर तुम कारण बता सको परमात्मा के प्रति प्रेम का तो वह प्रेम खाक प्रेम हुआ! जब प्रेम वास्तव में हो तो तुम उसका कारण नहीं बता सकते कि क्यों उनसे प्यार है? बस है, अकारण है, हमें भी पता नहीं क्यों है। हमारे वश में नहीं। यह प्रेम निश्चितरूप से एक दिन परमात्मा से मिला देता है। जैसे केमेस्ट्री में समीकरण होते हैं न, ठीक वैसे ही तुमसे अध्यात्म का फार्मूला कहता हूं– प्रेम धन प्रतीक्षा बराबर प्रार्थना। धैर्य धन ध्यान बराबर आत्मज्ञान। आंसू धन आशा बराबर आस्था या श्रद्धा। आंसू बहते हैं तो बहने दो, तड़फो विरह में लेकिन आशा मत खोना, श्रद्धा मत खोना। एक दिन जरूर उसके मंदिर तक पहुंचना होगा। वह घड़ी धीरे–धीरे निकट आ रही है। एक दूसरी बात और समझ लेना, परमात्मा का अर्थ है परम आत्मा, दी अल्टीमेट सेल्फ, स्वयं के होने का परमरूप, उसे हमने कभी खोया नहीं। वह भीतर सदा–सदा मौजूद है, केवल हमारी दृष्टि वहां से हट गई। नजर मोड़ने की बात है। इंतजार करो, तड़पो, जलो दग्ध हो जाओ, मिट जाओ। जैसे बीज मिट जाए तो वृक्ष होता है, फूल बनता है, सुगंध उड़ती है ठीक वैसे ही हमारा अहं विलीन हो इस प्रेम में, इस प्रार्थना में, इस प्रतीक्षा में तो ब्रम्ह प्रगट होता है।

आज का तीसरा प्रश्न है, दिवाकर रायपुरे नागपुर से पूछते हैं कि मौन तथा एकांतवास में साधना का क्या उपयोग है?

एकांत बड़ा उपयोगी है। दूसरों के साथ रहते हुए दूसरेपन का भाव अहं भाव को जगाता है। दूसरों की उपस्थिति में अहंकार घना होता है और इसलिए दूसरों की मौजूदगी में अहंकार से छुटकारा जरा कठिन है। इसलिए कभी–कभी एकांतवास में चले जाना चाहिए। साल में दस–पंद्रह दिन कहीं दूर चले जाओ अकेले। अकेले में तुम अपने अहंकार को भी भूल जाते हो और तब अहं के मिटते ही ब्रम्ह से मिलन संभव हो जाता है। और मौन भी बहुत उपयोगी है, एकांतवास तो थोड़ा कठिन होगा, शायद सब लोग न कर पाएं कोई बात नहीं। समाज व परिवार में रहते हुए भी कभी–कभी मौन साधो, चुप हो जाओ, वह चुप्पी तुम्हें आंतरिक एकांत में ले जाएगी। समाज से हम जुड़ते हैं भाषा के द्वारा, अगर हम भाषा छोड़ दें, शब्दों का उपयोग छोड़ दें तो समाज से हमारा संपर्क टूट जाता है। तुमने कभी ख्याल किया, कोई गूंगा आदमी समाज का नेता नहीं बन सकता, आज तक नहीं बना। क्योंकि गूंगा आदमी दूसरों से जुड़ नहीं सकता, वह संवाद नहीं कर सकता। जो अच्छे वक्ता हैं, बोलने में कुशल हैं वे नेतृत्व में पहुंच जाते हैं। क्योंकि वह समाज से संबंधित हो पाते हैं। पर याद रखना, जो व्यक्ति दूसरों से जुड़ पाता है वह भीतर बैठे परमात्मा से टूट जाता है। और जिसको परमात्मा से जुड़ना है उसे बाहर से टूटना होगा। तो मौन और एकांतवास दोनों ही तुम्हें बाहर से तोड़ने में मददगार होंगे। जब मौका मिले इनका प्रयोग करना।

मैंने सुना है एक बार सेठ चंदूलाल अखबार में अपना भविष्यफल पढ़ रहे थे। उनके दोस्त नसरुद्दीन ने पूछा कि तुम रोज भविष्यफल पढ़ते हो, कभी सही भी निकलता है? चंदूलाल ने कहा कि हां, पिछले हफ्ते ज्योतिषी ने कहा था कि आपके सारे परिवार के लोग, रिश्तेदार, दूर–दूर के मित्र, परिचित इत्यादि लोगों से आपका संवाद खत्म हो जाएगा, कोई आपकी बात नहीं सुनेंगे,

आपकी बोलती बंद हो जाएगी। नसरुद्दीन ने पूछा कि क्या ऐसी कोई घटना घटी? चंदूलाल ने कहा हां, मेरा मोबाइल गुम गया। अच्छा है मोबाइल गुम जाए, कभी–कभी मोबाइल आफ कर दिया करें और न केवल बाहर वार्ता बंद करो, भीतर भी वार्ता टूटे। एक अंतर्संवाद चल रहा है, हम खुद ही खुद से बात कर रहे हैं, उसका नाम है विचार। विचारों की यह धारा टूटे तो वास्तविक मौन घटित होता है, वह मौन तुम्हें परमात्मा से जोड़ेगा।

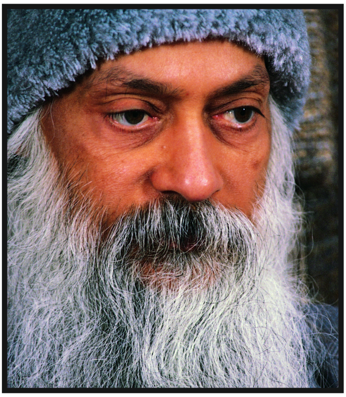

अध्याय–54

जिंदगी में सार क्या है?

ईश्वर चन्द्र द्विवेदी रायपुर से, यह पूछते हैं कि विश्वविद्यालय की पढ़ाई पूरी करके जब वापिस अपने घर आया तो मैंने पाया कि मेरे सगे भाई–भतीजे भी मेरे सगे न रहे, पारिवारिक व्यवसाय में मेरा हस्तक्षेप पसंद नहीं करते। इस बीच कुछ नजदीकी दोस्तों से भी बढ़ गई, जिसके साथ गृहस्थी बसाकर स्वर्ग के सपने देखे थे वह बेवफा प्रेमिका धन के लालच में किसी और की हो गई, मेरी अक्ल काम नहीं कर रही है कि यह क्या हो रहा है, कोई अपना कहने लायक नहीं है, मैं क्या करूं, ऐसी जिंदगी जीने से सार क्या?

चलो अच्छा हुआ कि सुहाना भ्रम तो टूटा। जाना कि हुस्न क्या है। असार क्या है अगर इतना समझ में आ गया तो आधी बात बन गई। अब शेष आधा खोजना बहुत आसान होगा कि सार क्या है? अपने अपने न रहे, अच्छा हुआ वरना यह धोखा जिंदगी भर चल सकता था कि कोई तुम्हारा है। अब तुम्हें सार की बात बताना आसान होगा कि केवल तुम्हारा निराकार चैतन्य ही तुम्हारा है, ओंकार तुम्हारा है, आलोक तुम्हारा है। दूसरों की तो बात छोड़ो, तुम्हारा शरीर और मन भी तुम्हारा नहीं है। केवल तुम्हारी चेतना ही तुम्हारी है। जन्म के पहले भी तुम वही थे, मृत्यु के बाद भी तुम वही होओगे और अभी आंख बंद करके तुम अपने भीतर डूबो अभी भी तुम वही हो। उससे भिन्न न तुम कभी थे, न हो और न होओगे। उसको जान लेना ही अध्यात्म है। लेकिन हम भूल जाते हैं, भटक जाते हैं, हमें लगता है कि यह मेरा है, यह मेरा है,

यह मेरा हो सकता है उसी की भागदौड़ में हम सारी जिंदगी गंवा देते हैं। तुम प्रतिभाशाली हो, प्रज्ञावान हो, इसलिए जल्दी युवावस्था में ही बात समझ में आ गई। अधिकांश लोगों को तो वृद्धावस्था में भी समझ में नहीं आती। बहुत लोग केवल मरने के क्षण में इस बात के प्रति जाग्रत होते हैं कि न मकान उनका था, न जमीन–जायदाद उनकी थीं, न कोई व्यक्ति उनका था, यहां कुछ हमारा हो ही नहीं सकता, यह असंभव है। जिस जमीन को हम अपनी जमीन कहते हैं जरा सोचो तो, हम तो अभी कुछ साल पहले पैदा हुए, जमीन तो पिछले चार अरब सालों से है, हम कुछ साल के बाद फिर विदा हो जाएंगे लेकिन जमीन अरबों–खरबों साल तक रहेगी। यह जमीन हमारी हो कैसे सकती है? हम इसी मिट्टी में से उपजे, इसी में फिर मिल जाएंगे लेकिन हम दावा कर रहे हैं कि यह हमारी है। जिन लोगों को हम अपना कहते हैं वे लोग भी कहां अपने, यहां कोई भी अपना नहीं है। अच्छा हुआ, इसको बुरा न समझो, दुर्भाग्य न समझो। असार असार है, यह ख्याल आ जाना बहुत बड़ी बात है, समझो आधी यात्रा हो गई। अब तो बस आधी बात बची कि सार क्या है?

अभी मैंने कहा ओंकार, निराकार यह तो तुम्हारे लिए कोरे शब्द होंगे लेकिन अगर साधना करके इनकी खोज में लगे तब तुम्हारे लिए सत्य हो जाएंगे और तब तुमने जीवन का सार तत्व पा लिया जो शाश्वत रूप से तुम्हारा ही है, तुम्हारा ही रहेगा। सुनो ओशो का एक प्रवचनांश तो तुम्हारी आंखें खुलेंगी।

'मरते वक्त तुम पाओगे कि पूरा जीवन एक रेगिस्तान की यात्रा थी लंबी, थकान भरी, धूल–धमास भरी, हार, संताप, चिंता सब था लेकिन और कुछ हाथ न लगा, धूल हाथ लगी। कुछ भी अपना नहीं हो पाता और जो अपना नहीं है वह सार नहीं हो सकता। सार तो वही है जो तुम्हारा हो जाए, तुम्हारे भीतर हो जाए और कभी तुमसे अलग न हो। कोई घर यहां नहीं है, सभी सराय हैं। कल कोई और ठहरा था, आज कोई और ठहरा है और कल कोई और ठहरेगा।

दुनिया का ऐतबार करें तो भी क्या करें,
आंसू तो अपनी आंख का अपना हुआ नहीं।

अपनी आंख का आंसू भी यहां अपना नहीं होता और अपना क्या हो सकता है। जिनको हम अपना कहते हैं वह भी अपने नहीं हैं। अपने अतिरिक्त अपना यहां कुछ भी नहीं। और जो भी अपने को छोड़कर पृथ्वी पर कुछ भी खोज रहा हो तो वह चाहे पृथ्वी की सारी संपदा पा ले, सारा साम्राज्य पा ले तब भी आखिर में पाएगा कि हाथ खाली है। हृदय एक रोता हुआ भिखारी का पात्र जिसमें कुछ भी न पड़ा और जीवन ऐसे ही गया।

जो जितनी जल्दी जाग जाए उतना ही समझदार है। बुद्धि की और प्रतिभा की यही कसौटी है, और थोड़ी कोई बुद्धिमाप है? पश्चिम में बुद्धि मापने का ढंग है वह बहुत सस्ता है। हमने पूरब में एक अलग ढंग निकाला जो जितनी जल्दी पहचान लिया उतना ही प्रतिभाशाली है। जो मरते दम तक नहीं पहचान पाता, आखिरी घड़ी आ जाती है और कहे चला जाता है गो हाथ को को जुम्बिस नहीं, आंखों में तो दम है, रहने दे अभी सागर और मीना मेरे आग है। वह प्रतिभाहीन है, वह मूढ़ है, उसमें कोई समझ नहीं है। वह दुनिया की नजरों में कितना ही

समझदार हो वह अपने ही भीतर अनुभव करेगा, रोज समझदारी से उसने दूसरों को भले ही धोखा दिया हो, अस्तित्व को धोखा नहीं दे पाया।'

ईश्वर चन्द्र द्विवेदी, मैंने सुनी है एक कहानी। है तो काल्पनिक लेकिन सत्य की तरफ इशारा करती है। सिकंदर महान की मुलाकात एक फकीर से हुई थी। भगवान महावीर की तरह वह भी नग्न रहा करता था। यूनान के उस फकीर का नाम था डायोज्नीज। जब दोनों की मृत्यु हुई तो संयोग की बात कि एक साथ मृत्यु हुई। विश्व विजेता सिकंदर और नग्न फकीर डायोजनीज जब दोनों परलोक में जा रहे थे तब सिकंदर भी नंग–धड़ंग था डायोज्नीज की तरह, बड़ी शर्मिंदगी महसूस कर रहा था। हमेशा उसने राजसी वस्त्रा पहने थे, सोने–चांदी के आभूषण पहने थे, तलवारें लटकती थीं बगल में, आसपास सेना चला करते थे, अब अकेला, नितांत अकेला, निर्वस्त्र और डायोज्नीज तो जिंदगी भर वैसे ही रहा था तो वह तो बड़ी मौज–मस्ती से जा रहा था गुनगुनाता, गीत गाता हुआ।

सिकंदर आंखें नीची किए, उसका तो सब छिन गया। डायोज्नीज का कुछ भी न छिना था, सिकंदर का सबकुछ छिन गया। उस समय तक जितना विश्व ज्ञात था करीब–करीब उसने पूरा छीन लिया था। हारा हुआ, परास्त, उदास सिकंदर चला जा रहा था।

यह कहानी तो काल्पनिक है किन्तु इसमें सत्य छिपा है। अधिकांश लोगों को मरते समय पता चलता है कि वे नग्न भिखारी हैं। कुछ भी नहीं है पास, कोई भी नहीं है अपना। जिसको बीच जिंदगी में यह बात दिख जाए वह बहुत प्रज्ञावान और विवेकपूर्ण है। तो आप अब अपने भीतर के छुपे ईश्वर को खोजो। जिस ओंकार और निराकार की बात मैंने कही उस अमृत की तलाश में रखो तब तुम सार को पाल लोगे और उस दिन तुम धन्यवाद दोगे उन लोगों को जिन्होंने तुम्हारे साथ बेवफाई की, जिन्होंने तुम्हारे साथ दूरी बढ़ा ली, जिन्होंने तुमको धोखा दिया तुम इनको धन्यवाद दोगे कि इन्हीं के कारण तुम स्वयं पर लौट पाए। एक पुराना फिल्मी गीत है उसकी एक पंक्ति मुझे बहुत अच्छी लगती है–

तुम्हें पाकर हम खुद से दूर हो गए थे,
तुम्हें खोकर हम अपने पास आ गए हैं।

तब तुम धन्यवाद दोगे इन लोगों का कि इनसे नजर हटी तो खुद पड़ नजर पड़ी और तब आत्मज्ञान घटित होता है।

अगला प्रश्न पूछा है कमलनाथ साहू लखनउ से, यह गीत के माध्यम से पूछते हैं– मेरी बदकिस्मत जिंदगी की दास्तां इस गीत में सुन लीजिए–

जुबां पे दर्द भरी दास्तां चली आई,
बहार आने से पहले खिजा चली आई,
खुशी की चाह में मैंने उठाए रंज बड़े,
मेरा नसीब कि मेरे कदम जहां भी पड़े,
यह बदनसीबी भी मेरी वहां चली आई,
बहार आने से पहले खिजा चली आई।
उदास रात है वीरान दिल की महफिल है,
न हमसफर है कोई और न ही कोई मंजिल है,

यह जिंदगी मुझे लेकर कहां चली आई,
बहार आने से पहले खिजा चली आई।
जुबां पे दर्द भरी दास्तां चली आई।।

पूछते हैं कि गुरुदेव मुझे डर लगता है कि आध्यात्मिक रास्ते पर चलने पर भी यही रास्ता रिपीट न हो?

कमलनाथ साहू, यह दास्तां रिपीट नहीं होगी। बाहर के जगत में असफलता अनिवार्य है, तुम कुछ भी करो अंततः असफलता हाथ लगेगी। बीच में थोड़े दिन धोखा रहता है कि सफल हो रहे हो। अंतस जगत में इसका ठीक उल्टा है क्योंकि वहां जिसे हम पाने चले वह पहले से ही मौजूद है। जिस ओंकार, आलोक और निराकार चैतन्य की मैं बात कर रहा हूं, नाद, नूर और निराकार की त्रिवेणी, आलोक, अमृत वे सब पहले से ही भीतर मौजूद हैं। तुम्हें कुछ पाना नहीं है, सिर्फ उघाड़ना है। वैज्ञानिक अन्वेषण करते हैं, इन्वेंशन, कोई नई चीज बनाते हैं, निर्माण करते हैं उसका। समझो, जब तक कार नहीं बनी थी तब तक कार जैसी कोई चीज नहीं थी। फिर कार का इन्वेंशन हुआ। भीतर हमारे जो परमात्म तत्व है, भीतर जो परमानंद है उसका इन्वेंशन नहीं होता, सिर्फ डिस्कवरी होती है। इन्वेंशन और डिस्कवरी का फर्क समझना– डिस्कवरी का अर्थ है कि कोई चीज ढकी हुई थी, आव्रत थी तो हमने उसका अनावरण कर दिया, उघाड़ दिया। परमात्मा तुम्हारे भीतर मौजूद है। घूंघट के पट खोल तोही पिया मिलेंगे। लेकिन वह पर्दों में है, घूंघट में छिपा हुआ है। बस उस घूंघट को उठाना है, ध्यान और समाधि उसी का नाम है। मत कहो बदकिस्मत जिंदगी की दास्तां। अच्छा हुआ बाहर से भ्रम टूटा, अब अपने भीतर जाने का अवसर मिलेगा। अब आराम से तुम वह पर्दा उठा पाओगे। जिसकी नजर बाहर अटकी हुई है वह बाहर का पर्दा नहीं उठा पाएगा। जिसकी नजर बाहर से हट गई, बाहर रस समाप्त हुआ, बाहर से वैराग्य उत्पन्न हुआ वह अपने भीतर आत्मज्ञान पा सकेगा। सेल्फ डिस्कवरी। हम खुद ही खुद से खो गए हैं। चमत्कार है, होना तो नहीं चाहिए था ऐसा लेकिन हो गया है। हम खुद ही खुद से छिप गए हैं। अपने आपको ढूंढ़ लेना है।

अगला प्रश्न पूछा है स्वामी आनंद विस्तार हांसी से, यह पूछते हैं कि सच्चिदानंद की प्राप्ति के पश्चात साधक को कैसा लगता है?

बड़ा कठिन सवाल पूछ रहे हो, भीतर की चीजें जानकर ही जानी जाती हैं, कोई एडवांस जानकारी पहले से नहीं मिल सकती, पहले से सूचना प्राप्त नहीं हो सकती। जब तुम जानोगे तभी जानोगे। तो जानने के लिए मैं तुममें उत्सुकता जगाना चाहता हूं। तुम्हें प्यास जागे, तुम्हें रस जागे उस तरफ मेरा सारा प्रयास है। लेकिन भीतर जाकर क्या होगा वह बताना संभव नहीं। वह नहीं बताया जा सकता। जिस स्थिति में हम हैं केवल उसी का ज्ञान होता है, हमसे भिन्न और क्या हो सकता है उसका अनुमान लगाना भी मुश्किल है। हमारा अनुमान भी गलत होता है।

मैंने सुना है एक भिखारी से किसी ने पूछा कि तुम यह लाटरी की टिकिट खरीद रहे हो, मान लो तुमको एक करोड़ रफपए मिल गए तो फिर क्या करोगे? उस भिखारी ने कहा

कि अरे ऐश करूंगा, एयरकंडीशंड कार खरीदूंगा, एक किलो सोना खरीदूंगा, उसका एक बहुत बढ़िया कटोरा बनवाउंगा और कार में बैठकर भीख मागूंगा। भिखारी आखिरकार भिखारी ही होगा, वह कितनी दूर का सोचेगा, ज्यादा से ज्यादा इतना ही सोच सकता है कि एल्युमीनियम की कटोरी की जगह सोने का कटोरा होगा, कि उसमें हीरे–जवाहरात जड़वा लूंगा लेकिन भिखमंगापन जाएगा नहीं। एक भिखारी को कल्पना करना भी मुश्किल है कि अमीरी क्या होती है।

दो शिक्षक प्राइमरी स्कूल के सड़क से गुजर रहे थे। उन्होंने एक बहुत उंची बिल्डिंग देखी, वह शहर के सबसे बड़े धनपति की बिल्डिंग थी, वह आदमी खरबपति था। एक शिक्षक ने दूसरे शिक्षक से कहा कि मान लो इस अमीर की सारी संपत्ति और जमीन–जायदाद, कल–कारखाने, दुकानें सबकुछ तुम्हें मिल जाए तो क्या होगा? दूसरे शिक्षक ने कहा कि मैं उस अमीर से भी ज्यादा अमीर हो जाउंगा। मित्र ने पूछा कैसे? उसने कहा कि जो मैं तीन ट्यूशन पढ़ाता हूं वह तो पढ़ाता ही रहूंगा न। एक्स्ट्रा इनकम हो जाएगी मेरी। गरीब आदमी को सोचना भी मुश्किल है कि अमीरी क्या होती है। गरीबी की छाया उस पर भी पड़ती रहेगी।

तुम पूछ रहे हो कि सच्चिदानंद की प्राप्ति के बाद कैसा लगता है? तुमने अपनी जिंदगी में सिर्फ दुख और पीड़ाएं जानी। अभी गीत सुन रहे थे वह आनंद बख्शी का लिखा हुआ है, कितना दुख भरा गीत है, ऐसा लगता है कि प्रभु ने उनको आनंद की एक घड़ी भी नहीं बख्शी। नाम रखा है आनंद बख्शी। आनंद की कल्पना करना भी मुश्किल है। तो मैं नहीं समझाउंगा कि सच्चिदानंद कैसा होता है। हां, उसे जानने की विधि बताउंगा। इस फर्क को समझना, पंडित जन परमतत्व की व्याख्या करते हैं, समझाने की कोशिश करते हैं और संत जन उस तक पहुंचने का मार्ग बताते हैं। तो तुम्हें आमंत्रण देता हूं कि आओ और ध्यान समाधि कार्यक्रम में डूबो और उस परमधन को पाओ। उसे तो बस जानकर ही जाना जाता है, बिना जाने उसे समझाने का कोई उपाय नहीं। मेरे इन प्रवचनों को तुम मनोरंजन मत समझना, यह केवल आमंत्रण हैं, निमंत्रण हैं कि आओ, नदी अभी बह रही है ओशोधारा की गंगा, पी लो पानी और अपनी प्यास बुझा लो। यह कोई प्रवचन नहीं है, कोई व्याख्या नहीं है, कोई सिद्धांत तुम्हें नहीं समझाना है, कोई फिलास्फी नहीं बतानी है, तुम्हारी प्यास बुझाने में मेरी उत्सुकता है।

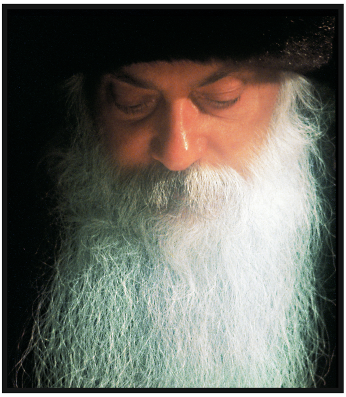

अध्याय–55

अनीश्वरवादी दर्शन

स्वामी जी प्रणाम, आज का पहला प्रश्न है, भगवान महावीर कहते हैं परमात्मा नहीं है, भगवान बुद्ध कहते हैं आत्मा भी नहीं है, भगवान ओशो किस प्रकार अनिश्वरवादी दर्शन का समन्वय ईश्वरवादी हिन्दू दर्शन से करते हैं? कृपया समझाएं, यह प्रश्न है स्वामी आलोक पथिक जी का जो कि जालंधर से हैं।

जो व्यक्ति सचमुच में दार्शनिक है, फिलासफर्स नहीं। दार्शनिक था, जिसने जीवन के सत्य का दर्शन किया उसको समन्वय करना नहीं पड़ता क्योंकि सत्य में सारे विरोधाभास इकट्ठे समाहित होते हैं। जिन्होंने दर्शन नहीं किया है, वे जो अंधे विचारक हैं, केवल चिंतन–मनन के द्वारा सत्य को पहचानने की कोशिश कर रहे हैं उनको सब चीजों में विरोध नजर आते हैं। जिसने सत्य को भर आंख देखा उसके सारे विरोध, द्वंद, दुविधाएं गिर जाते हैं। वास्तव में सत्य में कहीं भी द्वंद नहीं है। बड़ी मजेदार बात है, हिन्दू कहते हैं ईश्वर है, बुद्ध कहते हैं ईश्वर नहीं हैं इनसे ज्यादा विपरीत धारणाएं और क्या होंगी? किन्तु परमगुरु ओशो ने उपनिषदों की व्याख्या की, हिन्दू दर्शन की गहन से गहन मीमान्सा की, गीतादर्शन पर लंबी प्रवचन माला दी, विज्ञान भैरव तंत्र के गुह्य रहस्यों को समझाया, सारे उपनिषदों का सार–सूत्र समझाया और ओशो ने बुद्ध की देशना को भी समझाया। महावीर के उपदेशों की भी अद्भुत व्याख्या की। सुनने वाले को लगेगा कि यह तो असंभव बात हो गई, कोई ईश्वर को

मानता है, कोई ईश्वर को नहीं मानता है इन दोनों बातों को एक साथ कोई व्यक्ति कैसे अंगीकार कर सकता है?

एक छोटे से उदाहरण से कहूं, उससे समझना। अगर मैं आपसे कहूं कि बताइए आकाश है कि नहीं? आप कहेंगे निश्चितरूप से आकाश है। उस आकाश में ही तो पृथ्वी, चांद, सितारे, यह निहारिकाएं घूम रही हैं। अगर आकाश न होता, यह विराट अंतरिक्ष न होता तो यह सारे ग्रह और तारे कहां घूमते, निश्चितरूप से आकाश है। लेकिन फिर अगर मैं आपसे पूछूं कि बताइए आकाश होने का क्या अर्थ है? आप कहेंगे आकाश का अर्थ है जो स्वयं कुछ भी नहीं है, एक खाली स्पेस है। अभी आप इस ओशो मंदिर में प्रवेश किए अर्थात इन दीवालों के भीतर घिरे हुए रिक्त स्थान में प्रवेश किए। आप बैठे हैं ओशो मंदिर में तो आप दीवालों में नहीं बैठे हैं, आप फर्श पर नहीं बैठे हैं, छत में नहीं बैठे हैं। आप कहां बैठे हैं, आकाश में बैठे हैं।

वह आकाश जो चारों तरफ से दीवालों से घिरा हुआ है, नीचे फर्श और उसके ऊपर छत है उस खाली स्थान पर आप बैठे हुए हैं। अगर यह आकाश स्वयं ही कुछ ठोस पदार्थ होता तब तो आप ओशो मंदिर में प्रवेश ही न कर पाते। आप कहते कि अरे! मैं भीतर घुसने की कोशिश कर रहा था और आकाश से टकरा गया। नहीं, आकाश का अर्थ है जगह, खालीपन, रिक्तता, शून्यता। तभी तो पृथ्वी उसमें घूम पाती है और चांद-तारे उसके चक्कर लगाते रहते हैं। इसका मतलब हुआ कि आकाश वास्तव में नहीं है। आकाश का अर्थ अगर शून्यता है, रिक्तता है, खाली जगह है इसका अर्थ हुआ कि आकाश नहीं है। अब देखिए, दो प्रकार के वक्तव्य हो गए- एक हुआ कि आकाश है और दूसरा वक्तव्य है कि आकाश नहीं है। और इन दोनों बातों में जरा भी विरोध नहीं है। जब हम यह कहते हैं कि आकाश है तो उसका अर्थ यह हुआ कि आकाश नहीं है। इसमें विरोध जरा भी नहीं है लेकिन यह तो बाहर के आकाश की बात हुई। ठीक ऐसे ही अंतस आकाश है। उसे किसी ने परमात्मा नाम दिया, किसी ने उसे शून्य नाम दिया, किसी ने उसको पूर्ण कहकर पुकारा, यह भाषाओं के भेद हैं, अपने-अपने रुझान हैं।

कोई सकारात्मक भाषा का प्रयोग करता है और कोई नकारात्मक भाषा का प्रयोग करता है, कोई कह सकता है आकाश है और कोई कह सकता है कि आकाश नहीं है और दोनों एक ही सत्य की तरफ इशारा कर रहे हैं। महावीर ने तो और भी अद्भुत बात की, उन्होंने सप्तभंगी तर्क खोजा। एक प्रश्न का उत्तर वे सात ढंगों से देते थे। अगर कोई उनसे पूछे कि ईश्वर है कि नहीं तो महावीर सीधा एक उत्तर नहीं देंगे, हां या नहीं में उत्तर नहीं देंगे, वे कहेंगे ईश्वर है और ईश्वर नहीं है। ईश्वर है और नहीं एक साथ, शायद ईश्वर है शायद ईश्वर नहीं है। अब तो बड़ी उलझन हो गई, बड़ी मुश्किल हो गई। महावीर सात प्रकार से उत्तर देते थे। सुनने वाले का सिर ही चकरा जाएगा। लेकिन अगर गौर से, सहानुभूति से तुमने सुना, समझा महावीर के दर्शन को हृदयंगम किया तो उनकी बात बहुत गहरी है। वे सत्य को उनके सारे पहलुओं में अभिव्यक्त कर रहे हैं, सिर्फ है और नहीं है में नहीं तोड़ रहे हैं। तो ईश्वरवादी

दर्शन बिल्कुल ठीक और अनिश्वरवादी दर्शन भी बिल्कुल ठीक। स्वयं धम्मपद पर बोलते हुए गति का तत्व धर्म और अगति का तत्व अधर्म है, महावीर की इस बात का उल्लेख करते हुए ओशो ने बड़ी सुंदर टिप्पणी की है कि बुद्ध आत्मा को क्यों इंकार करते हैं। जरा गौर से ओशो की इस अमृतवाणी को सुनो–

'बुद्ध ने परमात्मा शब्द का उपयोग नहीं किया, क्योंकि परमात्मा शब्द में ही ठहराव मालूम होता है। परमात्मा का मतलब है कि जो हो चुका और अब नहीं हो सकता, जिसमें कोई गति नहीं है। क्योंकि गति तो अपूर्ण में होती है, पूर्ण में कैसी गति। वह तो है ही वही जो होना चाहिए, अब उसमें कुछ और हो नहीं सकता। परमात्मा बूढ़ा नहीं हो रहा, ज्यादा ज्ञानी नहीं हो रहा, अज्ञानी नहीं हो रहा, पवित्र नहीं हो रहा, अपवित्र नहीं हो रहा, बुद्ध ने कहा ऐसी कोई चीज है ही नहीं। बुद्ध ने कहा है शब्द ही झूठ है, होना शब्द सत्य है। जब तुम कहते हो पहाड़ है तो बुद्ध कहते हैं ऐसा मत कहो कि पहाड़ है, ऐसा कहो कि पहाड़ हो रहा है। बुद्ध के प्रभाव में जो भाषाएं विकसित हुईं जैसे बर्मी, जो कि बुद्ध धर्म के पहुंचने के बाद यह भाषा बनी, तो वहां है जैसा कोई शब्द नहीं है बर्मी भाषा में। ईश्वर है, इसके लिए कोई ठीक–ठीक रूपांतरण बर्मी भाषा में नहीं होता और जब रूपांतरण करो तो उसका मतलब होता है कि ईश्वर हो रहा है। तुम जवान हो ऐसा कहना ठीक नहीं, जवान हो रहे हो। बूढ़े हो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, बूढ़े हो रहे हो।

जीवन है ऐसा कहना ठीक नहीं, जीवन हो रहा है। मृत्यु है ऐसा कहना भी ठीक नहीं, मृत्यु हो रही है। जगत में क्रियाएं हैं, घटनाएं नहीं, इसलिए बुद्ध ने कहा कि कोई भी परमात्मा नहीं है और बुद्ध ने कहा कि कोई आत्मा भी नहीं है। क्योंकि यह तो थिर चीजें मालूम पड़ती हैं, आत्मा कहो तो ऐसा लगता है कि जैसे कोई ठहरा हुआ पत्थर भीतर रखा है। बुद्ध ने कहा ऐसा कुछ भी नहीं है, चीजें हो रही हैं। बुद्ध ने जो प्रतीक लिया है जीवन को समझाने के लिए वह है दीए की ज्योति। सांझ को तुम दीया जलाते हो, रात भर दीया जलता है, अंधेरे से लड़ता है, सुबह तुम दीया बुझाते हो तो क्या तुम वही ज्योति बुझाते हो जो तुमने जलाई थी। उसी ज्योति को तुम कैसे बुझाओगे, वह ज्योति तो करोड़ बार बुझ चुकी। ज्योति तो प्रतिपल बुझ रही है, धुआं होती जा रही है, नई ज्योति आती जा रही है।

रात जो ज्योति तुमने जलाई थी वह ज्योति तुम सुबह नहीं बुझाते हो, उसी की श्रृंखला को बुझाओगे, रात वाली ज्योति जो तुमने जलाई थी वह तो भागी जा रही है, तिरोहित हुई जा रही है आकाश में, नई ज्योति प्रतिपल उसकी जगह आ रही है। तो बुद्ध ने कहा कि तुम्हारे भीतर कोई आत्मा है ऐसा नहीं, चित्त का प्रवाह है। एक चित्त आ रहा है और दूसरा जा रहा है जैसे दीए कि ज्योति आ रही है। तुम वही न मरोगे जो तुम पैदा हुए थे, जो पैदा हुआ था वह तो कब का मर चुका। जो मरेगा वह उसी संतति में होगा, उसी श्रृंखला में होगा लेकिन वही नहीं। यह बुद्ध की धारणा बड़ी अनूठी है। लेकिन बुद्ध ने जीवन को पहली दफे जीवंत करके देखा और जीवन को क्रिया में देखा, गति में देखा और जो भी आलस्य में पड़ा है, जो रुक गया है, ठहर गया है, जो नदी न रहा, सरोवर बन गया वह सड़ेगा।'

अगला प्रश्न है, सहानुभूति एवं करुणाभाव में क्या अंतर है? यह प्रश्न है स्वामी प्रेम जागरण का जो कि काठमाण्डू से हैं।

दोनों में जमीन आसमान का भेद है। सहानुभूति में हम दूसरे के दुख से दुखी हो जाते हैं जबकि करुणा में हम दूसरे के दुख से दुखी नहीं होते, यद्यपि उसे दुख के बाहर लाने की कोशिश करते हैं। ऐसा समझें एक व्यक्ति कीचड़ के गड्ढे में गिर गया और बाहर निकलने को तड़प रहा है। आप उसके किनारे में खड़े हैं। अब सहानुभूति का अर्थ हुआ कि आप भी गड्ढे में कूद जाएं और कीचड़ में घुस जाएं लेकिन इससे तो उस व्यक्ति को कोई मदद न मिली। करुणा का अर्थ है कि आप किनारे खड़े रहें और वहीं से कोई उपाय करें उस व्यक्ति को सहयोग पहुंचाने का, उसे कीचड़ से बाहर निकालने का। आपको स्वयं दुखी होने की जरूरत नहीं है। मैं देखता हूं कि जो लोग सहानुभूति प्रगट करते हैं वे स्वयं उदास और दुखी हो जाते हैं। लेकिन इससे तो दूसरे को कोई मदद नहीं मिलती, उसका दुख कम नहीं होता।

यह तो ऐसे ही हुआ कि एक आदमी का एक्सीडेंट हो गया और उसकी पैर की हड्डी टूट गई, वह अस्पताल में पलंग पर लेटा हुआ है और डॉक्टर आया तो कहा कि मुझे तुमसे बड़ी सहानुभूति है और एक हथोड़े से अपने पैर को भी तोड़ लिया और दूसरे पलंग पर खुद डॉक्टर भी लेट गया, लेकिन इस सहानुभूति से उस मरीज को तो कोई मदद न मिली, उसको तो कोई लाभ नहीं हुआ। नहीं, बेहतर हो कि डॉक्टर स्वस्थ रहे, अपनी हड्डियां न तोड़े तभी वह इस मरीज की सेवा कर पाएगा। तो सहानुभूति और करुणा में भेद समझना, सहानुभूति बड़ी सस्ती और नासमझी पूर्ण है, करुणा बड़ी गहरी बात है। करुणा में व्यक्ति अपने आनंद को नहीं खोता। इसलिए कई बार हमें ऐसा लगता है कि बुद्ध, महावीर, कबीर, नानक, ओशो यह लोग वास्तव में करुणावान हैं कि नहीं क्योंकि हमारे दुखों से यह बिल्कुल दुखी नहीं होते? कोई भ्रम में पड़ सकता है कि यह लोग तो बड़े कठोर हैं, यह तो अपने परमानंद में डूबे हुए हैं। नहीं, वास्तव में वे ही करुणावान हैं। वे सच्चिदानंद में स्थित रहें वहीं से वे हमारी मदद कर सकते हैं दुख के गड्ढे से बाहर निकलने में। यही करुणा वास्तविक है, करुणा एक सद्भाव है, एक शुद्ध भाव है।

सहानुभूति एक पर भाव है, दूसरे का प्रभाव है, अशुद्ध भाव है। शुद्ध भाव और अशुद्ध भाव की परिभाषा समझना, अशुद्ध भाव प्रतिक्रिया स्वरूप पैदा होते हैं, बाहर की परिस्थिति या किसी व्यक्ति के संदर्भ में उसके कारण उत्पन्न होते हैं। करुणा दूसरे के कारण पैदा नहीं होती, वह हमारे भीतर का स्वभाव है। जो व्यक्ति सहानुभूति में रस रखता है वह चाहेगा कि दूसरे लोग दुखी हों, नहीं तो फिर वह सहानुभूति कैसे करेगा। इसलिए अक्सर दयालु लोग, समाजसेवी लोग ऊपर-ऊपर से दिखाई पड़ते हैं कि कितनी सेवा कर रहे हैं, लोगों का भला चाहते हैं लेकिन भीतर-भीतर वह भला नहीं चाहते। क्योंकि अगर लोगों का वास्तव में भला हो जाए तो फिर वे किसका भला करेंगे। अगर लोग सच में ही सुखी हो जाएं फिर यह सहानुभूति दिखाने वाले तो किसी काम के न बचे, तब तो इनकी जिंदगी व्यर्थ हो जाएगी। जैसे डॉक्टर ऊपर-ऊपर से दिखावा करता है कि लोग स्वस्थ हो जाएं किन्तु उसके भीतर की मनोकामना यही होती है कि लोग बीमार बने रहें। अगस्त-सितम्बर के महीने में हमारे देश में जब इन्फेक्सेस डिसीजेस फैलती हैं चारों तरफ तब डॉक्टर अति प्रसन्न नजर आते हैं। वह

कहते हैं आज कल सीजन बहुत अच्छा चल रहा है, मतलब मलेरिया फैल रहा है, हैजा फैला रहा है, लोग फटाफट मर रहे हैं। दिसम्बर–जनवरी में सबसे कम बीमारियां होती हैं हमारे देश में, उस समय डॉक्टर उदास बैठे मक्खियां उड़ा रहे होते हैं अपनी–अपनी क्लीनिक में। यह डॉक्टर जो सहानुभूति मरीज के साथ प्रगट कर रहा है निश्चितरूप से यह दिखावटी है, बनावटी है, इसके भीतर करुणाभाव नहीं है। करुणा का अर्थ है कि हम वास्तव में चाहते हैं कि कहीं दुख न हो। और जो दुख में हैं उन्हें हम बाहर निकालने की कोशिश करेंगे। लेकिन हम अपना शांति और आनंद नहीं खोएंगे। हमारा आनंद खोने से जगत को कोई लाभ नहीं होता। तो सहानुभूति और करुणा में जमीन–आसमान का अंतर है।

अगला सवाल है स्वामी सहजानंद का जो कि बाम्बे से आए हैं, कर्मयोग व ज्ञानयोग की तुलना में भक्ति साधना सबसे आसान लगती है, क्या यह सच है?

सामान्यतः लोग जिसे भक्ति कहते हैं उसे मैं भक्ति नहीं कहता। तुमने जो सवाल पूछा है वह ठीक है लेकिन पहले समझ लेना भक्ति क्या है? भक्ति अहोभाव की दशा है। भक्ति यानि मांगना नहीं, भक्ति यानि याचना नहीं, भक्ति यानि धन्यवाद का भाव। परमात्मा ने इतना दिया है, अब और क्या मांगना, धन्यवाद से भरो, अनुग्रह से भरो। लेकिन सामान्यतः हम सोचते हैं कि भक्ति तो मांगने की बात है तो हमें कुछ करना नहीं पड़ेगा, कर्मयोग में तो बहुत कुछ करना पड़ेगा, ज्ञानयोग में बड़ा चिंतन–मनन करना पड़ेगा, भक्ति अच्छा है कि बस मांग लेंगे तो परमात्मा दे देगा, हमारे कुछ करने की जरूरत ही नहीं। अगर तुमने आलस्य के लिए रास्ता खोजा भक्ति के माध्यम से तो तुम गलत प्रकार की भक्ति में चले जाओगे। वह वास्तविक भक्ति नहीं है।

मैंने सुना है मारवाड़ी सेठ चंदूलाल अपने दोस्त नसरुद्दीन से कह रहे थे कि जब मैं सूट–बूट, टाई इत्यादि पहनकर सब्जी खरीदने जाता हूं तो सब्जी वाले बहुत मंहगी सब्जी देते हैं किन्तु जब मैं पुराने, फटे कपड़े पहनकर जाता हूं तो सस्ती सब्जी मुझे मिल जाती है। नसरुद्दीन ने कहा कि भाई साहब आप एक काम करो, कटोरा लेकर जाया करो सब्जी खरीदने, सस्ती नहीं, मुफ्त में मिल जाएगी। अगर तुमने भक्ति को ऐसा समझा कि भगवान से कुछ मांगना है, अपनी कामनाओं का और याचनाओं का कटोरा लेकर पहुंच गए तो क्षमा करना, उसे मैं भक्ति ही नहीं कहता, वह भिखमंगापन है। उससे तो बेहतर है कि फिर तुम कर्मयोग करना, अपने कर्म पर भरोसा करना या ज्ञानयोग की प्रक्रिया से गुजरना। यद्यपि कर्मयोग और ज्ञानयोग से उपलब्धि नहीं होगी।

मेरी बात गौर से सुनना, कर्मयोग, ज्ञानयोग अथवा अन्य योगों से गुजर–गुजरकर केवल लंबे समय में यह बात समझ में आएगी कि हमारे करने से पाने का कोई संबंध नहीं है, परमात्मा मिला ही हुआ है। उस दिन अहोभाव जन्मेगा। मैं जिसे वास्तविक भक्ति कह रहा हूं उसकी शुरुआत होगी। तुम्हारी बात बिल्कुल ठीक, भक्ति सर्वोपरि है। भक्त हो सको तो परमसौभाग्यशाली हो, कुछ और होने की जरूरत नहीं। लेकिन अपने आलस्य को एक सुंदर शब्द के पीछे मत छिपाना। अगर भक्त का भाव नहीं पैदा होता तुम्हारे भीतर तो फिर कर्म, ज्ञान, तंत्र, अन्य किसी मार्ग से चलो। चलते–चलते एक दिन समर्पण घटित हो जाता है। तुम संकल्प से शुरू करो, समर्पण आएगा। तुम अपने श्रम से शुरू करो, एक दिन अहोभाव फूटेगा वह पराभक्ति होगी।

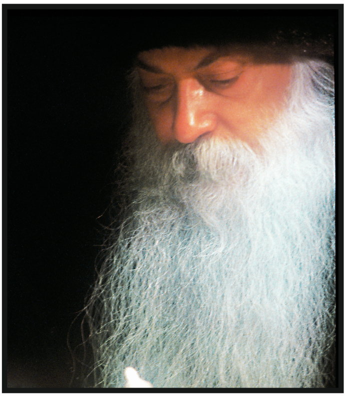

अध्याय–56

माया से मुक्ति की विधि

स्वामी जी प्रणाम, आज का पहला प्रश्न पूछा है रोहतक से राकेश यादव जी ने, कहते हैं कि षटरि्पुओं से परेशान हूं, विशेषकर घर–गृहस्थी का राग और जमीन–जायदाद की चिंता बहुत सताती है। इस माया–मोह से मुक्त होने की कोई सरल सी तरकीब बताएं।

राकेश यादव, ओशो जो कुछ भी बताते हैं वह सरल ही है, कठिन बात वे कहते ही नहीं। विधायक को पकड़ो, नकारात्मकता से न लड़ो। उजाले की फिक्र करो, अंधेरे की चिंता नहीं, कठिन काम है अंधेरे से लड़ना। कठिन क्या, असंभव ही है। समझो एक घर में अंधेरा है और तुम अंधेरा को बाहर निकालना चाहते हो तो कैसे निकालोगे? धक्का मारोगे, लात–घूसा चलाओगे, पहलवानों से पिटवाओगे, कि अंधेरे की हत्या करवाओगे? कोई भी विधि काम न आएगी। नहीं, अंधेरे को तुम न भगा पाओगे ऐसे में। लेकिन एक छोटा सा काम करो, एक दीपक जला लो और अंधेरा पाया ही नहीं जाएगा। तुम जिन समस्याओं का वर्णन कर रहे हो वे सब ध्यान के अभाव में घटित होती हैं। ध्यान का दीपक जलाओ और तब तुम पाओगे कि इन सारी समस्याओं का अंधेरा गायब हो गया, गायब क्या हो गया, कभी था ही नहीं। अंधेरे से कभी मत लड़ना, प्रकाश को जलाना। इससे ज्यादा सरल तरकीब और कोई नहीं हो सकती। और वह अंधेरा चाहे हजारों साल पुराना ही क्यों न हो, क्षण भर में दीप जलाते ही वह विलीन हो जाएगा।

मुझे याद आता है गौतम बुद्ध के धम्मपद पर प्रवचन देते हुए ओशो ने जो समझाया उसमें एक सूत्र आता है। बुद्ध कहते हैं कि जैसे कोई घर अच्छे से छाया न गया हो, पुराने जमाने में खपड़ों के घर होते थे तो वह अगर ठीक से छाया न गया हो तो उस घर में बरसात का पानी घुस जाता है। ठीक इसी प्रकार ध्यानरहित व्यक्ति के भीतर सब प्रकार के माया, मोह, राग इत्यादि प्रवेश कर जाते हैं। तो अपने घर को ठीक से छाओ, बरसात को दोष मत दो कि पानी क्यों भीतर आया। तुम्हारी छत पर खपड़े ठीक से नहीं लगे। इस सूत्र को समझाते हुए परमगुरु ओशो ने जो कहा है उसे गौर से सुनना, तुम्हारे प्रश्न का उत्तर उसमें मिल जाएगा।

राग को तुम छोड़ न पाओगे, ध्यान को जगाना पड़ेगा। इतनी पहचान तुमको हो जाए कि क्या व्यर्थ है और क्या सार्थक, फिर तुम ध्यान को जगाओ, फिर तुम राग को छोड़ने में मत लगना। क्योंकि वह भूल बहुतों ने की है। राग को पकड़ो तो भी राग से उलझे रहोगे, राग को छोड़ो तो भी राग से उलझे रहोगे। असली सवाल राग का नहीं है, इसलिए राग को छोड़ने की फिक्र न करना, वह तो ऐसे ही होगा कि ठीक से घर छाया हुआ नहीं है और बरसात होने लगी और तुम घर का पानी बाहर उलीचने में लगे हो। अब तुम पानी उलीचते रहो, इससे कोई फर्क न पड़ेगा क्योंकि घर का छप्पर नए पानी को लिए आ रहा है। राग को उलीचने से कुछ भी न होगा, छप्पर को ठीक से छा लेना जरूरी है। इसलिए समस्त प्रज्ञावान पुरुषों का जोर ध्यान पर है। और जो महात्मा तुम्हें साधारणतया समझाते हैं कि राग छोड़ो वह गलत समझाते हैं। वह तुमसे कह रहे हैं पानी उलीचो, फिर जो थोड़ा–बहुत पानी बचा रह गया उसे बाहर कर देने में क्या अड़चन है।

ध्यान जो साध लेता है उसका राग अपने आप मिट जाता है, राग से जो लड़ता है उसका राग तो मिटता नहीं, ध्यान भी सधना मुश्किल हो जाता है। मेरे पास रोज बहुत सारे लोग आते हैं, वह कहते हैं किसी तरह से क्रोध चला जाए। मैं उनसे कहता हूं कि तुम क्रोध की फिक्र न करो, तुम ध्यान करो। वह कहते हैं ध्यान से क्या होगा, आप तो हमें क्रोध छोड़ने की तरकीब बता दें। ऐसे लोग भी आ जाते हैं जो कहते हैं कि हमें ध्यान वगैरह से कुछ लेना–देना नहीं, हमारा तो मन अशांत है, यह भर शांत हो जाए। अब वह क्या कह रहे हैं उन्हें पता नहीं। अब यह आदमी यह कह रहा है कि यह जो वर्षा का पानी जो घर में भर गया है यह भर न भरे, मुझे खप्पर से कुछ लेना–देना नहीं है। अब कुछ भी नहीं किया जा सकता चूंकि यह समझ ही नहीं रहा है कि बीमारी कहां है। धन छोड़ने में मत लगना, ध्यान को पाने में लगना क्योंकि छोड़ने में जो शक्ति लगाओगे उतनी ही शक्ति से ध्यान पाया जा सकता है। मुफ्त में तो छोड़ना भी नहीं होता, उसमें भी ताकत लगानी पड़ती है। वह ताकत व्यर्थ गंवा रहे हो। पहला काम है घर के छप्पर को ठीक से छा लो।

तो राकेश यादव, धन नहीं छोड़ना है, ध्यान को उत्पन्न करना है, ध्यान को पाना है। छोड़ने की भाषा को छोड़ो, पाने की भाषा को पकड़ो। घर से नहीं भागना है, पूरे ब्रम्हाण्ड को, सारे विश्व को घर बना लेना है। यह सारा अस्तित्व हमारा घर है। गृहस्थी और परिवार को नहीं छोड़ना है, वसुधैव कुटुम्बकम की धारणा को पकड़ना है। यह सारा अस्तित्व हमारा

परिवार है, हम इसके हिस्से हैं। और जमीन की तुम बात कर रहे हो, नहीं, वह असली जमीन है नहीं। असली आधार, असली जमीन तो अपने भीतर है, स्वयं में स्थित हो जाना। और तुम कह रहे हो जायदाद, जिसे तुम संपदा कह रहे हो वह संपदा नहीं, विपदा है। चलो आजीविका और कामचलाउ, ठीक है जीवन के लिए किन्तु असली संपदा तो तुम्हारे भीतर है, वह तुम्हारा स्वयं का चैतन्य है। उसके पाए बगैर तो विपदा ही विपदा है। तुम खुद ही कह रहे हो कि इनकी चिंताएं बहुत सताती हैं, फिर इनको संपदा क्यों कहना, यह तो विपदा है जो चिंता लेकर आती है। मैं तुम्हें कुछ भी छोड़ने की नहीं कहता हूं, बल्कि कुछ विराटता को पाने का आव्हान करता हूं। और जिन षटरिपुओं की तुम बात कर रहे हो, काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि वे सब अहंकार की शाखाएं हैं और अहंकार है अंधकार के समान। बस चैतन्य का, ध्यान का दीया जलाओ और अंधकार पाया ही नहीं जाता।

आज तक कोई भी व्यक्ति क्रोध से लड़कर क्रोध को नहीं जीत सका। क्रोध से लड़ेगा कौन, जो लड़ेगा वह स्वयं ही क्रोधी है तभी तो वह लड़ रहा है। तुम द्वेष से दुश्मनी करोगे तो दुश्मनी और प्रगाढ़ होगी, यही तो द्वेष है, इस प्रकार से तुम कभी भी न जीत सकोगे। पाजिटिव भाषा में सोचो, निगेटिव भाषा में सोचना बंद करो। ओशो के पहले तक अधिकांश धर्मगुरुओं ने बड़ी निगेटीविटी सिखाई, आत्मनिंदा सिखाई, स्वयं से लड़ना सिखाया। नहीं, अंधेरे से लड़ना असंभव है, प्रकाश को जलाओ।

अगला प्रश्न पूछा है बाम्बे से सोनू शर्मा ने, कहते हैं कि शायद मैं धरती पर सर्वाधिक दुखी इंसान हूं, सभी लोगों ने मुझे जी भर कर तकलीफें दी हैं, किस–किस के नाम लूं। एक कष्ट यह भी है कि लोग मुझे घमण्डी समझते हैं जबकि मैं स्वाभिमानी हूं। क्या मरकर ही इन दुखों से छुटकारा मिलेगा? गीतकार इन्दीवर जी की इन पंक्तियों में ऐसा लगता है कि मेरे ही भाव प्रगट हो गए हैं–

सताएगा किसे तू आसमां जब हम नहीं होंगे,
दिए हैं तूने ऐसे गम जो कभी कम नहीं होंगे,
सितारे टूटने से आसमां का क्या बिगड़ता है,
कमी क्या होगी दुनिया में अगर हम नहीं होंगे।
हैं जब तक हम तभी तक दुश्मनी है हमसे दुनिया को,
यही दुनिया हमें ढूंढ़ेगी जब हम नहीं होंगे।
गुरुदेव मुझे मुक्ति मार्ग समझाइए।

अभी–अभी मैं जिस अहंकार की बात कर रहा था सोनू शर्मा, तुम्हारी समस्याएं भी उसी से संबंधित हैं। सच पूछो तो अहंकार ही सारी समस्याओं की जड़ है। तुम कह रहे हो कि लोग तुम्हें घमण्डी समझते हैं जबकि तुम हो स्वाभिमानी। बड़ी भूल कर रहे हो सोनू, अक्सर हम अपने अहंकार को कहते हैं स्वाभिमान और दूसरे के अहंकार को कहते हैं घमंड, अपने अहंकार को कहते हैं सेल्फ रिस्पेक्ट। यह डबल स्टेंडर्ड छोड़ो, अहंकार ही है वह। अगर अहंकार न होता तो तुम दुखी न होते। तुम कह रहे हो कि मैं दुनिया में शायद सर्वाधिक दुखी इंसान हूं, यह भी तुम्हारा अहंकार ही है, उसमें भी तुम आगे हो। किसी चीज में पीछे तुम रह नहीं सकते, सर्वाधिक दुखी इंसान कह रहे हो अपने को। तुम्हारे प्रश्न से ही पता चलता है। और जो लोग तुम्हें घमण्डी

समझते हैं वे ठीक ही समझते हैं। और तुम कह रहे हो कि दुनिया में हर व्यक्ति मुझे कष्ट और तकलीफ दे रहा है। कोई कष्ट और तकलीफ तुम्हें जानबूझकर नहीं दे रहा है, यह भी तुम्हारा अहंकार है कि सारे लोग तुम्हारे पीछे पड़े हुए हैं। किसको कहां फुर्सत, लोग अपनी-अपनी समस्याओं में व्यस्त हैं, किसी को फुर्सत नहीं है कि तुम्हें सताने के लिए योजनाएं बनाता रहे, यह तुम्हारा अहंकार है। अहंकार एक घाव के समान है। घाव में दर्द होता है, हवा भी चलती है तो घाव में दर्द होता है। अब हवा तुम्हारे घाव को दुखाने के लिए तो नहीं चल रही है। कभी ऐसा होता है न कि पैर में चोट लग गई, फिर ऐसा होगा कि उस दिन टेबिल से भी पैर टकराएगा और बच्चा खेलते हुए आएगा तो तुम्हारे पैर में खड़ा हो जाएगा, उस दिन हर चीज पैर में चोट करेगी। अब तुम्हें आश्चर्य होता है कि इसके पहले कभी ऐसा नहीं हुआ। रोज ऐसा हो रहा था लेकिन जब तुम्हारे पैर में घाव नहीं था तो तुम्हें इन चीजों का पता नहीं चलता था।

अहंकार एक घाव के समान है। तुम्हें लगेगा कि हर कोई आकर उसी से टकरा रहा है। नहीं, कोई नहीं टकरा रहा है। वह बच्चा जानबूझकर आकर तुम्हारे पैर में नहीं खड़ा हो गया है और न ही बेचारी टेबिल को कुछ पता है कि आज तुम्हारे पैर में घाव है तो आकर तुम्हारे पैर में टकरा जाए। टेबिल को तुमसे क्या लेना-देना। अपने घाव की फिक्र करो कि तुम्हारा घाव ठीक हो। नहीं, यह स्वाभिमान नहीं है। स्व का ज्ञान पाए बगैर स्वाभिमान हो ही नहीं सकता, आत्मज्ञान के बगैर जब तक तुम स्व को जानते ही नहीं तो तुम स्व का अभिमान करोगे कैसे? तुम स्वयं ही स्वयं को नहीं जानते तो कोई स्वाभिमान नहीं है संभव, यह शुद्ध अहंकार है। एक अच्छा लेबल तुम अपने रोग के ऊपर लगा देते हो, तब बड़ी मुश्किल है, तुम अपने घाव पर फूल रख दिया, खूबसूरत पट्टी बांध दी, तुमने सजा दिया अपने घाव को लेकिन घाव तो पीड़ा और तकलीफ देता ही रहेगा। ऊपर से सुंदर हो जाने से वह मिट नहीं जाएगा। इस भ्रांति में न पड़ो कि तुम स्वाभिमानी हो, अगर वास्तव में स्वाभिमानी होना है तो पहले स्व को जानो। मैं कौन हूं इसका उत्तर खोजो। और तब अद्भुत घटना घटती है, जो व्यक्ति मैं को खोजने चलता है उसे मैं कहीं मिलता ही नहीं। मैं भाव विदा हो जाता है, अहंकार रूपी अंधकार विलीन हो जाता है। वह मैं कौन हूं की खोज में तुम्हारी चैतन्यता, तुम्हारी जागरूकता, तुम्हारी ध्यान की अवस्था विकसित हो जाती है और तुम्हारे भीतर दीपक जल जाता है।

अगला सवाल पूछा है नई दिल्ली से सौरव सुमन ने, औपचारिकता किस सीमा तक निभानी चाहिए कि पाप न लगे?

सबसे पहले यह समझ लो कि औपचारिकता का पाप-पुण्य से कुछ लेना-देना नहीं। औपचारिकताएं, नैतिकताएं और इस प्रकार की सामाजिक धारणाएं तो फैशन की तरह हैं जो देशकाल में बदलती रहती हैं। अलग-अलग देशों के अलग-अलग एटीकेट्स और मैनर्स हैं, अलग-अलग देश में अलग-अलग समय में एक ही औपचारिकताएं अलग-अलग प्रकार से प्रचलित रहीं, इनका कोई शाश्वत मूल्य नहीं है। पाप-पुण्य तो बड़ी गहरी बात है, वह तो एक शाश्वत मूल्य है, एक इटर्नल वैल्यू और औपचारिकता तो मैनेरिज्म का हिस्सा है, सभ्यता का हिस्सा है कि दूसरे के साथ हमारा संघर्ष न हो या कम से कम हो। तो औपचारिकताएं समाज की जो भी प्रचलित हैं, जिस समाज में, जिस देश में तुम रहते हो वहां जो प्रचलन में है उसको

निभाना ताकि लोगों से अनावश्यक तुम्हारा संघर्ष न हो। कई लोगों को मैं देखता हूं, वे कहते हैं कि हम तो ओशो की बात मानकर जीते हैं, प्रामाणिक ढंग से जीते हैं, हम क्यों औपचारिकताएं निभाएं? ओशो कहते हैं जागरण पर जोर है, आचरण पर नहीं। और वे समाज के नीति-नियम, मर्यादाएं और आचरण छोड़ देते हैं। यह लोग भ्रांति में हैं, यह लोग ओशो की बात समझे ही नहीं। ओशो कह रहे थे जागरण को पैदा करो, वह तो उन्होंने पैदा नहीं किया और आचरण की औपचारिकताएं छोड़ दीं। बड़ी भूल हो गई। ओशो कह रहे थे प्लास्टिक का फूल नहीं, सच्चा फूल पैदा करो।

उन्होंने सच्चा फूल तो पैदा किया नहीं, प्लास्टिक का फूल भी हटा दिया। तब तुम अनावश्यक रूप से समाज के साथ संघर्ष में पड़ जाओगे। और जिसके साथ संघर्ष करोगे उसी तरफ तुम्हारा ध्यान लगा रहेगा और तुम्हारी चेतना बहिर्मुखी हो जाएगी। इससे लाभ कुछ भी न होगा, तुम बहिर्मुखी हो जाओगे, फिर अंतर्मुखता और ध्यान में डूबना संभव नहीं होगा। तो जहां तक बन सके औपचारिकताएं निभाना। याद रखना, मैं कह रहा हूं जहां तक बन सके। न अपने आपको सताना, न दूसरों को सताना बस इतना ख्याल रखना, पाप-पुण्य से इसका कुछ लेना-देना नहीं है।

मुझे मुल्ला नसरुद्दीन की एक कहानी याद आती है। एक दिन किसी ने द्वार पर दस्तक दी, नसरुद्दीन ने दरवाजा खोला, देखा तो कोई दस साल पुराना एक मित्र लंबे समय बात मिलने आया है। जब वह मित्र भीतर आया तो उसके साथ ही एक बड़ा सा गंदा सा कुत्ता भी प्रवेश किया। नसरुद्दीन ने मित्र का स्वागत किया। मित्र से बातचीत करने लगा और वह कुत्ता यहां-वहां टहलने लगा। नसरुद्दीन ने सोचा कि मित्र का कुत्ता साथ में आया है अब क्या कहें इससे, कीचड़ में लिपटा था वह कुत्ता वह कालीन पर आकर लोट-पोट होने लगा। नसरुद्दीन के मंहगे कालीन में कीचड़ लगने लगी लेकिन नसरुद्दीन ने कुछ न कहा, धीरज रखा कि अब दोस्त का कुत्ता है, दस साल बाद दोस्त मिलने आया है तो इससे क्या कहें। नसरुद्दीन ने कहा कि यह कुत्ता बड़ा नटखट है। दोस्त ने कहा कि हां, नटखट तो है लेकिन बड़ा प्यारा है।

नसरुद्दीन ने कहा कि हां-हां, नटखट तो है लेकिन बड़ा प्यारा है। तब वह कुत्ता सोफे पर चढ़ गया और सोफे के कव्हर को दांतों से काटकर के फाड़ने लगा, फिरवह बिस्तर के गद्दे और तकिए को भी फाड़ने लगा, नसरुद्दीन ने तब भी धीरज रखा। बीच-बीच में कहता कि कुत्ता बड़ा नटखट है, मित्र भी मुस्कुराकर बोला कि हां, बड़ा नटखट है। अंततः जब वह कुत्ता डायनिंग टेबल पर चढ़कर बर्तनों का ढक्कन हटाकर उनमें मुंह डालने लगा तब नसरुद्दीन से न रहा गया, उसने कहा कि भाई, अपने इस कुत्ते को पकड़ो, सम्हालो। दोस्त ने कहा कि मुझसे क्यों कह रहे हो, यह कुत्ता तो तुम्हारा है, मैं तो यही समझ रहा था। नसरुद्दीन समझ रहा था कि दोस्त का है। संयोग की बात कि जब वह दरवाजा खोला तभी वह कुत्ता भीतर आ गया, दोस्त के साथ आया तो नसरुद्दीन समझा कि दोस्त का है और दोस्त समझ रहा है कि नसरुद्दीन का है। नहीं, मैं नहीं कहता कि औपचारिकता को इस हद तक खींचते ले जाना। औपचारिकताएं ठीक हैं लेकिन याद रखना, किस सीमा तक, जहां तक न तुम्हें कष्ट मिले और न दूसरे को कष्ट मिले। हां, पाप-पुण्य इत्यादि से इसका कुछ लेना देना नहीं है।

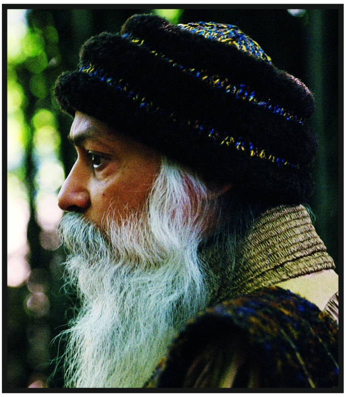

अध्याय–57

गीता में सब समाविष्ट है

स्वामी जी के चरणों में प्रणाम, आज का पहला प्रश्न पूछती हैं श्रीमती सुनीता कानपूर से, भारत में जन्मे चारों धर्मों पर ओशो ने अपनी अनूठी दृष्टि दी। अध्यात्म के समस्त रहस्यों को उजागर करने वाली ओशो की कौन सी किताब है? अगर मैं एक ही पुस्तक पढ़ना चाहूं तो किसका अध्ययन करूं?

सवाल महत्वपूर्ण है क्योंकि ओशो ने छः सौ पचास किताबों का सृजन किया। शायद एक व्यक्ति के लिए अपनी पूरी जिंदगी में इतनी सारी किताबें पढ़ना संभव नहीं है। तो सवाल महत्वपूर्ण है कि एक नया साधक कहां से पढ़ना शुरू करे। सुनीता जी, मैं आपको सलाह दूंगा कि अगर आपको सिर्फ एक ही किताब चुननी है तो 650 किताबों में से ओशो की वह किताब चुनिए जिसका नाम है 'गीतादर्शन', क्योंकि इस किताब में वह सब आ गया जो अन्य धर्मों में है। भारत में चार बड़े धर्म विकसित हुए– हिन्दू, जैन, बौद्ध और सिक्ख, इन चारों का सारसूत्र गीतादर्शन में समाया हुआ है। ऐसी कोई बात नहीं है जो बाहर छूट गई हो। गीता ऐसा समझो बिल्कुल काम्पैक्ट फार्म में, संक्षिप्त से संक्षिप्त में धर्म का पूरा का पूरा भण्डार उसमें छिपा हुआ है। लेकिन एक बात बता दूं, गीतादर्शन को कोई छोटी किताब न समझना, गीता के अठारह अध्यायों पर ओशो ने दो सौ उन्नीस प्रवचन दिए हैं। एक प्रवचन लगभग डेढ़ या पौने दो घण्टे का है। तो कुलमिलाकर साढ़े तीन सौ घण्टे की यह प्रवचन माला है। लेकिन यह एक प्रवचन माला पर्याप्त है। तुम बाकी की छः सौ उन्चास किताबों को भूल जाओ, यह एक ही पर्याप्त है।

इसको पढ़कर परमरहस्य खुल जाएगा, अपने जीवन के भीतर की बात पकड़ में आ जाएगी। इस संबंध में ओशो की अमृतवाणी तीन मिनट के लिए सुनाना चाहूंगा, उसमें तुम्हारे प्रश्न का उत्तर भी मिल जाएगा कि क्यों मैंने गीता को चुना?

'कृष्ण एक गहन समन्वय हैं, उन्होंने भारत को जितना जाना था सबको गीता में समाविष्ट कर लिया है। उनका किसी से कोई विरोध नहीं है, वह सभी के भीतर सत्य को खोज लेते हैं इसलिए गीता सारग्रंथ है। वेद को अगर भूल जाओ तो चलेगा क्योंकि जो भी वेद में सार है वह गीता में आ गया। महावीर विस्मृत हो जाएं चलेगा क्योंकि महावीर का जो भी सार है वह गीता में आ गया, सांख्य शास्त्र न बचें चलेगा क्योंकि इनकी बात भी गीता में आ गई है। अगर भारत के सब शास्त्र खो जाएं तो गीता पर्याप्त है। कोई भी प्रज्ञावान पुरुष गीता से फिर सारे शास्त्रों को निर्मित कर सकता है। गीता में सारे सूत्र हैं। तो गीता निचोड़ है। गीता अकारण ही करोड़ों लोगों का हार नहीं हो गई।

जब पहली दफा जर्मनी के एक बहुत बड़े विचारक सापनहार ने गीता को पढ़ी तो उसे सिर पर रखकर नाचने लगा। सापनहार को किसी ने कभी नाचते हुए नहीं देखा था। वह बहुत गंभीरचित्त आदमी था, नाचना जंचता ही नहीं था उस पर। उसका पूरा जीवनदर्शन ही उदासी, दुखवाद है। वह कहता है हंसी की तो कोई सुविधा ही नहीं जगत में, वह नाचने लगा। उसके पास बैठे मित्रों ने कहा कि क्या तुम पागल हो गए हो सापनहार, यह क्या कर रहे हो? उसने कहा कि ऐसा ग्रंथ मैंने कभी देखा नहीं जिसमें सब आ गया, ऐसा ग्रंथ कभी देखा नहीं जिसमें सभी विराधों के बीच सामंजस्य हो गया, जिसमें किसी का खण्डन नहीं किया गया है और सभी को स्वीकार कर लिया गया है।

हिन्दुओं ने ऐसे ही कृष्ण को पूर्ण अवतार नहीं कहा है। महावीर थोड़े अधूरे लगते हैं, एकांगी मालूम होते हैं और अगर सभी महावीर हो जाएं तो संसार को बड़ा धक्का लगेगा, भारी नुकसान होगा, फिर आगे महावीर होने की भी संभावना खत्म हो जाएगी। नहीं, महावीर इक्के-दुक्के ही ठीक हैं, नमूने की तरह अच्छे हैं लेकिन अगर सभी जगह वही खड़े हो जाएं, जहां निकलों वहीं वह खड़े हैं तब बहुत घबराने वाली बात हो जाएगी। नमक की तरह ठीक, पूरा भोजन महावीर का नहीं हो सकता। इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि जैन कोई संस्कृति पैदा नहीं कर पाए और वह कर भी नहीं सकते क्योंकि नमक से कभी पूरा भोजन नहीं बना है।'

अगला प्रश्न पूछते हैं रमेश सुतरिया मुंबई से, क्या प्रार्थना रोज करनी जरूरी है, और कितनी देर करनी चाहिए?

ऐसा सवाल तुम खाना खाने के बारे में नहीं पूछते कि क्या रोज खाना खाना चाहिए, कितनी देर तक खाना चाहिए। ऐसा सवाल तुम पानी के बारे में नहीं पूछते कि क्या रोज पानी पीना पड़ेगा, थक गए पानी पीते-पीते, आखिर प्यास कब बुझेगी। ऐसा सवाल तुम प्रेम के बारे में नहीं पूछते कि कब तक प्रेम करना पड़ेगा? मैंने सुना मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी टाकीज में फिल्म देख रहे थे, बड़ी रोमांटिक फिल्म थी। बीच कहानी में नसरुद्दीन की पत्नी गुलजान ने अपने पतिदेव से कहा कि देखा हीरो हीरोइन को कैसा प्रेम कर रहे हैं? अजी, तुम ऐसा प्रेम मुझे क्यों नहीं करते? नसरुद्दीन ने कहा भाग्यवान, तू जानती है, तीन घण्टे प्रेम

करने के उसने डेढ़ करोड़ रुपए लिए हैं, हम फोकट में जितना कर देते हैं उतना बहुत समझ। अगर प्रेम सच है, सचमुच में प्रेम है तो फिर यह सवाल नहीं उठता कि प्रेम कब तक। तुम श्वांस के बारे में नहीं पूछते कि जब से पैदा हुए हैं तभी से श्वांस ले रहे हैं और कब तक लेनी पड़ेगी, हृदय धड़कता जा रहा है तो कब तक इसे धड़कने दें, ऐसा सवाल तो तुम्हारे भीतर कभी नहीं उठता। प्रार्थना के बारे में क्यों, प्रार्थना तो परम प्रेम है, वह तो आत्मा की श्वांस है और आत्मा का भोजन है।

तुम प्रार्थना को जानते ही नहीं कि प्रार्थना क्या है। तुमने कोई कर्तव्य समझ लिया है प्रार्थना को, जैसे नसरुद्दीन कह रहा है अपनी पत्नी से, वह कर्तव्य होगा, प्रेम न होगा। तुम प्रार्थना को ड्यूटी समझ लिए हो, तुम प्रार्थना को समझे ही नहीं, प्रार्थना तो आनंद का अतिरेक है, धन्यवाद का भाव अहोभाव है। जब शराब पीने वाले नहीं पूछते कि कब तक पिएं तो तुम जिस प्रार्थना की बात कर रहे हो वह तो महाशराब है। कबीर साहब कहते हैं, पीबत राम रस लगी खुमारी। नानक कहते हैं, दिन-रात चढ़ी ही रहती है, नाम खुमारी राम का चढ़ी रहे दिन-रात। यह सवाल नहीं उठता कि कब तक। तुमने प्रार्थना का आनंद नहीं जाना। तुम मांगने को, याचना को प्रार्थना समझ रहे हो। भूल में हो, वह प्रार्थना नहीं है। सुनो, किसी साधारण शराब पीने वाले ने लिखा है-

फिर आई घटा काली मयखानों को जोश आया,
जब चुपके से महफिल में वह खानाबदोश आया,
अल्लाह रखे कायम यह मयखाना कयामत तक,
ला और पिला साकी, ला और कि होश आया।
ढल गया आफताब ऐ शाकी ला पिला दे शराब ऐ साकी,
या सुराही लगा मेरे मुंह से, या उलट दे नकाब ऐ साकी।
मयकदा छोड़कर कहां जाएं, है जमाना खराब ऐ साकी,
जाम भर दे गुनाहगारों के, यह भी है एक शबाब ऐ साकी।
आज पीने दे और पीने दे, कल करेंगे हिसाब ऐ साकी।

तुम हिसाब लगा-लगा के प्रार्थना करोगे तो प्रार्थना होगी ही नहीं। मत पूछो कि कितनी देर करनी चाहिए, कब करनी चाहिए, कब तक करनी पड़ेगी? पड़ेगी का सवाल ही नहीं है, अभी प्रार्थना की झलक भी तुम्हें नहीं मिली। मैं चाहूंगा कि कोई भी व्यक्ति सीधे प्रार्थना में जाने की कोशिश न करे, क्योंकि यह करना मुश्किल काम है। पहले ध्यान को साधे, सीधे प्रार्थना और भक्ति बड़ी मुश्किल बात है, खासकर आज के जमाने में और भी मुश्किल है। हमारी तार्किक बुद्ध हो गई, स्कूल, कालेज की शिक्षा हो गई, मन बहुत परिपक्व हो गया है, शंका-संदेहों से भर गया है। प्रार्थना दूभर होती जा रही है, आने वाले समय में भक्ति का मार्ग और भी क्षीण होता जाएगा। एक पगडंडी रह जाएगा।

पुराने जमाने में कभी राजमार्ग था, बहुत लोग भक्ति के द्वारा भगवान तक पहुंचे, आज वैसा संभव नहीं, भविष्य में शायद और भी कम हो जाएगा, एक पतली सी पगडंडी रह जाएगी, कभी-कभार कोई चल पाएगा। लेकिन अधिकांश लोगों के लिए बुद्ध की बात, महावीर की बात, ओशो की बात भविष्य में ज्यादा कारगर और काम की होगी, ध्यान में डूबो।

अभी प्रार्थना की फिक्र छोड़ो, परमात्मा की भी फिक्र छोड़ो, तुम निर्विचार जागरूकता को साधने में लगो, अपनी संवेदनशीलता को बढ़ाओ, वर्तमान के क्षण में आओ। जब तुम्हारे भीतर शांति और आनंद घने होने लगेंगे, जब तुम्हारे भीतर फूल खिल जाएगा ध्यान का तब भीतर से अहोभाव उठेगा, धन्यवाद का भाव उठेगा तब तुम सारे अस्तित्व के प्रति नमन भाव से भर जाओगे, तब तुम्हारे भीतर से स्वर उठेगा कि हे प्रभु तेरी कृपा अपरंपार है, अद्भुत, कैसे यह आनंद झर रहा। जब तक तुम दुख में हो तब तक प्रार्थना न हो सकेगी, पहले शांत और आनंदित हो जाओ। और उसके लिए ध्यान ज्यादा उपयोगी होगा।

अगला प्रश्न है, बहुत सोच–विचारकर जीने का आदी हूं अतः चाहते हुए भी पैंसठ साल की आयु में अभी तक ओशो का शिष्य नहीं बन पाया हूं। अब क्या करूं? पूछते हैं किशोर महाजन कोल्हापूर से।

किशोर महाजन, सबसे पहले तो तुम एक काम करो कि अपना नाम बदल लो, कब तक किशोर रहोगे, पैंसठ साल के हो गए। एक पैर कब्र में लटका है और नाम किशोर कुमार है अभी भी। अब थोड़े परिपक्व बनो, थोड़ी प्रौढ़ता को अपने भीतर जन्मने दो, गई बाल्यावस्था, गई किशोरावस्था, बीत गई जवानी, अब जिंदगी के अनुभव से कुछ सीखो। तुम कह रहे हो कि बहुत सोच–विचारकर भी शिष्य नहीं बन पा रहा हूं। सोच–विचारकर तो कभी न बन पाओगे। शिष्य होना मस्तिष्क से नहीं, हृदय से आता है। यह तो प्रेम की बात है, प्रेम हिसाब–किताब लगाकर नहीं किया जाता, कोई गुणा–भाग और सोच–विचार इसमें काम नहीं आएगा। अगर चिंतन–मनन करोगे तो कभी भी शिष्य न बन पाओगे, यह तो एक छलांग है। अगर तुम अपने पुराने जीवन से उब चुके हो, उसके दुख को देख चुके हो तो छलांग लगाओ।

अगर तुम्हें लगता है कि घर में आग लगी है तो तुम यह नहीं कहते कि मैं सोचूंगा–विचारूंगा, शास्त्रों में क्या लिखा है कि आग लगी हो मकान में तो क्या करना चाहिए, पहले सलाहकारों की सलाह लूंगा तब तुम ऐसा नहीं कहते। मकान में आग लगती है तो तुम छलांग लगाकर बाहर निकल जाते हो, एटीकेट्स और मैनर भी भूल जाते हो। हो सकता है कुर्ता–पजामा पहनना भी भूल जाओ, अण्डरवियर में ही छलांग लगा जाओ। मकान में जब आग लगी है तब यह बातें याद नहीं आएंगी। रास्ते में जा रहे हो और सामने सांप आ जाए तब तुम यह नहीं कहोगे कि रुको भाई, पहले शास्त्रों में पढ़ लें कि सांप आने पर क्या करना चाहिए, भगवान कृष्ण क्या कहते हैं, महावीर क्या कहते हैं, ईसामसीह का क्या मंतव्य है सांप के बारे में। नहीं, तब तुम एकदम से छलांग लगाओगे। नहीं, तो किशोर महाजन मैं तुमसे कह रहा हूं कि थोड़े प्रौढ़ बनो, अपने जीवन की निगरानी करो कि तुमने क्या पाया इन पैंसठ सालों में? तुम पाओगे कि जीवन का यह भवन धू–धू करके जल रहा है, पैंसठ साल जल चुका है, थोड़े समय और बाकी है।

मैंने सुना है एक लतीफा, स्कूल के शिक्षक ने बच्चों से कहा कि जब कोई खास बात बोलनी हो तो सोच–विचार कर बोला करें, चिंतन–मनन करके और उसके लिए सबसे अच्छा तरीका है सौ तक मन ही मन गिनती गिनो ताकि बीच में तुम्हें समय मिल जाए, फटाक से कुछ भी मत बोल दो। और अगर कोई बहुत ही खास बात है तब दो सौ तक गिनती गिनो

ताकि ठीक से सोच–विचारकर बोलो। एक दिन ऐसा हुआ कि जनवरी का महीना था, ठण्ड के दिन थे, शिक्षक महोदय क्लास में पढ़ा रहे थे, उनके पीछे इलेक्ट्रिक हीटर जल रहा था, उन्होंने अचानक देखा कि बच्चे होंठ हिला रहे हैं, गिनती गिन रहे हैं एक–दो–तीन मन ही मन। शिक्षक खुश हुए कि उनकी शिक्षा का पालन किया जा रहा है। उन्होंने कहा कि शाबास बच्चो, लगता है कोई खास बात बोलने वाले हो। फिर उन्होंने देखा कि 98–99–100 भी निकल गया, बच्चे उसके ऊपर भी चले गए, इसका मतलब कि वह बहुत ही खास बात कहने जा रहे हैं और फिर कोई तीन मिनट बाद वह घड़ी आई जब सभी बच्चे अचानक चिल्ला पड़े 198वे, 199वे, 200, सर आपके कोट में हीटर से आग लग गई है।

किशोर महाजन, जिसे तुम जीवन कह रहे उस भवन में आग लगी हुई है, छलांग लगाओ। कितना समय और बचा है जानते हो, कोई भी नहीं जानता। एक क्षण का भी भरोसा नहीं। और परमात्मा को पाए बगैर इस जीवन से विदा मत होना। वरना जीवन निरर्थक ही गया। बेकार ही आए, बेकार ही जिए, बेकार गए। अंत में एक बात और कहूं, मृत्यु का जो डर है हमारे मन में और मृत्यु से जो पीड़ा होती है हमारे मन में वह मौत की पीड़ा नहीं है, मौत की तकलीफ नहीं है, वह इस बात का कष्ट है कि जिंदगी बेकार गई। सत्तर–अस्सी साल का समय मिला था और हमने यूं ही गंवा दिया। अधिकतम लोगों को मरते समय पता चलता है कि उनकी जिंदगी बेकार गई। काश, बीच में दिखाई दे जाए तो तुम प्रौढ़ हुए, जागो, चेतो, अब शिष्यत्व की छलांग लो और साधना में डूबो।

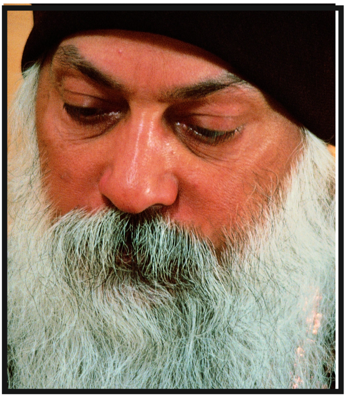

अध्याय–58

ओम के सौ अर्थ

आज का पहला सवाल है राजकमल त्रिवेदी जी जो कि मुम्बई से हैं, यह पूछते हैं कि एक विद्वान द्वारा लिखित ग्रंथ में मैंने ओम के सौ अर्थ पढ़े हैं फिर भी वास्तविक अर्थ समझने में असमर्थ रहा हूं, भारत के तत्वविज्ञानी ओम पर इतना अधिक महत्व क्यों देते हैं?

क्योंकि ओम डिजर्व करता है इतना बल दिया जाना, इतना महत्व दिया जाना। वही सारे धर्म का सार है। अगर ओम रह जाए और सारे ग्रंथ खो भी जाएं, सारे तत्वज्ञानियों के दर्शनशास्त्र खो जाएं कोई हर्ज नहीं, अगर ओम शेष रह गया तो पुनः सारे शास्त्र जन्म जाएंगे। इसका उल्टा सच है, अगर ओम खो गया और सारे सिद्धांत और शास्त्र रह गए तो समझो सब खो गया, सारतत्व खो गया। वैज्ञानिक पहले अपने आपको पदार्थवादी कहा करते थे, पिछली सदी में विज्ञान की ही खोज से सिद्ध हो गया कि मैटर, पदार्थ जैसी कोई चींज है ही नहीं। जो पदार्थ जैसा आभासित होता है वह वास्तव में तीव्र गति से घूमती हुई शक्ति का रूप है। ऊर्जा बड़ी तीव्र गति से घूम रही है और पदार्थ का भ्रम पैदा कर रही है।

आज भी हम वैज्ञानिकों को पदार्थवादी कहते हैं, अब इस शब्द का प्रयोग करना ही नहीं चाहिए। यह शब्द अब आउट आफ डेट हो गया। ओशो कहते हैं, कभी न कभी ऐसा दिन आएगा वैज्ञानिक खोज करेंगे कि ऊर्जा किस चीज से बनी है। जैसे पता चला कि पदार्थ ऊर्जा से बना है वैसे ही ऊर्जा किस तत्व से बनी है। एक दिन पता लगेगा वैज्ञानिकों को भी कि ऊर्जा चैतन्य से बनी है और उस चेतना में ओंकार की ध्वनि गूंज रही है। सारा जगत

ब्रम्हनाद से निर्मित है, ओम की ध्वनि से निर्मित है। गुरुनानक देव कहते हैं एक ओंकार सतनाम। असली सत्य वही है, हरि ओम तत्सत। अर्थात हरि यानि ईश्वर, ओम यानि अनहद नाद, तत्सत यानि यही है सत्य। परमात्मा ओंकार स्वरूप है यही है सत्य। तो ओंकार सघन होकर ऊर्जा बन गया, ऊर्जा सघन होकर पदार्थ बन गई।

अभी वैज्ञानिकों ने आधी बात तो खोज ली, संभावना है भविष्य में कि शेष आधा सत्य भी वे खोज लेंगे। लेकिन भारत के संतों ने, महर्षियों ने यह बात हजारों–हजारों साल पहले अपने अंतर्तम में खोज ली थी। उनकी प्रयोगशाला उनकी अंतरात्मा है। कोई भी साधक जब भीतर जाता है तो अपने भीतर ओम की ध्वनि को गूंजते हुए पाता है। अंतर्आकाश में एक शब्द निरंतर गूंज रहा है। कबीर साहब कहते हैं, शबद निरंतर में मन लागा मलिन वासना त्यागी, उठत बैठत कबहूं न छूटे ऐसी तारी लागी, साधे सहज समाधि भली। उस निरंतर गूंजने वाले शब्द में जाने से सहज समाधि फलित होती है।

तुम्हारा प्रश्न ठीक है कि भारत के तत्वज्ञानी ओम पर इतना अधिक बल क्यों देते हैं? ओम वास्तव में ही इतना महत्वपूर्ण है। ओशो का यह प्रवचनांश सुनो, तुम्हारे प्रश्न का उत्तर इसमें मिल जाएगा।

'कृष्ण कहते हैं, आकाश में मैं शब्द हूं। सूक्ष्मतम जो आकाश में संग्रहीत होता है रूप, अदृश्य अरूप कहना चाहिए वह शब्द, वह मैं हूं। वेदों में ओंकार हूं। वेद में कितना क्या है, कहा जाए तो सबकुछ है जो जगत में धर्म की दिशा में जो भी खोजा गया है करीब–करीब सब है। लेकिन उन सबको छोड़कर वेदों में कहते हैं ओंकार हूं, सिर्फ ओम। बस उतना हूं मैं। बाकी मैं नहीं हूं, बाकी तो सब जगत है। अगर प्रश्न में पूछा जाए तो वह कहेंगे सब शास्त्र नष्ट हो जाएं और ओम बच जाए तो मैं समझता हूं कि सब शास्त्र बच गए और सब शास्त्र खो जाएं, अकेला ओम खो जाए तो सब शास्त्र खो गए। बड़े मजे की बात है कि यह ओम बिल्कुल ही अर्थहीन शब्द है, इसमें कोई अर्थ नहीं है, इसमें कोई दर्शनशास्त्र नहीं है। यह शब्द एक अर्थ में बिल्कुल एबसल्यूट है, इसमें कोई अर्थ नहीं है। और कृष्ण इतना मोह दिखलाते हैं कि वेदों में ओंकार, बस वेद में मैं ओम हूं। क्यों, बहुत पूरी प्रक्रिया है।

थोड़ी सी बात आपसे कह दूं, इस एक छोटे से शब्द ओम में भारत ने समस्त मंत्रयोग की साधना को बीज की तरह बंद कर दिया। जैसे आइंस्टीन के रिलेटीविटी के फार्मूला हैं, छोटा सा दो–तीन शब्द, दो–तीन अक्षर पूरा हो जाता है ऐसे ही भारत ने जो भी अंतर जीवन में अनुभव किया है और जितनी भी विधियां मनुष्य ने विकसित की हैं सत्य की तरफ यात्रा करने की वह सब की सब बीज मंत्र की तरह ओम मंत्र में रख दी हैं। यह ओम अ, उ और म इन तीन ध्वनियों का जोड़ है। सारे शब्दों का विस्तार ओम का विस्तार है। सब वेदों में ओम, ओम होगा तो सभी वेद पुनः निर्मित हो सकते हैं, सीक्रेट की आपके हाथ में है। यह तीन अ, उ और म अगर हों तो जगत के सब शास्त्र निर्मित हो सकते हैं लेकिन भी जान लो कि अगर यह कुंजी खो जाए तो सब शास्त्र बेकार हो जाएंगे, ताले रह जाएंगे चाबी खो गई।

आज का दूसरा सवाल है, भक्त की प्रार्थनाएं भगवान तक पहुंचने में इतना वक्त क्यों लेती हैं? उत्तर आने में कितना समय लगता है?

तुम्हारी प्रार्थनाओं पर निर्भर है कि तुम्हारी प्रार्थनाएं किस किस्म की हैं। अगर उनमें मांग है, याचना है, भिखमंगापन है वे प्रार्थनाएं परमात्मा तक कभी पहुंचती ही नहीं। अगर तुम्हारी प्रार्थना में प्रसन्नता का भाव है, कोई मांग नहीं है केवल शांति है तुम मौन चुप बैठ गए, ओंकार की ध्वनि में डूब गए तब तुरंत परमात्मा से जोड़ बन जाता है। अगर तुम अहोभाव से भरे हो, जीवन में जो मिला है उसके प्रति धन्यवाद से भरे हो तब तुम्हारी प्रार्थनाएं तुरंत ही पहुंच जाती हैं। तो प्रार्थना प्रार्थना पर निर्भर करेगा। पुराने जमाने में लोग कबूतर के द्वारा संदेश भेजा करते थे, पहुंचने में बहुत समय लगता था। फिर धीरे–धीरे जमाना बदला, पोस्ट आफिस का युग आ गया, चिट्ठी–पत्री जाने लगीं तो आठ–दस दिन में ही पहुंच जाती थीं। फिर समय और बदला, टेलीग्राम और तार और भी तेजी से जाने लगे, फिर जमाना आ गया फैक्स और टैलेक्स का और अब जमाना आ गया है एसएमएस और ई–मेल का जो कि तुरंत ही पहुंच जाते हैं।

अगर तुम्हारा प्रार्थना का भाव अहोभाव से ओतप्रोत है, उसमें कोई शिकायत नहीं है, कोई कामना नहीं है, कोई याचना नहीं है तो तुम्हारी प्रार्थना एसएमएस की तरह हैं, तुरंत ही पहुंच जाएंगी और उत्तर भी तुरंत आ जाएगा। प्रार्थना करके एकदम से उठ न जाना, जरा सुनना, प्रभु की प्रतिध्वनि वहां से लौट रही है, रिस्पांस आ रहा है यह अस्तित्व चारों तरफ से हमें प्रतिध्वनित कर रहा है। हमारा ही भाव कई गुना होकर के हम पर ही वापिस लौट आता है

तुमने प्रेम की तरंगें भेजीं तो तुम पर प्रेम की वर्षा हो जाएगी, तुमने एक खूबसूरत गीत गाया तो तुम्हारे ऊपर सौंदर्य से ओतप्रोत गीतों की वर्षा हो जाएगी, तुमने प्रसन्नता को भेजा तो तुम और पहले से ज्यादा प्रसन्न हो जाओगे, खिल जाओगे। तो तुम्हारी प्रार्थना पर निर्भर है। हो सकता है कभी न पहुंचे, अगर शिकायत भाव के पत्थर तुमने बांध दिए कबूतर के गले में तो वह कबूतर उड़ ही न पाएगा। प्रार्थना को मुक्त करो सारे बोझों से, सारे भारों से और तुम पाओगे कि प्रार्थना तुरंत ही पहुंच जाती है और प्रभु का उत्तर भी तुरंत ही आता है। किसी कवि ने लिखा है–

जिंदा हूं इसलिए कि हमें तुमसे प्यार है,
हमको मिटा दो तुम यह तुम्हें इख्तियार है,
राहें बफा में साथ न दे सके अलग है बात,
तुम बेवफा नहीं हो हमें ऐतबार है।
दोनों तरफ है आग बराबर लगी हुई,
तुम बेकरार हो तो यहां कब करार है,
गुजरोगे तुम कभी न कभी इस मुकाम से,
बैठे हैं रहगुजर पे हमें इंतजार है।

भक्त इंतजार करता है, प्रतीक्षा करता है। प्रार्थना के साथ प्रतीक्षा को जोड़ना, परमात्मा अवश्य गुजरेगा, गुजर ही रहा है। हम जरा शांत हो जाएं, चुप हो जाएं, मौन हो जाएं, ओंकार उसकी पगध्वनि है।

अगला सवाल है, परमात्मा होता है कि नहीं, यदि होता है तो कैसा होता है, चतुर्भुज है कि सहस्त्रबाहु, साफ–साफ बताएं।

मुझे एक चुटकुला याद आ गया इस सवाल पर, शिक्षक ने बच्चों से कहा कि कल तुमसे एक-एक सवाल पूछूंगा तैयारी करके आना। दूसरे दिन शिक्षक ने सवाल पूछा। एक लड़के से पूछा कि बताओ तुम्हारे सिर में कितने बाल हैं? उसने कहा कि सर मेरे सिर में दो करोड़, पंचान्वे लाख, छप्पन हजार तीन सौ बारह बाल हैं। शिक्षक ने कहा कि तुमने कैसे गिना? बच्चे ने कहा कि आपने कहा था कि सिर्फ एक सवाल पूछेंगे, यह तो दूसरा सवाल हो गया। नारायण दास, तुम भी बड़ा उपद्रव का सवाल पूछ रहे हो कि परमात्मा चतुर्भुज है कि सहस्त्रबाहु? फिर तुम अगला सवाल पूछोगे कि कैसे गिना आपने कितनी बाहुएं हैं। व्यर्थ की बातें छोड़ो, चीजों को जरा काव्यात्मक और उपमा के ढंग से देखो। जिन लोगों ने कल्पना की कि परमात्मा चतुर्भुज है उसमें एक उपमा छिपी हुई है।

जरा काव्य को पकड़ो, चार आयाम हैं जगत के, परमात्मा सर्वव्यापी है। यह अर्थ है चार भुजाओं का। ऐसे नहीं सोचना कि उसके चार हाथ हैं, बड़ी मुसीबत हो जाएगी। टेलर उसके लिए सूट बनाएगा तो कैसे काट-पींट करोगे, कोई बहुत स्पेशल फैशन डिजायनर की जरूरत पड़ेगी और सहस्त्रबाहु हुई तब तो मारे गए, उनके नाप का कपड़ा ही कहीं न मिलेगा। नहीं, उपमा को उपमा की तरह लो। चतुर्भुज का अर्थ है चार आयाम। तीन आयाम तो हम सब जानते हैं और चौथा आयाम है समय का। टाइम इज द फोर्थ डायमेंशन आफ द स्पेस। इन चारों आयामों में परमात्मा व्याप्त है। और सहस्त्र बाहु में भी उपमा छिपी है, परमात्मा दाता है, देता ही चला जाता है। इसलिए दो हाथ से कैसे देगा, कितना देगा इसलिए कल्पना की गई है कि उसके अनंत-अनंत हाथ हैं। याद रखना, पुराने जमाने में सहस्त्र का अर्थ अनंत होता था, आज हम सहस्त्र का अर्थ करते हैं हजार। संस्कृत भाषा में सहस्त्र का अर्थ है अनंत।

परमात्मा के अनंत हाथ हैं, वह लुटाए जा रहा है, दिए जा रहा है। अभी मैं कर रहा था प्रार्थना की बात, अगर तुम उसके सहस्त्र बाहु होने को देख पाओ कि किस प्रकार से वह लुटाए जा रहा है, जीवनदान दिए जा रहा है तब धन्यवाद और अहोभाव से भर जाओगे। तो जो लोग अहोभाव से भरे उन्होंने कहा परमात्मा अनंत बाहु है। अब इसको तुम कोई यथार्थ फैक्ट की तरह मत लेना, थोड़े काव्यात्मक बनो तब यह सारी उपमाएं बड़े काम की होंगी।

अध्याय–59

भक्ति-जिज्ञासा कैसे जन्मे

प्यारे गुरुदेव के चरणों में नमन, आज का पहला प्रश्न पूछा है नई दिल्ली से जसपाल कुमार ने, पूछते हैं कि ओशो ने ओम अथातो भक्ति जिज्ञासा से आरम्भ होने वाले शांडिल्य के शास्त्र की सुंदर विवेचना की है। मैं पैंसठ साल का हो गया हूं, क्या करूं कि अब मेरे भीतर भी भक्ति की जिज्ञासा जन्म जाए?

महत्वपूर्ण सवाल है, भक्ति की जिज्ञासा कैसे जन्मेगी, जिन्दगी की व्यर्थता के बोध से। अच्छा हुआ कि तुम्हारे भीतर भाव उठा। पैंसठ साल में एक निरीक्षण करो, अवलोकन करो कि इतने सालों में क्या खोया क्या पाया? और तुम पाओगे कि केवल समय और शक्ति को खोया, पाया कुछ भी नहीं। शुरूआत में वह व्यर्थता का बोध तुम्हें विषाद से भरेगा लेकिन यही विषाद एक दिन परम उल्लास की ओर तुम्हें ले जाएगा। श्रीमदभागवत गीता शुरू होती है विषाद योग से। अर्जुन विषादग्रस्त हो गया। तुम्हारे जीवन का गीत भी शुरू हो सकता है। आरम्भ में लगेगा विषाद जैसा, अपने जीवन को व्यर्थ जाते हुए, खिसकते हुए देखकर निराशा पकड़ेगी। लेकिन याद रखना, इस निराशा की रात में से ही आशा का सूर्योदय होगा। और कोई उपाय है भी नहीं। तो जीवन की व्यर्थता को समझो, आंख गड़ाकर देखो और तब तुम पाओगे कि व्यर्थता का बोध की आधी यात्रा हो गई।

सार्थकता का बोध इसके बाद अपने आप ही शुरू हो जाता है। तब तुम्हारे जीवन में उमंग और उत्साह आना शुरू होगा। बाहर सब असार है, भीतर है सार, बाहर है व्यर्थ, भीतर

है सार्थक। जैसे ही व्यर्थता का बोध हुआ तुम्हारी उर्जा अंतर्गामी हो जाएगी। और तब अपने भीतर ध्यान में डूबकर, शून्य में डूबकर एक महासंगीत को तुम सुनोगे, वहीं है ओम की ध्वनि। उसे जानकर फिर तुम्हारे जीवन में नृत्य होगा, आनंद होगा, उत्सव होगा। ओशो कहते हैं संन्यासी की परिभाषा। ओशो कहते हैं संन्यासी की परिभाषा, उत्सव हमार जाति, आनंद हमार गोत्र। फिर तुम्हारे जीवन में आनंद, उत्सव होगा, तुम्हारे जीवन में संन्यास घटित होगा। इस संबंध में परमगुरु ओशो की अमृतवाणी सुनो–

'गाओ, नाचो, ऐसे नाचो कि नाचने वाला मिट जाए केवल नाच ही रह जाए। उस क्षण पहचान होगी ओंकार से। ऐसे गाओ कि गायक न बचे, गीत ही रह जाए, उस क्षण तुम भगवत गीता हो गए। जिस क्षण गाने वाला भीतर न हो और गान अपनी सहज स्फूरना से बहे उस क्षण तुम कुरान हो गए, उस दिन तुम्हारे भीतर परम काव्य का जन्म हुआ, उस दिन जीवन साधारण न रहा, असाधारण हो गया, उस दिन जीवन में दीप्ति आई, आभा उपजी इसलिए ओम से प्रारम्भ है। इस ओम से इशारा है कि तुम अभी ऐसे वृक्ष हो जिसके फूल नहीं खिले हैं, और बिना फूल खिले कोई संतुष्टि नहीं, कोई परितोष नहीं। ओम अथातो भक्ति जिज्ञासा। और यह तुम्हें ख्याल में आ जाए कि मेरे फूल अभी खिले नहीं, कि मेरे फल अभी लगे नहीं, कि मेरा बसंत आया नहीं, कि मैं गीत जो लेकर आया था मैं उसको अभी गाया नहीं, कि जो नाच मेरे पैरों में पड़ा है मैंने घूंघर भी नहीं बांधे, वह नाच अभी उन्मुक्त भी नहीं हुआ यह तुम्हें समझ में आ जाए तो अथातो भक्ति जिज्ञासा। उसके पहले भक्ति की कोई जिज्ञासा नहीं हो सकती। भक्ति की जिज्ञासा का अर्थ ही यह है कि मैं टूटा–फूटा हूं अभी, मुझे जुड़ना है, मैं अधूरा–अधूरा हूं अभी, मुझे पूरा होना है। कमियां हैं, सीमाएं हैं हजार मुझपर, सब सीमाओं को तोड़कर बहना है। बूंद हूं अभी और सागर होना है। अथातो भक्ति जिज्ञासा। तभी तो तुम जिज्ञासा में लगोगे।'

अगला प्रश्न है सिरसा से रमेश साहुवाला का, पूछते हैं कि ओशो ने अपने शिष्यों को माया रूपी संसार से वैराग्य क्यों नहीं सिखाया?

जब संसार झूठा है तो उसको छोड़ना जरूरत क्या है, झूठ को कैसे छोड़ोगे जो है ही नहीं। जो लोग वैराग्य सिखा रहे हैं वह लोग संसार को सच मान रहे हैं, तो एक संसारी हैं भोगी और दूसरे हैं त्यागी लेकिन दोनों ही संसार को यथार्थ मान रहे हैं। एक धन की तरफ दौड़ दौड़ रहा है दूसरा धन की तरफ पीठ करके दौड़ रहा है लेकिन धन में रस दोनों का है। एक स्त्री की तरफ भाग रहा है और दूसरा स्त्री से दूर भाग रहा है। दोनों में भेद नहीं है, उन दोनों के जीवन केन्द्र स्त्री ही है। इस बात को गौर से समझना, अगर बाहर सब माया है तो फिर उसको छोड़ोगे कैसे। सुबह उठकर तुम ऐसा तो नहीं कहते कि चलो आज फिर हमने सपनों का त्याग कर दिया। जब तुम्हें पता चल गया कि सपना तो सपना है तो फिर त्याग कैसा। सुबह उठकर तुम झाड़ू लगाकर कूड़ा–कचरा घर के बाहर फेक देते हो, तुम यह तो नहीं कहते कि बुलाओ पत्रकारों को, टेलीवीजन संवाददाताओं को मेरी तस्वीर छापें, जरा सबको बताएं कि आज मैंने फिर कूड़े–कचरे का त्याग कर दिया। ऐसा करने से सब लोग तुम हंसेंगे कि तुम पागल हो क्या। ऐसी ही हंसी मुझे आती है इन त्यागी महात्माओं की बातों पर। कोई

कह रहा है मैंने लाखों पे लात मार दी, कब मारी थी? बीस साल पहले, अभी तक उसकी याद क्यों बनी है बीस साल से? हिसाब-किताब क्यों रखे हो कि लाखों पे लात मार दी थी? इसका मतलब कि लाखों का महत्व अभी भी तुम्हारी दृष्टि में है।

एक बहुत बड़े साधु हुए गणेश वर्णी, साधु होने के बीस साल बाद एक दिन खबर पहुंची उनके पास कि पत्नी का देहान्त हो गया। उन्होंने कहा कि चलो अच्छा हुआ, झंझट मिटी। उनके शिष्यों ने तो बड़ी प्रशंसा में इस वक्तव्य को लिखा है कि गणेश वर्णी कैसे वैराग्य और विरक्ति में जीते थे, जरा भी आसक्त न थे। लेकिन यह वक्तव्य उनकी आसक्ति का द्योतक है। बीस साल पहले जिस पत्नी को तुम छोड़ आए उसके मरने पर कह रहे हो कि झंझट मिटी, इसका मतलब अभी तक झंझट थी। और जब तुम कह रहे हो कि झंझट मिटी तो कहीं न कहीं उसमें यह भाव भी था कि काश, यह मिट ही जाए। यह तो एक प्रकार की हिंसक वृत्ति हो गई। कहीं अचेतन में इच्छा थी कि पत्नी समाप्त हो जाए। अगर वह झंझट है तो निश्चित रूप से तुम्हारे भीतर उसके मिटने की आकांक्षा होगी।

नहीं, त्याग की कोई जरूरत नहीं, अगर कच्चे तुम भाग जाओगे बिना पके तो फिर इस प्रकार का त्याग घटित होगा। सारी झंझटें तुम्हारे मन के भीतर हैं याद रखना, बाहर नहीं है। और बाहर परिस्थितियों के परिवर्तन से कुछ भी न होगा। भीतर तो तुम वही के वही रहोगे। अपने अंतस को बदलो, अगर झूठ है तो उसको ठीक से जी ही लो ताकि पता चल जाए कि झूठ है। फिर क्या पकड़ना और क्या छोड़ना, सपने को न तो पकड़ सकते और न छोड़ सकते। इसलिए ओशो अपने शिष्यों को वैराग्य नहीं सिखाते। वे और उंची बात सिखाते हैं, उसका राग है वीतरागता। आसक्त और विरक्त तो सामान्य जीवन की घटनाएं हैं, वीतराग होना राग और विराग दोनों के पार है। तो वैराग्य कोई बहुत उंची बात नहीं है, वह तो रागी का ही शीर्षासन करता हुआ रूप है। राग और विराग दोनों का अतिक्रमण कर जाओ तब तुम वीतराग हो जाओगे। ओशो वही वीतरागता सिखाते हैं। किसी कवि ने लिखा है,

मोहब्बत भी झूठी, जमाना भी झूठा,
मोहब्बत का है यह फसाना भी झूठा,
अदाएं भी झूठी, वफाएं भी झूठी,
यह सब रूठ जाना, मनाना भी झूठा,
कहां का यह दिल और कैसी मोहब्बत,
अरे दिल का आना जाना भी झूठा,
जुदा होना, मिलना है इसका बराबर,
यह रोना, यह हंसना, हंसाना भी झूठा।
मोहब्बत भी झूठी, जमाना भी झूठा,
मोहब्बत का है यह फसाना भी झूठा।।

इस झूठे फसाने को फिर ठीक ढंग से जी ही लो। बस एक काम करो, जागरूक होकर जीना ताकि झूठ झूठ की तरह दिखाई दे जाए। अगर तुम मूर्छित-मूर्छित जिए तो फिर तुम्हें सच ही पता नहीं चलेगा कि क्या सच है क्या झूठ है। यही तो नींद की पहचान है। नींद जब होती है, मूर्छा होती है तो स्वप्न भी सत्य जैसा भासता है। जागरूक होकर जियो, जो स्वप्न है

वह अपने आप विदा हो जाएगा, जो शेष बचेगा वही सत्य है, परमसत्य है।

अगला सवाल पूछा है उल्लास नगर से मां दिव्या मुस्कान ने, पूछ रही हैं ध्यान साधना एवं प्रार्थना इत्यादि में धैर्य को इतना महत्वपूर्ण क्यों बतलाया जाता है?

धैर्य वास्तव में बहुत महत्वपूर्ण है, चाहे तुम ध्यान साधना करो, चाहे भक्ति और प्रार्थना में डूबो। अगर तुम जल्दबाजी में हो, हड़बड़ी में हो, अधैर्य तुम्हारे मन में है तो फिर साधना हो नहीं पाएगी, प्रार्थना भी नहीं हो पाएगी। जल्दबाजी में सब चीजें बिगड़ जाती हैं। क्यों, क्योंकि जो व्यक्ति जल्दबाजी में, समय का बोध जिसके भीतर बहुत प्रगाढ़ है वह चिंतातुर हो जाता है, वह फलाकांक्षा से भर जाता है और उसकी फलाकांक्षा ही फल के आने में विलंब कर देती है।

मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन की पचासवीं वर्षगांठ पर एक मित्र ने एक खूबसूरत पौधा उसको भेंट दिया, कहा कि इसको अपने बगीचे में लगा लेना, बहुत ही बड़ा पेड़ यह बनेगा और छाया देगा और बहुत खूबसूरत फूल इसमें आते हैं। नसरुद्दीन ने वह पौधा लगा लिया अपने बगीचे में। दो महीने बाद उस मित्र ने पूछा कि नसरुद्दीन, पौधा कुछ बड़ा हुआ? नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं भाई, यह कहां का पेड़ तुमने दे दिया, यह तो बढ़ता ही नहीं, न तो पौधा बढ़ रहा है न उसकी जड़ें बढ़ रही हैं? उस मित्र ने कहा कि आश्चर्य, दो महीने में तो उसको दुगुनी हाइट का हो जाना चाहिए था। नसरुद्दीन ने कहा कि मैं तो रोज उसकी जड़ें उखाड़कर देखता हूं, जड़ें भी ज्यों का ज्यों हैं। न ऊपर बढ़ रहा, न नीचे बढ़ रहा। अगर तुम जल्दबाजी में हो और रोज-रोज पौधे को उखाड़कर देखते रहोगे तो तुम्हारा प्रार्थना का पौधा, तुम्हारे ध्यान समाधि का पौधा भी जड़ें नहीं पकड़ पाएगा। इसलिए धैर्य अति महत्वपूर्ण है।

जो व्यक्ति जितनी ही जल्दी में होगा उसको उतनी ही अधिक देर लगेगी और जो व्यक्ति अनंत प्रतीक्षा करने के लिए तैयार है उसके लिए तत्क्षण भी घटना घट सकती है। क्योंकि यह प्रतीक्षा तुम्हें शांत कर देगी, तुम्हारे मन की उद्विग्नता को नष्ट कर देगी। फल की तरफ, भविष्य की तरफ तुम्हारी नजर नहीं है, तुम वर्तमान में आ गए। यही तो ध्यान की उपलब्धि है। और जो व्यक्ति जल्दबाजी पर है, फल पर जिसकी नजर अटकी है, जो जल्दी दौड़कर पहुंचना चाहता है, भविष्योन्मुख हो गया वह, वह वर्तमान से चूक गया और फिर ध्यान उसे घटित ही नहीं हो सकता। तो बहुत महत्वपूर्ण तत्व है धीरज।

ओशो ने अपने प्रवचनों में एक कहानी सुनाई है कि नारद मुनि एक जंगल से गुजरते थे। एक वृद्ध साधु ने उनसे कहा कि आप तो स्वर्ग जाते रहते हैं, कृपया ईश्वर से पूछकर बताइए कि मुझे ज्ञान कब मिलेगा, मोक्ष कब मिलेगा? अस्सी साल से साधना कर रहा हूं, बूढ़ा हो गया हूं? नारद ने कहा कि जरूरत बताउंगा पूछकर। वे जंगल में आगे बढ़े, एक और युवा साधु पेड़ के नीचे बैठा साधना कर रहा था। उससे पूछा कि तुम्हारे बारे में भी पूछ लूं ईश्वर से? उसने कहा नहीं, कोई जरूरत नहीं है पूछने की, ध्यान करने में ही इतना मजा आ रहा है, फल की चिंता किसे? हफ्ते भर बाद नारद स्वर्ग से वापिस लौटे धरती पर, उस वृद्ध साधु को आकर उन्होंने कहा कि भगवान ने कहा है कि तुमको अभी तीन जन्म और लगेंगे। वह बूढ़ा तो एकदम से नाराज हो गया, सामने शंकर जी की मूर्ति रखी थी उसको लात

मारकर दूर फेक दी और कहा कि हद हो गई अन्याय की, कहते थे देर है अंधेर नहीं, यहां तो देर भी है और अंधेर भी है। अस्सी साल हो गए साधना करते–करते और कह रहे हैं कि तीन जन्म और लगेंगे, मेरी तो श्रद्धा ही हट गई है भगवान पर से, इस लोक में भी अन्याय है और वहां भी अन्याय है। नारद ने कहा कि तुमने पूरी बात तो सुनी ही नहीं, भगवान ने कहा था कि अगर तुम इस प्रकार का दुर्व्यवहार करो तो फिर तीन नहीं, तीन हजार जन्म लगेंगे। नारद मुनि आगे बढ़े, उस युवा साधु के पास गए, वह तो आनंद मग्न प्रसन्न भाव में बैठा था ध्यान में। उसको हिलाया, डुलाया, समाधि से उठाया और कहा कि तुमने तो नहीं कहा था पूछने के लिए फिर भी मैंने सोचा कि पूछ ही लूं, मुझे खुद उत्सुकता थी कि तुमको कितना समय लगेगा। किन्तु बताते हुए डर रहा हूं क्योंकि उस साधु ने जो दुर्व्यवहार किया, तुम्हें जो बताने जा रहा हूं उससे पता नहीं तुम क्या दुर्व्यवहार करोगे।

नारद मुनि ने उससे कहा कि भगवान ने कहा है कि तुम जिस वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान कर रहे हो उस वृक्ष में जितने पत्ते हैं उतने जन्म तुम्हें लगेंगे। वह युवा साधु उठकर नाचने लगा, धन्यवाद भाव से उसकी आंखों से आंसु बहने लगे, उसने कहा कि अहो प्रभु! इतनी जल्दी, बस इतने से पत्ते, इतने जन्म, पूरे जंगल में कितने पत्ते हैं और कितने वृक्ष हैं उतने जन्म भी लग सकते थे। लेकिन तेरी बड़ी कृपा कि सिर्फ इतने ही जन्म और लगेंगे बस, अब तो बात बन ही गई। वह भाव–विभोर हो गया और नारद ने कहा कि भगवान ने यह कहा था कि अगर तुम इस प्रकार के भाव में डूब जाओ तो तत्क्षण, इसी क्षण घटना घट जाएगी। और कहानी कहती है कि वह युवा साधु उसी क्षण परमात्मा को उपलब्ध हो गया। धैर्य बहुत महत्वपूर्ण है। धैर्य और ध्यान दोनों जुड़ जाएं तो अद्भुत परिणाम हो सकते हैं।

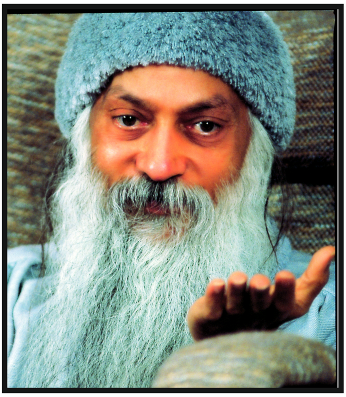

अध्याय–60

सब संतों के सारः ओशो

भगवन्, ओशो ने अतीत के संतों की वाणी पर अमृत प्रवचन दिए किन्तु ओशो की जीवन शैली और शिक्षा उन संतों की शिक्षाओं से काफी भिन्न नजर आती है, ऐसा विरोधाभास क्यों है? पूछा है मां योग मंजीत नवां शहर पंजाब से।

यह सवाल महत्वपूर्ण है, ओशो ने अतीत के बुद्धों पर अपनी दृष्टि प्रस्तुत की, लेकिन याद रखना, उनकी शिक्षाओं से जरूरी नहीं है कि ओशो हर बातों से उनकी सहमत हों। इसके कुछ खास कारण हैं। पहला कारण, अतीत के बहुत से बुद्ध पुरुष एकांगी थे, एक आयामी थे। बुद्ध एक ढंग से जीवन जीते हैं, महावीर एक भिन्न ढंग से जीवन जीते हैं, संत मीराबाई बिल्कुल ही भिन्न ढंग से जीवन जीती हैं। ओशो सर्वांगी हैं, बहुआयामी हैं। ऐसा समझो कि उनमें बुद्ध, महावीर, पतंजलि, मीरा, कबीर सबका इकट्ठा समावेश हो गया है। वे पूरे अस्तित्व को अपने में समाहित किए हुए हैं। तो अतीत के सारे बुद्ध पुरुष और नारियां ओशो में समाहित हैं। इसलिए निश्चितरूप से उनकी शिक्षा और जीवनशैली उनसे भिन्न नजर आएगी। हां, बुद्ध का भी उनमें अंश है, महावीर का भी अंश है, नानक का भी अंश है, कबीर का भी अंश है, कृष्ण का भी अंश है। अतीत में अधिकतम बुद्ध पुरुष आंशिक रहे। कृष्ण को हिन्दुओं ने पूर्ण अवतार कहा है, बाकी सब अंशावतार हैं। और यह बात सही है। अगर

ओशो की तुलना करनी हो किसी से तो अतीत में केवल भगवान श्रीकृष्ण से की जा सकती है। वे भी ओशो की तरह बहुआयामी थे। दूसरी बात, अतीत के बुद्ध पुरुषों का एक खण्ड उनके शिष्यों ने बहुत उजागर किया, उससे कन्फ्यूजन पैदा होता है। जब हम बुद्ध की बात करते हैं तो हमें याद आती है एक भिक्षु की जो कटोरा लिए सड़कों पर घूम रहा है और अपना उपदेश दे रहा है। हम यह भूल जाते हैं कि वे उनतीस साल तक एक राजमहल में राजकुमार की तरह ऐशो–आराम में रहे हैं। महावीर की जब हम चर्चा करते हैं तो हमें बिल्कुल विस्मरण हो जाता है कि चालीस साल वे सम्राट की भांति जिए हैं। महावीर का नाम लो तो याद आती है निर्वस्त्र खड़े एक दिगम्बर की जो जंगल में तपस्या कर रहा है। उनके शिष्यों ने एक हिस्से को बहुत उजागर कर दिया, दूसरा हिस्सा क्षीण पड़ गया।

ओशो हमारे समकालीन हैं, उनका पूरा जीवन हमें पता है। अगर हम बुद्ध और महावीर के समकालीन होते तब हम भी दूसरे प्रकार से उनको देखते। आज ढाई हजार साल बाद हम उनको ठीक ढंग से देख नहीं पाते, उनके शिष्यों ने जिस प्रकार से उनको प्रस्तुत किया है वह उनके जीवन का एक छोटा सा अंश ही है। जब ओशो कहते हैं कोई अपने जीवन के पूर्वार्द्ध में पदार्थवादी हो, भौतिकवादी हो तो सहजरूप से जीवन के उत्तरार्द्ध में वह अध्यात्मवादी हो पाएगा। तो बिल्कुल ठीक कहते हैं। स्वयं गौतमबुद्ध के जीवन में ऐसा ही तो हुआ, स्वयं महावीर के जीवन में ऐसा ही तो हुआ। तो विरोधाभास कहीं भी नहीं है लेकिन शास्त्रों में वर्णित जो बुद्ध और महावीर का वर्णन है उससे काफी भिन्न ओशो की बात नजर आएगी। फिर कृष्ण का उदाहरण लें, अलग–अलग उनके शिष्यों ने अलग–अलग अंश को चुना। कृष्ण तो पूर्णअवतार हैं किन्तु उनका वर्णन करने वाले बहुत संकीर्ण और आंशिक दृष्टि से उनको देखते हैं। सूरदास के पदों में जिस कृष्ण का वर्णन है बस वह पैर में पैजनिया बांधे, माखन चुराते हुए बालकृष्ण हैं। उसके आगे सूरदास बात ही नहीं करते। कृष्ण जवान भी हुए होंगे, प्रेम में भी पड़े, युद्ध भी लड़े, जीवन के संग्राम में भी उतरे उसका कोई वर्णन सूरदास के पदों में नहीं आता।

सूरदास बस बालकृष्ण की लीलाओं तक ही सीमित हैं। निश्चितरूप से वह कृष्ण के जीवन का एक ही हिस्सा है। सूरदास के बारे में कहा जाता है कि किसी सुंदर स्त्री को देखकर उन्होंने अपनी आंखें फोड़ लीं ताकि वासना न पैदा हो जाए। यह सूरदास कैसे किशोर और जवान कृष्ण का वर्णन कर सकते हैं जो गोपियों के वस्त्र चुरा लेता है और पेड़ पर जाकर चढ़ जाता है। निश्चितरूप से सूरदास उस कृष्ण के खिलाफ हैं। उन्होंने अपना एक छोटा सा अंश चुना है बस। तो कृष्ण तो पूर्णावतार हैं लेकिन उनके शिष्यों ने उनका आंशिक वर्णन किया है। भागवत में जिस कृष्ण का वर्णन है, मध्य युग के कवियों ने उस युवा कृष्ण की खूब–खूब चर्चाएं की, खूब गीत रचे, खूब कविताएं रचीं राधा और कृष्ण के बारे में, रास रचाने के बारे में। वह भी एक छोटा सा अंश है लेकिन केवल उसी हिस्से को मध्ययुग के कवियों ने बहुत ज्यादा उजागर कर दिया। गीता के कृष्ण बड़े दार्शनिक प्रतीत होते हैं, पूर्वगंभीर प्रतीत होते हैं अर्जुन को उपदेश देते हुए। कोई व्यक्ति गीता के कृष्ण को मानता है, वह भागवत के कृष्ण की

बात ही नहीं उठाता। कहीं कुछ तालमेल सा नहीं लगता कि यह आदमी जो अर्जुन को इतने गंभीर दर्शनशास्त्र समझा रहा है यह किन्हीं स्त्रियों के कपड़े चुरा सकता है, भरोसा ही नहीं आता। कृष्ण का जीवन तो एक है, वह बच्चे भी रहे, युवा भी हुए, प्रौढ़ भी हुए किन्तु शिष्य चुनाव कर लेते हैं इसलिए बहुत से भ्रम खड़े होते हैं।

तीसरी बात मैं कहना चाहूंगा, बुद्ध ने पलायन की शिक्षा दी। वे स्वयं भी भिक्षु बन गए और अपने सन्यासियों को भी भिक्षु बनने की शिक्षा दी। समय बदल जाता है, समय की जरूरतें बदल जाती हैं आज वह संभव नहीं। कभी देश सोने का चिड़िया था तो संभव था कि कुछ लोग भिक्षा मांगकर अपना जीवनयापन कर लें और ध्यान साधना में डूबने में अपना पूरा समय लगा दें। वह बड़ी सुपर लक्जरी की बात थी, आज वैसा संभव नहीं है। आज प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आजीविका कमानी होगी। वह पुराना समाज चला गया, वह संन्यास भी चला गया अथवा जाने के करीब है। जैसे पुराने जमाने में राजा–महाराजा थे तो राजदरबार में राजकवि हुआ करते थे, अब उस प्रकार के कवि संभव नहीं। अब राजा–महाराजा ही नहीं रहे तो कवि कहां से बचेंगे। अब अगर काव्य को बचाना है तो एक नए ढंग से बचाना होगा, अब राजदरबार का आश्रय तो नहीं मिल सकता।

ठीक इसी प्रकार अगर संन्यास को बचाना है तो एक नए ढंग से बचाना होगा। तो ओशो ने अपनी नई दृष्टि दी, नवसंन्यास का सूत्रपात किया। निश्चितरूप से बुद्ध, महावीर और शंकराचार्य से यह बिल्कुल भिन्न है। तो बुद्ध, महावीर और शंकराचार्य में जो बातें भी समसामयिक हो सकती हैं ओशो ने उनकी व्याख्या विशद की। किन्तु जो बातें आज के समय में लागू नहीं हो सकतीं वह समय बीत गया, वह समाज अब नहीं रहा, वह व्यवस्था अब नहीं रही इसलिए उसमें परिवर्तन करना ही होगा। तो इसका यह अर्थ नहीं है कि ओशो बुद्ध के विरोध में हैं कि शंकराचार्य के विरोध में हैं, बुद्ध के भीतर वह जो बुद्धत्व है और शंकराचार्य के भीतर वह जो भागवत तत्व है उसको पकड़ना, ओशो उसको समझा रहे हैं। ऊपर–ऊपर जो जीवनशैली है उसको नहीं। सुनो स्वयं ओशो की अमृतवाणी में–

'जो मैं तुमसे कह रहा हूं वह वही है, बुद्ध के जीवन का सार है। मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं जो बुद्ध कहते हैं, मैं तुमसे यह कह रहा हूं जो बुद्ध हैं। इसलिए मैं कहता हूं कि भागो मत। जहां हो, जो क्षण मिला है उसे इतनी त्वरा से भोग लो कि तुम उसके आर–पार देखने में समर्थ हो जाओ, जीवन पारदर्शी हो जाए। बस वहीं से संन्यास की सुवास उठनी शुरू होती है। और तब भागने की भी कोई जरूरत नहीं है। रवीन्द्रनाथ का एक गीत है जिसमें बुद्ध वापिस लौटते हैं और यशोधरा उनसे कहती हैं कि मैं सिर्फ एक ही सवाल तुमसे पूछने को रुकी हूं। बारह वर्ष तुम्हारी प्रतीक्षा की है बस एक सवाल के लिए कि तुमने जो जंगल में भागकर पाया है क्या तुम अब यह कह सकते हो कि यहां रुकते तो यहां भी मिल सकता था? अब तो तुम्हें मिल गया है, अब मुझे एक ही सवाल तुमसे पूछना है कि जो तुमने वहां पाया क्या वह यहीं नहीं मिल सकता था? और रवीन्द्रनाथ ने कविता में बुद्ध को मौन रखा है, कुछ कहलवाया नहीं है। कहें भी क्या? बात तो ठीक ही यशोधरा कह रही हैं, वह यहां भी मिल

सकता था। सत्य सब जगह है, समझ चाहिए। और समझ अनुभव का सार है इसलिए मैं तुम्हें अनुभव से तोड़ना नहीं चाहता। चाहता हूं कि तुम जितना जल्दी अनुभव में उतर जाओ, जितने गहरे उतर जाओ उतनी ही जल्दी अतिक्रमण का क्षण करीब आ जाएगा। संन्यास बहुत पास है, संसार का अनुभव तुम्हारा पूरा होना चाहिए। संन्यास संसार के विपरीत नहीं है, संन्यास संसार के पार है। विपरीत नहीं है, आगे है। जहां संसार समाप्त होता है, जहां संसार का मील का पत्थर आता है, जहां लिखा है यहां समाप्त होती है सीमा वहीं संन्यास शुरू होता है। लेकिन संसार पूरा करना ही होगा, अगर अभी पूरा न करोगे तो फिर लौटकर आओगे।'

मां योग मंजीत, एक बात और याद रखना। अतीत के गुरुओं ने त्याग–तपस्या पर बहुत जोर दिया, पलायन पर जोर दिया, समाज से हट जाना है दूर। चलो पुराने जमाने में संभव था, बड़े–बड़े जंगल थे, आज तो समस्या यह है कि जंगल बचे ही नहीं, जो हैं भी तो कटते जा रहे हैं। साढ़े छः अरब की आबादी है, आज अगर हम तुमसे कहें कि जंगल चले जाओ, अगर सारे लोग जंगल चले जाओगे तो वहीं भीड़ लग जाएगी, वहीं समाज बस जाएगा। अगर इतने सारे लोग आज हिमालय पर चले जाएं तो हिमालय की बर्फ पिघल जाएगी। इतनी गुफाएं हैं कहां, कितने लोग जा सकेंगे? पुराने जमाने में आबादी बड़ी छोटी थी। तो बदली हुई परिस्थितियों का ख्याल रखो। और एक बात और याद रखना, हर बुद्ध पुरुषअपने अतीत के बुद्ध पुरुषों से कुछ सीखता है।

बुद्ध ने छः साल तपस्या की और भलीभांति सिद्ध हो गया कि तपस्या करने से कुछ नहीं मिलता। जिस दिन उन्होंने त्याग का भी त्याग कर दिया, जिस दिन उन्होंने सारी तपस्या छोड़ दी उस दिन उनको बुद्धत्व घटा। अब आज कोई कहे कि फिर से बुद्ध जैसी तपस्या करो यह बात ही मूर्खतापूर्ण होगी। जैसे विज्ञान निरंतर प्रगतिशील है और आगे बढ़ता जाता है, न्यूटन जो प्रयोग कर चुका अब आपको उसी को करने की जरूरत नहीं है। उसने अपनी जिंदगी गंवा दी गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत खोजने में, आज के बच्चे स्कूल में जाएंगे तो घंटा भर में स्कूल का शिक्षक उनको समझा देगा, जो न्यूटन ने जिंदगी भर में खोजा था वह बात एक घंटे में बच्चे की समझ में आ जाएगी बात खत्म। अब दुबारा वही प्रयोग करने की जरूरत नहीं है। बुद्ध की तपस्या से सिद्ध हो चुका कि तपस्या से नहीं मिलता। अभी ओशो ने जो वर्णन किया रवीन्द्र नाथ की कविता का उसमें बुद्ध चुप रह गए। यशोधरा ने पूछा कि क्या यहां सत्य नहीं मिल सकता था जो जंगल जाना पड़ा? और बुद्ध आंखें झुकाकर खड़े रह गए। रवीन्द्रनाथ का यह गीत बड़ा प्यारा है। तो याद रखना, अतीत में लोगों ने जो भूल–चूक की हैं अब हमको वह रिपीट करने की आवश्यकता नहीं है इसलिए ओशो की जीवनशैली बुद्ध से बिल्कुल भिन्न है।

एक और बिन्दु कहना चाहूंगा, मनुष्यता पहले से ज्यादा प्रौढ़ हुई है। बुद्ध जिन लोगों से बात कर रहे थे आज के मनुष्य की तुलना में वे बहुत बचकाने थे। उनसे वह सारी बातें नहीं कही जा सकती थीं जो आज कही जा सकती हैं। आप अपने छोटे बच्चे को वह सारी बातें नहीं बताते जो अपने जवान बेटे को आप बता सकते हैं। समय बदल गया, मनुष्यता का विकास

हुआ है। बुद्ध से किसी ने पूछा कि क्या आपने हमें पूरा सत्य बता दिया? बुद्ध उस समय एक जंगल से गुजर रहे थे, पतझड़ के दिन थे, सारी जमीन पत्तों से पटी पड़ी थीं। बुद्ध ने मुट्ठी भर पत्ते उठाए और कहा कि जो मैंने तुमसे कहा है वह इस मुट्ठी भर पत्तों के समान है और जो शेष रह गया वह जंगल में फैले सारे पत्तों के बराबर है। ओशो ने कहा इससे ठीक उल्टा, उन्होंने कहा कि मैंने मुट्ठी भर पत्ते बचाए हैं, पूरे जंगल में जितने पत्ते हैं उतनी बात मैंने तुमसे कह दी। क्योंकि अब तुम ज्यादा मेच्योर हो, बात तुम्हें बताई जा सकती है। थोड़ी सी ही बात छुपाकर रखी है। और शायद आने वाले समय के बुद्ध पुरुष उनको भी बता सकेंगे। आज जितनी आसानी से ओशोधारा में नौ दिन में ओंकार का ज्ञान दिया जाता है पहले नब्बे साल में भी यह संभव नहीं था। मरते समय कोई गुरु अपने एकाध चुने हुए शिष्य को ओंकार की शिक्षा देता था। आज सैकड़ों लोग ओंकार की दीक्षा साथ में पा रहे हैं समूह में। ऐसा पहले संभव नहीं था, अब मनुष्यता ज्यादा प्रौढ़ हुई है।

अंतिम बात कहना चाहता हूं कि हर बुद्ध पुरुष अद्वितीय, अनूठा और बेजोड़ होता है। न तो बुद्ध महावीर जैसे हैं, न महावीर कृष्ण जैसे हैं, न कृष्ण मीराबाई जैसे हैं, न मीराबाई पतंजलि जैसी हैं। होना भी नहीं चाहिए वरना दुनिया बड़ी उबाऊ और बोरियत से भरी हो जाएगी। हर व्यक्ति यूनिक होता है, बेजोड़ होता है। ओशो अपने ढंग के हैं। अब तुम उम्मीद नहीं करना कि फिर ओशो जैसा कोई हो। भविष्य में जो लोग होंगे वे अपने ढंग के होंगे, अस्तित्व में कभी भी रिपीटीशन नहीं होता, पुनरावृत्ति नहीं होती। इन पांच बातों का स्मरण रखना फिर कोई विरोधाभास नजर नहीं आएगा।

अगला प्रश्न, प्रभु के चरणों में समर्पित होना चाहती हूं मगर वे चरण कहां खोजूं? पूछती हैं मां इन्द्रा अग्रवाल मुरादाबाद से।

वे चरण तो सर्वत्र मौजूद हैं। अभी सुना नहीं रवीन्द्रनाथ वाला गीत, यशोधरा ने बुद्ध से पूछा कि क्या परमात्मा यहां नहीं था महल में, सिर्फ जंगल में ही था? तुम पूछ रही हो वे चरण कहां हैं? वे चरण सब जगह हैं, तुम जहां झुक जाओ, जहां तुम अपने अहंकार को विलीन कर दो, जहां तुम्हारे भीतर समर्पण की भावना आ जाए तुम पाओगे कि परमात्मा के ही चरण हैं वे। सारा अस्तित्व परमात्मा से ओतप्रोत है। चरणों को मत खोजो, अपने अहंकार को विलीन होने दो। सुनो यह प्यारा गीत–

सारे जहां के मालिक तेरा ही आसरा है,
राजी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है।
हम क्या बताएं तुझको सबकुछ तुझे खबर है,
हर हाल में तुम्हारी मेरी तरफ नजर है।
रोकर कटे या हंसकर कटती है जिंदगानी,
तू दे खुशी या गम दे सब तेरी मेहरबानी।
तेरी खुशी की खातिर सब गम भुला दिया है,
राजी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है।

तुम जिसमें राजी हो जाओ, तुम जहां अहंकार को छोड़ दो वहीं तुम पाओगे परमात्मा मौजूद है।

अगला प्रश्न है, छोटे बच्चों में बुराइयां कहां से प्रवेश करती हैं, आज कल के बच्चे बिगड़ते क्यों हैं? यह पूछ रहे हैं स्वामी धर्म उदित रोहतक से।

बच्चे बिगड़ते नहीं जा रहे हैं, ज्यादा बुद्धिमान होते जा रहे हैं। हां, बुद्धिमत्ता के साथ–साथ दोनों संभावनाएं आती हैं, अच्छाई की तरफ भी जा सकते हैं और बुराई की तरफ भी जा सकते हैं। वह तुम पर निर्भर है कि तुम उन्हें कैसी दिशा दोगे। निश्चितरूप से जैसे–जैसे मनुष्यता प्रौढ़ हो रही है नई पीढ़ी और ज्यादा विकसित और ज्यादा बुद्धिमान उत्पन्न हो रही है।

मैंने सुना है स्कूल में गणित की एक टीचर पूछ रही थी बच्चों से कि समझो तुम्हारे मामाजी ने तुम्हारी मम्मी को एक हजार रुपए दिए और फिर किसी कारणवश तुम्हारे पापा ने मम्मी से नौ सौ रुपए ले लिए तो बताओ घर में क्या बचेगा? एक बच्चे ने खड़े हो कर कहा कि मैडम क्या पूछती हैं, क्या बचेगा, अरे घर में घरेलू आतंक मचेगा।

बच्चे ज्यादा समझदार हो रहे हैं।

भौतिक विज्ञान की टीचर ने पूछा, कैसे सिद्ध करोगे कि गर्मी में चीजें फैलती हैं और सर्दी में सिकुड़ जाती हैं? एक बच्चे ने कहा कि बिल्कुल स्पष्ट है, गर्मी की छुट्टियां दो महीने की होती हैं लंबी, सर्दी की छुट्टियां सिकुड़कर एक हफ्ते की हो जाती हैं।

एक बच्चा पैदा होते से ही अस्पताल में नर्स से बोला कि सिस्टर, मोबाइल है क्या? सिस्टर चौंकी, उसने कहा कि है तो मगर तू क्या करेगा, उसने कहा कि बस परमात्मा को मिस काल करके बताना है कि मैं ठीक–ठाक पहुंच गया।

बच्चे बिगड़ नहीं रहे है बस ज्यादा इंटलीजेंट होते जा रहे हैं। समय के साथ तुम भी आगे बढ़ना सीखो। नए समय के साथ एडजेस्ट होना सीखो। हां, इन इंटलीजेंट बच्चों को अगर तुमने सम्यक दिशा नहीं दी तो उनकी प्रतिभा गलत दिशा में जा सकती है। उसमें दोष पुरानी पीढ़ी का होगा।

पुस्तक के अंत में अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात, सभी साधकों के लिए स्मरणीय-

ध्यान-विधियों के अनिवार्य तत्व

-ओशो

ध्यान में कुछ अनिवार्य तत्व हैं, विधि कोई भी हो, वे अनिवार्य तत्व हर विधि के लिए आवश्यक हैं। पहली है एक विश्रामपूर्ण अवस्थाः मन के साथ कोई संघर्ष नहीं, मन पर कोई नियंत्रण नहीं; कोई एकाग्रता नहीं। दूसरा, जो भी चल रहा है उसे बिना किसी हस्तक्षेप के, बस शांत सजगता से देखो भर-शांत होकर, बिना किसी निर्णय और मूल्यांकन के, बस मन को देखते रहो।

ये तीन बातें हैंः विश्राम, साक्षित्व, अ-निर्णय-और धीरे-धीरे एक गहन मौन तुम पर उतर आता है। तुम्हारे भीतर की सारी हलचल समाप्त हो जाती है। तुम हो, लेकिन मैं हूं का भाव नहीं है-बस एक शुद्ध आकाश है। ध्यान की एक सौ बारह विधियां हैं; मैं उन सभी विधियों पर बोला हूं। उनकी संरचना में भेद है, परंतु उनके आधार वही हैंः विश्राम, साक्षित्व और एक निर्विवेचनापूर्ण दृष्टिकोण।

खेलपूर्ण रहो

लाखों लोग ध्यान से चूक जाते हैं क्योंकि ध्यान ने गलत अर्थ ले लिए हैं। ध्यान बहुत गंभीर लगता है, उदास लगता है, उसमें कुछ चर्च वाली बात आ गई है; लगता है यह उन्हीं लोगों के लिए है जो या तो मर गए हैं या करीब-करीब मर गए हैं-जो उदास हैं, गंभीर हैं, जिनके चेहरे लंबे हो गए हैं; जिन्होंने उत्साह, मस्ती, प्रफुल्लता, उत्सव सब खो दिया है।

यही तो ध्यान के गुणधर्म हैं: जो व्यक्ति वास्तव में ध्यानी है वह खेलपूर्ण होगा; जीवन उसके लिए मस्ती है, जीवन एक लीला, एक खेल है। वह जीवन का परम आनंद लेता है। वह गंभीर नहीं होता, विश्रामपूर्ण होता है।

धैर्य रखो

जल्दबाजी मत करो। बहुत बार जल्दबाजी से ही देर लग जाती है। जब तुम्हारी प्यास जगे, तो धैर्य से प्रतीक्षा करो–जितनी गहन प्रतीक्षा होगी, उतने जल्दी ही वह आएगा।

तुमने बीज बो दिए, अब छाया में बैठ रहो और देखो क्या होता है। बीज टूटेगा, खिलेगा, लेकिन तुम प्रक्रिया को तेज नहीं कर सकते। क्या हर चीज के लिए समय नहीं चाहिए? तुम कार्य तो करो, लेकिन परिणाम परमात्मा पर छोड़ दो। जीवन में कुछ भी व्यर्थ नहीं जाता–विशेषतः सत्य की ओर उठाए गए कदम।

परंतु कई बार अधैर्य उठता है; प्यास के साथ ही आता है अधैर्य, पर वह बाधा है। प्यास को बचा लो और अधैर्य को जाने दो। अधैर्य को प्यास के साथ मिलाओ मत। प्यास में उत्कंठा तो होती है परंतु कोई संघर्ष नहीं होता; अधैर्य में संघर्ष होता है और कोई उत्कंठा नहीं होती। अभीप्सा में प्रतीक्षा तो होती है परंतु कोई मांग नहीं होती; अधैर्य में मांग होती है और कोई प्रतीक्षा नहीं होती। प्यास में तो मौन आंसू होते हैं; अधैर्य में बेचैन संघर्ष होता है।

सत्य पर आक्रमण नहीं किया जा सकता; वह तो समर्पण से पाया जाता है, संघर्ष से नहीं। उसे समग्र समर्पण से जीता जाता है।

परिणाम मत खोजो

अहंकार परिणामोन्मुख है, मन सदा परिणाम के लिए लालायित रहता है। मन का कर्म में कोई रस नहीं होता, परिणाम में ही रस होता है–इ ससे मुझे क्या मिलेगा? यदि कृत्य से गुजरे बिना ही मन परिणाम पा सके, तो वह छोटे मार्ग का ही चुनाव करेगा।

यही कारण है कि शिक्षित लोग चालाक हो जाते हैं, क्योंकि वे छोटे मार्ग खोजने में सक्षम होते हैं। यदि तुम न्यायोचित ढंग से धन कमाओ तो तुम्हारा पूरा जीवन भी इसमें लग सकता है। लेकिन यदि तुम तस्करी से, जुए से, या किसी और ढंग से–राजनेता, प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति बन कर–धन कमा सको तो सभी छोटे मार्ग तुम्हें उपलब्ध होंगे। शिक्षित व्यक्ति चालाक हो जाता है। वह बुद्धिमान नहीं बनता, बस, चालाक हो जाता है। वह इतना चालाक हो जाता है कि बिना कुछ किए सब कुछ पा लेना चाहता है।

ध्यान उन्हीं लोगों को घटता है जो परिणामोन्मुख नहीं होते। ध्यान परिणामोन्मुख न होने की दशा है।

बेहोशी का भी सम्मान करो

जब होश में हो तो होश का आनंद लो, और जब बेहोश हो तो बेहोशी का आनंद लो। कुछ भी गलत नहीं है, क्योंकि बेहोशी एक विश्राम की भांति है। वरना होश एक तनाव हो जाता। यदि तुम चैबीस घंटे जागे रहो तो तुम कितने दिन, सोचते हो कि, जीवित रहोगे?

भोजन के बिना मनुष्य तीन महीने जी सकता है; नींद के बिना तीन सप्ताह में ही वह

विक्षिप्त हो जाएगा और वह आत्मघात का प्रयास करेगा। दिन में तुम सजग रहते हो; रात तुम विश्राम करते हो, और वह विश्राम तुम्हें दिन में, ताजे होकर, और सजग होने में मदद करता है। ऊर्जाएं विश्राम की एक अवधि से गुजर जाती हैं और सुबह ज्यादा जीवंत हो जाती हैं।

ध्यान में भी ऐसा ही होगा। कुछ क्षण के लिए तुम बिलकुल होश में होते हो, शिखर पर होते हो और फिर कुछ क्षण के लिए घाटी में पहुंच जाते हो, विश्राम करते हो। होश विदा हो गया, तुम भूल गए। लेकिन इसमें क्या गलत है? यह तो सीधी बात है। बेहोशी से फिर होश उठेगा, ताजा होकर, युवा होकर और यह चलता रहेगा। यदि तुम दोनों का आनंद ले सको तो तुम तीसरेहो जाते हो, और यह सूत्र समझने जैसा हैः यदि तुम दोनों का आनंद ले सको, इसका अर्थ हुआ कि तुम दोनों ही नहीं हो–न होश, न बेहोशी–तुम तो वह हो जो दोनों का आनंद लेता है। तब पार का कुछ प्रवेश कर जाता है। वास्तव में, यही वास्तविक साक्षी है। तुम सुख का आनंद लेते हो, उसमें क्या गलत है? जब सुख गया और तुम दुखी हो गए तो दुख में क्या गलत है? उसका आनंद लो। एक बार तुम दुख का आनंद लेने में सक्षम हो जाओ तो तुम दोनों ही नहीं रहते।

और यह मैं तुम्हें कहता हूं: यदि तुम दुख का आनंद ले सको, तो उसका अपना सौंदर्य है। सुख थोड़ा उथला है; दुख बहुत गहरा है, उसमें एक गहराई है। जो मनुष्य कभी दुखी नहीं हुआ वह उथला रहेगा, सतह पर ही रहेगा। दुख अंधेरी रात की तरह बहुत गहरा है। अंधकार में एक मौन है, और एक उदासी भी। सुख तो छलकता है; उसमें एक आवाज होती है। वह तो पर्वतों की सरिता जैसा है; आवाज पैदा होती है। लेकिन पर्वतों में कोई भी नदी बहुत गहरी नहीं हो सकती; सदा उथली होती है। जब नदी मैदानों में पहुंचती है तो गहरी हो जाती है, लेकिन फिर आवाज नहीं होती। नदी बहती चलती है जैसे बह ही न रही हो। दुख में एक गहराई है।

झंझट क्यों खड़ी करनी? जब सुखी हो, तो सुखी होओ, उसका आनंद लो। उससे तादात्म्य मत बनाओ। जब मैं कहता हूं: सुखी होओ, तो मेरा अर्थ हैः उसका आनंद लो। उसे एक जलवायु बन जाने दो, जो बदल जाएगी। सुबह दोपहर में बदल जाती है, दोपहर शाम में, और फिर रात आ जाती है। सुख को अपने चारों ओर एक वातावरण बन जाने दो। उसका आनंद लो, और जब उदासी आए तो उसका भी आनंद लो। कुछ भी हो, मैं तुम्हें उसका आनंद लेना सिखाता हूं। शांत बैठो और उदासी का आनंद लो, और अचानक उदासी उदासी नहीं रहती; वह स्वयं में एक सुंदर, शांत और मौन क्षण बन जाती है। उसमें कोई गलती नहीं है।

और फिर परम कीमिया घटित होती है, वह बिंदु आता है जहां तुम अचानक अनुभव करते हो कि तुम दोनों ही नहीं हो–न सुख, न दुख। तुम द्रष्टा होः तुम शिखरों को भी देखते हो और घाटियों को भी; परंतु तुम दोनों ही नहीं हो।

एक बार यह दशा उपलब्ध हो जाए, तो तुम हर बात का उत्सव मनाते चले जा सकते हो। फिर तुम जीवन का उत्सव मनाते हो, और मृत्यु का भी उत्सव मनाते हो।

–ओशो, ध्यानयोगः प्रथम और अंतिम मुक्ति

आनंद की दिशा में एक कदम तो उठाएं!

आधुनिक मनुष्य की बड़ी मानसिक बीमारियों में से एक है– अधैर्य, शीघ्रता। किंतु आश्चर्य यह कि इलाज की बात तो दूर, कोई इसे रोग ही नहीं मानता! ध्यानी के पास होनी चाहिए प्रतीक्षा की क्षमता। ध्यान का पौधा मौसमी फूलों की तरह नहीं है, कि आज बीज बोए, 15 दिन में पौधा तैयार। विराट वटवृक्ष की भांति है धर्म की साधना।

जितनी महत्त्वपूर्ण घटना हो उसके फूलने–फलने में उतना ही अधिक समय लगता है। बैक्टीरिया वाइरस की संतान 20 मिनिट में पौढ़ हो जाती है, और अगली पीढ़ी को जन्माने लगती है। मक्खी मच्छर अपने 2–3 सप्ताह के जीवनकाल में 150–200 अंडे प्रतिदिन देते हैं। पंक्षियों के बच्चे परिपक्व होने में 10–15 दिन लेते हैं। पशुओं के बच्चों का विकास 2–4 माह लेता है। मनुष्य का बच्चे की प्रतिभा प्रौढ़ होने में 25–30 वर्ष का वक्त लेती है। कुत्ते के बच्चे से ज्यादा उम्मीद नहीं है। उसके विकास की संभावना अत्यंत सीमित है।

आदमी के विकास की अनंत संभावनाएं हैं। वह इंसान से भगवान बन सकता है। पतन का खतरा भी भयंकर है। वह शैतान भी बन सकता है। कोई गधा या घोड़ा, सिकंदर या हिटलर जैसा हैवान नहीं बन सकता। सभी प्राणियों की नियति लगभग सुनिश्चित है। आदमी का सौभाग्य है, और दुर्भाग्य भी यही है कि प्रकृति ने उसे स्वतंत्र छोड़ा है।

प्रतिभा की प्रौढ़ता में में 25–30 साल लगते हैं, यह तो साधारण सांसारिक बुद्धिमत्ता की बात है। आध्यात्मिक रूप से विकसित होने में तो अनेक जन्म लगते हैं। जितना धैर्य, उतना शांत चित्त, उतने ही कम जन्म लगते हैं। जितनी जल्दबाजी में, उतनी अशांति की दशा, उतनी ही देर लगती है। प्रार्थना के संग जितनी गहन प्रतीक्षा की तैयारी, उतने शीघ्र परिणाम संभव। यही उलटबांसी है। लेकिन यह पढ़कर घबरा न जाना। यहां कोई नया नहीं, हम सब अनंत जन्मों से आत्मिक विकास की इस यात्रा पर हैं। यदि इस बार कुछ कदम उठा लिए, तो अपनी मनुष्य योनि को सार्थक समझें।

सदगुरु ओशो ने ध्यान–समाधि में डूबने की, एवं पिछले जन्मों को जानने की विधियों में बहुत परिष्कार किया है। तीव्र गति से परिणाम लाने वाली नई पद्धतियां ईजाद की हैं, ताकि आधुनिक व्यस्त मानव भी अपने जीवन को व्यर्थ न खोए। ओशोधारा के समाधि शिविरों तथा प्रज्ञा कार्यक्रमों में इन अनूठी आध्यात्मिक तकनीकों का प्रयोग करके हजारों साधक–साधिकाओं ने अपनी जिंदगी को रूपांतरित कर लिया है। शांति व आनंद की दिशा में एक कदम बढ़ाने हेतु आपका भी स्वागत है। एक–एक कदम चलकर ही हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है। अंततः परमात्मा की मंजिल भी मिल जाती है।

आत्म–सम्मोहन (सेल्फ–हिप्नोसिस) सीखिए
सिर्फ सफलता ही नहीं, सुफलता भी पाइए

शेक्सपीयर के अनुसार 'हमारा जीवन बगीचा है और हम इसके बागवान हैं।' बागवान अपनी? भावनाओं व धारणाओं के अनुरूप विचारों के बीज अवचेतन मस्तिष्क में बोता है। फिर जैसा बोता है वैसा ही फल प्राप्त होता है। तदनुसार ही मन–तन में परिवर्तन, एवं घटनाओं का प्रगटीकरण होता है। इसलिए प्रत्येक विचार एक कारण है एवं प्रत्येक दशा एक प्रभाव है।

सद्‌गुरु ओशो कहते हैं कि मनस्थिति ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, परिस्थिति नहीं। मनस्थिति से परिस्थिति निर्मित होती है। इसी कारण, यह आवश्यक है कि हम अपने विचारों को ऐसा बनाएँ ताकि हम इच्छित स्थिति को प्राप्तकर जीवन को सुख–शांति–प्रीति से भर सकें। यही बड़ी से बड़ी जीवन–क्रांति का सूत्र है।

क्या आप अपने जीवन में सफलता ही नहीं, सुफलता भी चाहते हैं? ओशोधारा के 'सम्मोहन प्रज्ञा' नामक कार्यक्रम में सुफलता के सोपानों पर चढ़ने की विधि सिखाई जाती है। सेल्फ–सजेशन द्वारा आत्म–सम्मोहन करके जिंदगी में मनचाहा परिवर्तन किया जा सकता है। देश–विदेश के कई हजार लोग अब तक इसका लाभ उठाकर स्वयं की जिंदगी मनचाही मंजिल तक ले जा चुके हैं। हमारे अवचेतन मन में चेतन मन से कई गुनी अधिक शक्ति छिपी है, उसका प्रयोग करने की कला सीखकर चमत्कारी परिणाम लाना संभव है।

चेतन खंड सम्पूर्ण मस्तिष्क का दस–बारह प्रतिशत ही होता है। इससे नौ गुना बड़ा खंड मस्तिष्क का अवचेतन अंग है। हमारे सारे अनुभव, सुनी–पढ़ी जानकारी, दमित इच्छाएँ एवं दमित विचार हमारे अवचेतन में संचित हैं। ये हमारे व्यक्तित्व को बनाते व प्रभावित करते हैं और हमारे व्यवहार एवं आचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लेकिन अक्सर ये प्रभाव नकारात्मक ही होते हैं। चूंकि हम अवचेतन के प्रति जाग्रत नहीं हैं, अतः उसका सकारात्मक तरीके से प्रयोग नहीं कर पाते। जैसे आदिकाल से बादलों में चमकती बिजली हमारे पूर्वजों को डराती रही; किंतु विद्युत क्या है, यह मालूम हो जाने पर वह मानव जाति की सबसे बड़ी सेविका बन गई।

आइए, आप भी ओशोधारा के त्रिदिवसीय 'सम्मोहन प्रज्ञा शिविर' में शामिल होकर अपने मन की संपूर्ण शक्ति का उपयोग करिए तथा जीवन को मनोवांछित दिशा दीजिए। केवल सफलता ही नहीं, सुफलता हासिल कीजिए। जीवन–वृक्ष के फल सत्यं, शिवं, सुंदरं के स्वाद से ओतप्रोत हों; शांति, प्रीति, मुक्ति की सुगंध से सुवासित हों, तो ही सच्चिदानंद और परम संतुष्टि संभव है!